ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL
वर्ष : 10, अंक 38, अप्रैल-जून 2023

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

लघुकथा विशेषांक

विद्यार्थी मंच

मूल्य : 100 रुपये

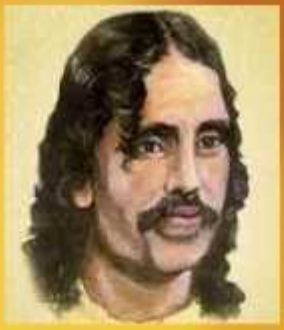

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(9 सितंबर 1850 - 6 जनवरी 1885)

अंगहीन धनी

एक धनिक के घर उसके बहुत-से प्रतिष्ठित मित्र बैठे थे। नौकर बुलाने को घंटी बजी। मोहना भीतर दौड़ा, पर हँसता हुआ लौटा।

और नौकरों ने पूछा, 'क्यों बे, हँसता क्यों है?'

तो उसने जवाब दिया, 'भाई, सोलह हट्टे-कट्टे जवान थे। उन सभों से एक बत्ती न बुझे। जब हम गये, तब बुझे।'

(परिहासिनी, 1876)

ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

पीयर रिव्यूड त्रैमासिक

वर्ष-10, अंक- 38, अप्रैल-जून 2023

संपादक : **डॉ. मीरा सिन्हा**
अतिथि संपादक : **डॉ. पंकज साहा**
प्रकाशक : **विद्यार्थी मंच**
प्रबंध संपादक : **सुशील कुमार पांडेय**
कला संपादक : **शुभागता श्रीवास्तव**
प्रसार प्रबंधक : **रमेश कुमार शर्मा**

परामर्श एवं विशेष सहयोग :
प्रो. दामोदर मिश्र : कुलपति, हिन्दी विश्वविद्यालय, हावड़ा
डॉ. पंकज साहा : खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल
डॉ. अरुण कुमार : प्राक्तन प्रोफेसर, राँची विश्वविद्यालय
डॉ. रणजीत सिन्हा : मिदनापुर कॉलेज (ऑटोनोमस), मिदनापुर
डॉ. मृत्युंजय पाण्डेय : सुरेंद्रनाथ कॉलेज, कोलकाता
डॉ. विनय कुमार मिश्र : अतिथि प्राध्यापक, प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय
डॉ. निशांत : काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल
डॉ. कृष्ण कुमार : अध्यक्ष, गीतांजलि बहुभाषिक साहित्यिक समुदाय, (बर्मिंघम, यू.के.)
डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल : असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल

व्यवस्थापन एवं प्रबंधन :
विनोद यादव, विवेक लाल, विनीता लाल, सरिता खोवाला, परमजीत पंडित एवं बलराम साव – 89107 83904

संपर्क एवं प्रसार :
चाँदनी सिन्हा (बर्मिंघम, यू.के.) : +447411412229
कुणाल किशोर (के.वि. हिमाचल प्रदेश): 7998837003

लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि मुक्तांचल में प्रकाशन हेतु सामग्री यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) में भेजें।

पत्रिका में व्यक्त विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं 'मुक्तांचल' से संबंधित सारे विवादों के लिए न्याय-क्षेत्र कलकत्ता उच्च न्यायालय होगा।

पीयर रिव्यूड टीम :
डॉ. धूपनाथ प्रसाद : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
डॉ. विश्वजीत भद्र : प्राध्यापक, नेताजी नगर कॉलेज (कलकत्ता विश्वविद्यालय)
प्रो. मोहम्मद फ़रियाद : प्राक्तन अध्यक्ष, जनसंचार विभाग, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद
डॉ. सुनील कुमार 'सुमन': प्रभारी, क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
प्रो. मंजु रानी सिंह : विश्वभारती, शांतिनिकेतन
प्रो. अरुण होता : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, स्टेट यूनिवर्सिटी, बारासात
प्रो. मनीषा झा : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उत्तर-बंग विश्वविद्यालय
डॉ. सत्या उपाध्याय : प्राचार्य, कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता
डॉ. अंजनी कुमार झा : एसोसिएट प्रोफेसर, मीडिया स्टडीज, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार)
डॉ. शुभ्रा उपाध्याय : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, खुदीराम बोस सेंट्रल कॉलेज, कोलकाता

मुक्तांचल: A/c- 50200014076551, HDFC BANK BURRABAZAR, KOLKATA- 700007, IFSC CODE- HDFC0000219

संपादकीय कार्यालय :
आधुनिक अपार्टमेंट, 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन
सलकिया, हावड़ा-711106, पश्चिम बंगाल
संपर्क – 033-26751686, 9831497320, 9681105070
ई-मेल – muktanchalpatrika@gmail.com
sinhameera48@gmail.com

मुद्रक : शिक्षण, 50, सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता-700009

पत्रिका का मूल्य : एक अंक – 100 रुपये
सदस्यता शुल्क : वार्षिक- 600 रुपये, आजीवन-3000 रुपये
संस्थाओं के लिए : वार्षिक-600 रुपये, आजीवन-3500 रु.
डाकखर्च (प्रत्येक अंक के लिए) अतिरिक्त 30 रुपये।

अवस्थिति

शोध समीक्षण सृजन संचार

06 संस्तुति

07 संपादकीय — लघुकथा का बढ़ता कद

आलेख

09 डॉ. अशोक भाटिया : — लघु अनन्त लघुकथा अनन्ता

18 डॉ. बलराम अग्रवाल : — समकालीन लघुकथा: जनसंघर्ष और तज्जनित अनुभवों को अवाज में तब्दील करने का कारगर औजार

22 माधव नागदा : — लघुकथा में शिल्प पर विचार

26 रामदेव धुरंधर : — वर्तमान हिंदी लघुकथा का परिप्रेक्ष्य

अनुशीलन

28 श्री भगीरथ परिहार : — लघुकथा के कलात्मक उपकरण

33 डॉ. चुम्मन प्रसाद : — लघुकथा : परिभाषा और स्वरूप

37 डॉ. राजीव कुमार रावत : — अचकचाए छोड़ जाती हैं लघुकथाएँ

40 अवधेश प्रसाद सिंह : — स्मृति–सांद्र का अनोखा उदाहरण है काठगोदाम का अक्स

गवेषणा

42 सिद्धेश्वर : — 21वीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में लघुकथा का अस्तित्व एवं महत्व

विमर्श

55 डॉ. पुरुषोत्तम दूबे : — लघुकथा विषयक बढ़ती सर्जनात्मकता : घटती पठनीयता

57 डॉ. रामकुमार घोटड़ : — लघुकथा साहित्य में फैलता प्रदूषण

60 डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा : — लघुकथा: अर्थ और अवधारणा

शोधार्थी की कलम से

62 श्वेता शर्मा : — समाज के हासिये में वृद्ध जीवन

68 प्रीति सिंह : — चित्रा मुद्गल की लघुकथाओं में मानवीय संवेदनाओं का यथार्थ

कथा

71 राजनारायण बोहरा : — समय

अंतःकथा

80 श्री नारायण पाण्डेय : — बीस रुपये का नोट

विचार कथा

83 राणा प्रताप : — कबीर का जादुई यथार्थ

विरासत

84 इब्ने इंशा : — भैंस

84 हरिशंकर परसाई : — अफसर कवि

लघुकथा

85 डॉ. रूपसिंह चंदेल : — प्यार

शोध समीक्षण

85 डॉ. नीरज दइया : नई नौकरानी
86 शशि कांडपाल : सहानुभूति
87 डॉ. रंजना जायसवाल : भरोसा
87 वीना सिंह : लौटता बचपन
88 रमेश मनोहरा : एहसास
89 आशीष दशोत्तर : अस्तित्व रक्षक
89 चाहत अन्वी : स्लीपर क्लास
90 छगनलाल सोनी : पिताजी
90 रविशंकर सिंह : समय-समय की बात
91 रंगनाथ द्विवेदी : कैलेंडर
91 डॉ. संजय कुमार सिंह : वफादारी का ईनाम
92 डॉ. प्रेमकुमार पांडेय : विभाजन रेखा
92 महेश कुमार केशरी : तमगा
93 परजन्या सिंह : डर
94 पारस कुंज : आतंकी हमला
95 रेणुका अस्थाना : तीन शब्द
96 अनवर शमीम : मालिक का तोता
96 माला वर्मा : एहसास

सृजन

97 मार्टिन जॉन : सो तो था
98 श्याम कुमार राई : नैतिकता
98 कल्पना मनोरमा : संभव ये भी है
99 डॉ. पिंकी कुमारी बागमार : बकरा
100 शिवनारायण : जहर के खिलाफ
100 उत्कर्ष अग्निहोत्री : भूख का सवाल
101 डॉ. लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा : विश्वास
101 चंद्र किशोर जायसवाल : दौलत

संचार

भाषांतर

102 लिली हालदार : मरीच झाँपि की लड़की

पुस्तकायन

104 डॉ. नीरज दइया : अपनी बात स्वयं कहती 'उजास' की लघुकथाएँ
106 डॉ. रूपसिंह चंदेल : अपना-अपना आकाश
108 डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल : अनेक संभावनाओं का द्वार खोलती: संभावना
111 मकेश्वर रजक : कथाकार रविशंकर सिंह की लघुकथाओं का सामाजिक सरोकार

साक्षात्कार

115 डॉ. लता अग्रवाल : स्पर्शिल मनोरचना तो लघुकथाओं का संवेदन है

अभिमत

संस्तुति

हर हासिल हमारा हौसला बढ़ाती है। मुक्तांचल का 38वाँ अंक भी अपनी श्रृंखला में एक जोरदार हासिल है। एक विशेष तरह का अंक जो कथा कहन के बीच की विविध पड़ताल करता है। इस अंक का शीर्षक है 'लघुकथा विशेषांक'। क्या लघुकथा नाम अंग्रेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' का अनुवाद तो नहीं या कि अंग्रेजी का 'टेल' अपने बीज रूप में कहन की सारगर्भिता को दर्शाता है। कहन का वह सार जो लघु रूप में होते हुए भी विस्तृत होने का आयाम अपने में समेटे रहता है। कथालोचना के फलक पर 'लघु' शब्द का अविर्भाव आधुनिकता की देन है। कथा के पहले लघु शब्द विशेषण सा नहीं लगता बल्कि ऐसे वजन की तरह बजता है कि हम उसकी पूर्णता और स्वायत्तता का लोहा मानने को विवश हो जाते हैं। कथा के कहन में जो कथ्य होता है उनमें तथ्य की तीव्र धार होती है जो प्रभाव को कई गुना अधिक बढ़ा देती है। लघुकथा विसंगति और विडम्बना को केंद्र में रखकर कलेवर लेती है। स्थिति का व्यंग्य इसकी मुख्य धुरी होती है। बड़े जाल की जगह एक छोटी वंशी भी समस्या रूपी मछली को पूरी कामयाबी के साथ गांथ लाती है।

उत्तर-औपनिवेशिक काल में क्लासिक का ताम-झाम लगभग सिमटता गया है। सहज और साधारण के रूझान में लेखन कला ने विविध विधाओं में अपने नए तेवर धारण किए हैं। उपन्यास का वृहद आकार लघु उपन्यास तो नाटक नुक्कड़ नाटक के रूप में विकसित हुए। महाकाव्य ने लंबी कविता का आकार लिया तो कविताएँ क्षणिका के रूप में भी खूब प्रचलित हुईं। लघुकथा ने भी कहानी के बड़े आकार को छोटी आकृति में तब्दील करने की कोशिश है।

लघुकथा के मूल स्रोत की खोज करते हुए हम पंचतंत्र एवं हितोपदेश 'कथासरित्सागर' तथा बाल-साहित्य आदि विविध सरणियों तक जाते हैं, किंतु वहाँ लघुकथा का वास्तविक रूप नहीं मिल पाता क्योंकि लघुकथा न तो दृष्टांत है न विनोदन, बल्कि अपने आपमें वह स्वतंत्र, स्वायत्त एवं गंभीर है।

आज कल लघुकथा की सर्जना एवं आलोचना दोनों ही जमकर हो रही है। प्रस्तुत अंक में सुधी लेखकों ने अपने-अपने ढंग से भिन्न-भिन्न संदर्भों एवं सूत्रों के साथ मुक्त लघुकथा को समालोचित किया है। डॉ. पंकज साहा नें अपनी कोशिश से इस अंक में लघुकथा के विराट फलक को प्रस्तुति दी है और इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि यह अंक सुधी-जनों में चर्चित होगा और विमर्शों को दिशा दे सकेगा।

संपादक

लघुकथा का बढ़ता कद

लघुकथा हिंदी साहित्य की आधुनिक विधा है। इसका उदय हिंदी कहानी के साथ ही हुआ। यह आकार में कहानी से छोटी होती है, परंतु यह किसी कहानी का संक्षिप्त रूप नहीं होती। इसका स्वतंत्र अस्तित्व है और यह अपने-आप में परिपूर्ण होती है। इसका प्राचीन रूप जातक कथाओं, पंचतंत्र की कहानियों, महाभारत की कथाओं, बौद्ध कथाओं, ईसा की कहानियों, धार्मिक कथाओं, लोक कथाओं आदि में देखा जा सकता है। परंतु उन कथाओं से आज की लघुकथाएँ कहन, शिल्प, संवेदना एवं उद्देश्य में भिन्न हैं। पूर्व की कथाओं से आज की लघुकथा किस प्रकार भिन्न हैं, इसे मनीष खत्री की एक लघुकथा 'अधूरी कहानी' से समझा जा सकता है —

बिल्ली के गले में घंटी बाँधने की कहानी सबने सुनी है। दरअसल, वह कहानी आधी है। लंबे समय से इंसान की सैकड़ों पीढ़ियाँ वही आधी कहानी सुनाती आ रही हैं। पूरी कहानी अब आ पायी है। लेकिन पूरी कहानी सुनाने के पहले परंपरागत आधी दोहराना जरूरी है। वह यों है —एक राजमहल के चूहे बहुत परेशान थे, क्योंकि राजा ने बिल्ली पाल रखी थी। एक दिन चूहों की संसद का आपातकालीन सत्र आयोजित किया गया। सभी चूहे डरे-सहमे थे। बुजुर्ग चूहों ने एक सर्वसम्मत प्रस्ताव रखा कि 'बिल्ली के गले में घंटी बाँध दो। प्रस्ताव सदन में पास हो गया। सवाल उठा कि 'बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे?'

चूहों के पुराण में बिल्ली के गले में घंटी बाँधने का गुरुमंत्र दर्ज़ है। लेकिन सहस्राब्दियाँ बीत गयीं, कोई माई का लाल चूहा यह कमाल नहीं कर पाया। यह हुई बीसवीं सदी के चूहों की बात, जो यह कहानी सुनते आये हैं। इक्कीसवीं सदी के चूहे एकदम अलग हैं। उन्हें बुजुर्ग बता रहे थे कि विड़ाल समस्या का समाधान हमारे ग्रंथों में है। लेकिन सवाल यह है कि अब लोग वेद-वाक्यों पर चलते ही नहीं।

तब इक्कीसवीं सदी के दो जवान चूहे आगे आए और बोले कि 'घंटी हम बाँधेंगे।' बुजुर्गों ने कहा कि 'तुम बाँधोगे!'

लेकिन दूसरे दिन सवेरे-सवेरे सारे चूहे हैरान थे। बिल्ली के गले में घंटी बाँध दी गयी थी। इक्कीसवीं सदी के जवान चूहों ने वह काम कर दिखाया था। बुजुर्गों ने पूछा, 'यह कैसे किया?' युवा चूहे बोले, 'आपने पुराणों में लिखा पढ़ लिया और हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ गये। चिंतन के द्वार बंद कर लिये। हमारा केमिस्टों की दुकान पर आना-जाना है। वहाँ से नींद की गोली ले उड़े। बिल्ली के दूध में उसे मिला दिया। बिल्ली बेहोश हो गयी। हमने आगे बढ़कर उसके गले में घंटी बाँध दी।'

हिंदी की पहली कहानी की तरह हिंदी की पहली लघुकथा भी विवादास्पद है। कुछ विद्वान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'अंगहीन धनी' (1876) एवं 'अद्भुत संवाद' (1876) को पहली लघुकथा मानते हैं, जबकि अधिकांश विद्वान माधव राव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) को पहली लघुकथा मानते हैं। डा. बलराम ने श्री माखनलाल चतुर्वेदी की 'बिल्ली का बुखार' को हिंदी की पहली लघुकथा माना है। इनके बाद छबीलेलाल गोस्वामी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, आचार्य जगदीश चंद्र मिश्र, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', उपेन्द्रनाथ अश्क प्रभृति अनेक लेखकों की एक या अनेक कहानियों को हिंदी की आरंभिक लघुकथाओं में शुमार करने की बात कही गयी।

लघु आकार की कथाओं को लघुकथा कहने का प्रचलन 1941-42 के आस-पास शुरू हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार डा. बुद्धिनाथ झा 'कैरव' के मन में यह नाम देने का विचार सबसे पहले आया था। परंतु तब की लघुकथाओं से आज की लघुकथा बहुत आगे

निकल चुकी हैं। डा. लक्ष्मीनारायण लाल ने 'हिंदी साहित्य कोश (भाग-1) में लिखा है, 'जीवन की उत्तरोत्तर द्रुतगामिता और संघर्ष के फलस्वरूप उसकी अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता ने आज कहानी के क्षेत्र में लघुकथाओं को अत्यधिक प्रगति दी है। '(पृ.741) इसी प्रगति के कारण आधुनिक लघुकथा अपनी संवेदनात्मकता के साथ-साथ सामाजिक सरोकारों से रू-ब-रू होती हुई अपने समय के परिवर्तनों को ही रेखांकित नहीं करती, बल्कि प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष व्यवस्थागत दबावों के खिलाफ प्रतिवाद के रूप में उठ खड़ी होती है।

लघुकथा के अनेक विशेषज्ञों ने आधुनिक लघुकथा का विकास 1970 से माना है। सुप्रसिद्ध लघुकथाकार, लेखक, आलोचक माधव नागदा ने मेरे लघुकथा-संग्रह 'संभावना' की भूमिका में लिखा है, 'आधुनिक लघुकथा का जन्म 1970 से माना जाता है। अब यह पचास वर्ष की युवा और सयानी हो चुकी है। परंतु इसकी जीवन-यात्रा एक गरीब अभावग्रस्त परिवार में पले-बढ़े बच्चे की तरह रही है। पर्याप्त संघर्षमय और उपेक्षापूर्ण। प्रारंभ में इसे संपादक किसी फिलर की तरह हाशिए में डाल देते थे। साहित्यकार इसे चुटकुले से अधिक महत्व नहीं देते थे। परंतु लघुकथाकारों की अडिग तपस्या के कारण देखते-ही-देखते लघुकथा' फिलर से पीलर' बन गयी। '(पृ.11) सुप्रसिद्ध लघुकथाकार एवं लघुकथा-विशेषज्ञ डा. बलराम अग्रवाल अपनी पुस्तक' हिंदी लघुकथा का मनोविज्ञान' की भूमिका में लिखते हैं, 'लघुकथा' शब्द सुनते-पढ़ते ही आम पाठक के मस्तिष्क में दृष्टांत-कथा, भाव-कथा, नीति-कथा जैसी कोई ऐसी रचना कौंध जाती है जो किसी पत्र-पत्रिका के पृष्ठ पर खाली रह गये किसी हाशिए को भरने के लिए उसके रंजनार्थ कंपोज करा दी जाती रही है। लेकिन यह भी सच है कि 'लघुकथा' ने निरंतर संघर्ष के बल पर साहित्य क्षेत्र के गंभीर चिंतकों, आलोचकों, समीक्षकों और कथाकारों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। पौराणिक परिवेश के अपने केंचुल को उतार फेंककर इसने आम आदमी के जीवन को लगातार प्रभावित करनेवाली हताशाजनक स्थितियों का खुलासा करती आधुनिक भाव-भूमि और तेवरों को अपनाया है।' (पृ.8)

नए तेवरों एवं सामाजिक सरोकारों के कारण लघुकथा की जनप्रियता बढ़ी है। आज हिंदी की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाएँ अत्यंत सम्मान के साथ लघुकथा छाप रही हैं। इतना ही नहीं, कुछ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी लघुकथाओं को स्थान मिलने लगा है।

अनेक विश्वविद्यालयों में लघुकथा की संवेदना, शिल्प, प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता, मनोविश्लेषणात्मकता, सामाजिक-राजनीतिक चेतना आदि विषयों पर एम. फिल., पी-एच.डी. डिग्री हेतु शोधकार्य हुए हैं एवं हो रहे हैं। लघुकथा पर दर्जनों आलोचनात्मक ग्रंथ एवं लेख लिखे जा चुके हैं।

हिंदी में नित नये लघुकथाकार प्रकाश में आ रहे हैं। ऐसे में लघुकथाकारों की संख्या बता पाना संभव नहीं है। कुछ प्रमुख लघुकथाकारों/आलोचकों/समीक्षकों के नाम इस प्रकार हैं —विष्णु प्रभाकर, हरिशंकर परसाई, असगर वजाहत, उर्मि कृष्ण, सतीशराज पुष्करणा, सतीश दुबे, चित्रा मुद्गल, पारस दासोत, विष्णु नागर, कमल किशोर गोयनका, प्रताप सिंह सोढ़ी, बलराम, बलराम अग्रवाल, सुकेश साहनी, माधव नागदा, रूपसिंह चंदेल, कमल चोपड़ा, योगराज प्रभाकर, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु', कमलेश भारतीय, कांता राय, रमेश बत्रा, अशोक भाटिया, भगीरथ परिहार, सतीश राठी, संजीव, शिवमूर्ति, नीरज दईया, बी.एल. अच्छा, रामदेव धुरंधर, सुभाष नीरव, रामकुमार घोटड़, पुरुषोत्तम दुबे, सिद्धेश्वर आदि।

हिंदी में अब-तक पाँच सौ से अधिक एकल लघुकथा-संग्रह एवं डेढ़ सौ से अधिक संपादित लघुकथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, इसी प्रकार लगभग साठ-सत्तर पत्र-पत्रिकाओं ने लघुकथा विशेषांक या लघुकथा केंद्रित अंक भी निकाले हैं, जिनमें सारिका, मधुमती, कथाक्रम, कथाबिंब, संबोधन, अयन, कहानीकार, लहर, बरोह, समग्र, सरस्वती सुमन, शोध-दिशा, सृजन-संवाद, पुष्पगंधा, प्राची आदि उल्लेखनीय हैं।

लघुकथा की लोकप्रियता को देखते हुए 'मुक्तांचल' की विदुषी संपादक डा.मीरा सिन्हा ने लघुकथा विशेषांक निकालने का निश्चय किया। मेरे प्रति असीम स्नेह होने के कारण उन्होंने मुझे इस यज्ञ का होता बना दिया। मैं उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। अपने सामर्थ्य को जानते हुए, पत्रिका की सीमा के अनुरूप मैंने यथोचित प्रयास किया है। मेरे आग्रह पर अनेक लेखकों ने अपनी रचना भेजकर एक तरह मुझे आशीर्वाद दिया है। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। आशा करता हूँ कि लघुकथा-जगत में 'मुक्तांचल' के इस अंक स्वागत होगा और लघुकथा के शोधार्थियों को इसका लाभ मिलेगा।

डॉ. पंकज साहा

लघु अनन्त लघुकथा अनन्ता

डॉ. अशोक भाटिया

देश और दुनिया के बदलते हालात में रचनाकार हमेशा ऐसे नए प्रस्थान-बिन्दुओं की जरूरत महसूस करता रहा है, जो नए सामाजिक यथार्थ को ज्यादा असरदार तरीके से कलात्मक यथार्थ में रूपांतरित कर सकें। ये प्रस्थान-बिन्दु नए प्रयोगों के रूप में हों या नए साहित्य रूपों के तौर पर, अगर ये सामाजिक यथार्थ के दबाव से संचालित होंगे तो ये अपने लक्ष्य में सफल हो पायेंगे। बर्तोल्त ब्रेख्त का कथन - 'साहित्य-रूपों के बारे में विचार करते हुए यथार्थ के बारे में ही सवाल करना चाहिए' इस संदर्भ में दिशा-निर्देशक है।

जिस प्रकार 'गोदान', 'शेखर एक जीवनी', 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आदि उपन्यासों पर कहानी नहीं लिखी जा सकती, या जिस प्रकार 'पूस की रात', 'उसने कहा था', 'आकाशदीप' आदि कहानियों पर उपन्यास या लघुकथा नहीं लिखी जा सकती, इसी प्रकार 'जाति' (हरिशंकर परसाई), 'कोई अकेला नहीं है' (रविन्द्र वर्मा), 'पेट का कछुआ' (युगल), 'फूली' (भगीरथ) आदि लघुकथाओं पर भी कहानी नहीं लिखी जा सकती। इन लघुकथाओं में उद्देश्य की स्पष्टता और पूर्णता है, इसलिए इस साहित्य-रूप शैली पर अलग से विचार करना और संभावनाओं की तलाश करना समय की ज़रूरत है। विष्णु नागर 'फोटो कहानी' (लघुकथा) को 'हमारे समय का फार्म' कहते हुए लघुकथा के साथ कल्पनापूर्ण और परिपक्व व्यवहार की बात करते हैं। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित अपने लघुकथा-संग्रह 'बयान' (2004) की भूमिका में चित्रा मुद्गल लिखती हैं- 'कलेवर में लघु होने के बावजूद उसका रचनात्मक प्रभाव पाठक के मर्म को गहरे उद्वेलित ही नहीं करता, उसके मानस पर अपना स्थाई प्रभाव भी छोड़ता है।' वास्तव में किसी भी रचना की कसौटी उसका आकार-प्रकार नहीं, उसका विजन, संघर्ष और विडंबनाओं के उभार की उसकी क्षमता होती है।

विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में लघुकथाओं की न केवल समृद्ध परंपरा रही है, बल्कि उनमें आज भी लघुकथा-लेखन हो रहा है। 1990 में पेइचिङ से चीन की प्रतिनिधि छोटी कहानियों का संग्रह 'अनदेखा प्रेम-सूत्र' नाम से आया। काओ म्याओ के संपादन में आई इस पुस्तक के भीतर के प्रथम पृष्ठ पर लिखा है- 'आधुनिक चीनी लघु कहानी संग्रह'। इस पुस्तक में अधिकतर कथा-रचनाएं हिंदी की लघुकथाओं के समकक्ष रखी जा सकती हैं। चीनी भाषा में लू सुन के अलावा वाङ मङ, वैताल, ल्याङ च्येनदवा की लघुकथाएं विशेष ध्यान खींचती हैं। अरबी में खलील जिब्रान वस्तु और शिल्प - दोनों दृष्टियों से प्रतिष्ठित लघुकथा लेखक हैं। इसी प्रकार फारसी में शेख सादी, उर्दू में इब्ने इंशा, सआदत हसन मंटो, रूसी में इवान तुर्गनेव, लियो तोल्स्तोय और एंतो चेखव, जर्मन में बर्तोल्त ब्रेख्त और फ्रांत्स होलर, अंग्रेजी में सामरसेट मॉम, ओ हेनरी और कार्ल सैंडबर्ग की लघुकथाएं अपनी विषय-वस्तु और प्रौढ़ शिल्प के कारण विशेष स्थान रखती हैं। जापानी भाषा में लघुकथा को शोटो कहा जाता है।

हिंदी के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं में लघुकथा-लेखन का सबसे अधिक उभार पंजाबी में मिलता है। पंजाबी में छोटी कथा-रचना को 'मिन्नी कहानी' कहा जाता है। 1998 से पंजाबी में मिन्नी कहानी पर केंद्रित पत्रिका 'मिन्नी' (त्रैमासिक) नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। इसके संपादकों में श्याम सुन्दर दीप्ति और श्याम सुन्दर अग्रवाल हैं, जिनके साथ बाद में विक्रमजीत नूर और अनूप सिंह जुड़ गए। पत्रिका का सौवां अंक जुलाई 2013 में प्रकाशित हुआ है। मिन्नी के अतिरिक्त 1972 से आरंभ होकर पिछले 41 वर्षों से जेबी आकार

की पत्रिका 'अणु' (मासिक) सुरिंदर कैले के संपादन में निकल रही है, जो पंजाबी में मिन्नी रचनाओं की पहली पत्रिका है। इसमें मुख्य रूप से मिन्नी कहानियां छपती हैं। इनके अतिरिक्त 'छिण' (क्षण) (मुख्य सं. त्रिपत भट्टी व संपादक हरप्रीत सिंह रम्भा) त्रैमासिक पत्रिका भी मिन्नी कहानी पर केंद्रित है।

उर्दू में लघुकथा को 'अफ़सानचा' कहते हैं। इसमें जोगिन्दर पाल और रतन सिंह ने उल्लेखनीय रचनाएं दी हैं। गुजराती में मोहनलाल पटेल ने, बांग्ला में रवीन्द्रनाथ टैगोर और बनफूल ने तथा मराठी में वि.स. खांडेकर ने लघुकथा को समृद्ध किया है। बांग्ला में लघुकथा को 'अणु-गल्प' कहते हैं।

दक्षिण भारत की चारों प्रमुख भाषाओं में लघुकथा-साहित्य मिलता है। तमिल में इसे चिरुकथा तथा कन्नड़ में सन्नकथा कहते हैं। इन भाषाओं की अपेक्षा तेलुगु और मलयालम में लघुकथा-साहित्य की समृद्ध परंपरा मिलती है।

लघुकथा के लिए तेलुगु में चिन्नकथा और कथानिका, दो नाम प्रचलित हैं। वहां श्रीचरण मित्रा, कान्ड्रेगुल श्रीनिवासराव और भमिडि पाटि रामगोपालम ने इस क्षेत्र में बहुमूल्य रचनात्मक योगदान दिया। लघुकथा के लिए मलयालम में भी 'चिरुकथा' शब्द है। एस.के. पोट्टेक्काट, पुनत्तिल कुंजब्दुल्ला, पी.के. पारक्कटवु, एन. उन्नी आदि ने विशेष रूप से चिरुकथा को समृद्ध किया है।

हिंदी लघुकथाओं का बीज-रूप हमें पंचतंत्र, हितोपदेश आदि की लघुकथाओं में मिलता है। वास्तव में कथा-क्षेत्र के कहानी और उपन्यास रूप भी उन्हीं प्राचीन बोध-कथाओं या दृष्टांतों से ही शनैः शनैः अपने आधुनिक रूप में विकसित हुए हैं। हिंदी लघुकथाओं के वर्तमान स्वरूप को देखें तो इनका कलेवर प्राचीन बोध कथाओं और नीति कथाओं आदि से मिलता-जुलता है। प्यासा कौआ, लालची कुत्ता जैसी लोक तत्व की बोध कथाएं भारतीय परंपरा में प्रसिद्ध हैं। ऐसी लोकप्रिय कथाओं ने भी लघुकथा के स्वरूप को विकसित होने में सहयोग दिया। वस्तुतः प्रत्येक काल में भारतीय साहित्य नूतन अभिव्यक्ति की तलाश में अपनी जड़ों की ओर, परंपरा की ओर जाता है। इस दृष्टि से लघुकथा के स्रोत भी अपनी परंपरा में ही विद्यमान हैं।

डा. लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में 'आधुनिक कहानी के सन्दर्भ में लघुकथा का अपना स्वतन्त्र महत्व एवं अस्तित्व है। प्रेमचन्द, प्रसाद से लेकर जैनेन्द्र, अज्ञेय तक इस धारा की शक्तिशाली गति हैं।' (हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 पृ. 680)। प्रसिद्ध लेखक विष्णु प्रभाकर अपने लघुकथा संग्रह, 'कौन जीता कौन हारा' (1989) की भूमिका में लिखते हैं, 'जब मैंने लिखना शरू किया था तो जयशंकर प्रसाद, सुदर्शन, माखनलाल चतुर्वेदी, उपेन्द्रनाथ अश्क, कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर', जगदीश चन्द्र मिश्र, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रावी और रामनारायण उपाध्याय आदि सुप्रसिद्ध सर्जक इस क्षेत्र में भी सक्रिय थे।' (पृ.8) विष्णु प्रभाकर ने पहली लघुकथा 1939 में लिखी थी। उनका यह कथन इसी संदर्भ में कहा गया है।

हिंदी में पहली कहानी, पहला उपन्यास का उत्तर निश्चित हो चुका है। वास्तव में हिन्दी की पहली लघुकथा को लेकर विचार करना भी अकादमिक महत्व का विषय है। किन्तु यहां से लघुकथा के विकास के विविध आयामों को भी देखा जा सकता है। डॉ. कमल किशोर गोयनका के मत में माधवराव सप्रे की रचना 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) हिन्दी की पहली लघुकथा है, जबकि बलराम के अनुसार माखनलाल चतुर्वेदी की रचना 'बिल्ली और बुखार' को हिन्दी की पहली लघुकथा मानना चाहिए। 'एक टोकरी भर मिट्टी' अप्रैल 1901 में छत्तीसगढ़ मित्र (मासिक पत्रिका) में प्रकाशित हुई थी। किन्तु 'बिल्ली और बुखार' का लेखन-काल स्पष्ट नहीं है। ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ द्वारा लिखी पुस्तक 'माखनलाल चतुर्वेदी' में से इसे उद्धृत किया जाता है। इस पुस्तक में चतुर्वेदी जी की 1919 तक की जीवनी दी गयी है। बलराम ने 'हिन्दी लघुकथा कोश' में लिखा है कि 'यह घटना 1887 में घटी थी तथा यह स्मृति-कथा 1887-1900 के बीच कभी लिखी गयी होगी, जो जीवनी के इसी काल-खंड में अंकित की गयी है। वास्तव में इस काल-खंड में अंकित होने का कारण इस समय में उस घटना का घटना रहा है, लिखना नहीं। दूसरे, यह 'स्मृति कथा' ही है, 'लघुकथा' नहीं। इसमें कल्पना और मौलिकता का अभाव है। इसके विपरीत 'एक टोकरी भर

मिट्टी' अपनी मौलिक वस्तु तथा शैली-शिल्प के साथ सशक्त रचनात्मकता का प्रमाण देती है। अतः 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली लघुकथा माना जा सकता है। ऐसा इसकी अवधि (1901) की सुविधा व आकर्षण के कारण न होकर इस रचना की सरंचना के कारण मान रहे हैं।

इसी प्रकार हिन्दी के पहले लघुकथा-संग्रह के विषय में भी बड़े रोचक वक्तव्य दिए गए हैं। इनके पीछे व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा, तो कहीं क्षेत्रवादी भावना सक्रिय रही हैं।

हिंदी में कई बड़े लेखकों ने उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता के साथ-साथ लघुकथाएं भी लिखी हैं, किन्तु उसे मुख्य विधा या शैली के रूप में नहीं अपनाया। प्रेमचंद ने 'गोदान', रंगभूमि' जैसे सुप्रसिद्ध बृहद उपन्यास लिखे, तो 'बाबाजी का भोग', 'बंद दरवाजा' आदि लघुकथाएं भी लिखीं। हरिशंकर परसाई ने 'रानी नागफनी की कहानी' जैसी दीर्घकथा लिखी तो 'जाति', 'संस्कृति' आदि लगभग एक सौ लघुकथाएं भी लिखी हैं। विष्णु प्रभाकर ने शरतचन्द्र पर 'आवारा मसीहा' नाम से विख्यात जीवनी लिखी तो 'संपूर्ण लघुकथाएं' नाम से एक सौ एक लघुकथाएं भी दीं। गिरती दीवारें', 'गर्म राख' जैसे प्रसिद्ध उपन्यासों के लेखक उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'बगूले', 'आ लड़ाई आ....' आदि लगभग पचीस लधुकथाएं भी लिखी हैं। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त करने वाले चर्चित कथाकार-संपादक कमलेश्वर ने यद्यपि स्वयं लघुकथाएं नहीं लिखीं, किंतु 'सारिका' के माध्यम से लघुकथाओं को एक बड़ा मंच उन्होंने ही प्रदान किया। उपन्यासकार असगर वजाहत ने 'कैसी आगि लगाई', 'सात आसमान' जैसे उपन्यास लिखे, तो 'मुश्किल काम' नामक प्रयोगधर्मी लघुकथा-संग्रह भी हिंदी लघुकथा साहित्य को दिया। इसी प्रकार कवि-कथाकार विष्णु नागर की दो लघुकथा-संग्रह 'ईश्वर की कहानियां' और 'बच्चा और गेंद' नाम से प्रकाशित हुए हैं। चित्रा मुद्गल ने 'आवाँ' जैसा प्रसिद्ध उपन्यास लिखा, तो 'बयान' लघुकथा-संग्रह भी दिया। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि अभिव्यक्ति का यह माध्यम आज के दौर में कितना महत्वपूर्ण है। सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह से चंडीगढ़ में प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने लघुकथा-साहित्य के बारे में बात की, तो उन्होंने असगर वजाहत और विष्णु नागर की लघुकथाओं को सराहा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आलोचक वर्ग भी लघुकथा-साहित्य के बारे में सजग है। हालांकि उदय प्रकाश, स्वयंप्रकाश, संजीव आदि मुख्यधारा के कथाकारों ने शुरू में थोड़ी-बहुत कलम लघुकथा क्षेत्र में भी चलाई, किंतु वे अपनी मुख्य लेखन-धारा में ही रमे रहे।

लघुकथा को सरलीकृत रूप में 'लघु' और 'कथा' इन दो आवश्यकताओं को पूरा करने वाली माना गया है। 'लघुकथा' की 'लघुता' केवल कहानी की तुलना में ही स्वीकृत होनी चाहिए, न कि स्वनिर्मित लघुता के खोल में सिमट जाने के रूप में। स्वनिर्मित लघुता को स्वीकार कर लिए जाने के जहां-जहां उदाहरण मिलते हैं, वहां-वहां लघुकथा के कथानक और पात्रों के लिए बहुत-सी रचनाओं में 'स्पेस' कम हो गया है। इस कारण वे लघुकथाएं 'लघु यथार्थ-बोध' अथवा 'विपन्न यथार्थ' की कथा-भर रह गई हैं। एक तरफ़ यथार्थ के जटिल होते जाने की दुहाई और दूसरी तरफ सरलीकृत मार्ग का चयन। लघुकथा का समुचित विकास न हो पाने का एक बड़ा कारण यह अन्तर्विरोध रहा है। इससे लघुकथाओं में 'कथा-सार' प्रस्तुत करने की कमजोरी नजर आई है। साथ ही पात्रों के साथ खिलवाड़ हुआ है। उनका सहज व्यवहार ही क्यों, जिंदगी की धड़कन भी कई लघुकथाओं में से इसलिए निकाल ली गई, क्योंकि वे लघुकथाएं उनकी स्वघोषित (बल्कि ओढ़ी हुई) आकारगत सीमा से बाहर जा रही थी।

लघुकथा में यथार्थ का एक आयाम होता है, कई बार उस आयाम का भी एक सूक्ष्म आयाम रहता है। उस आयाम को कितना स्थान चाहिए, यह उस विषय और लेखकीय दृष्टि पर निर्भर करता है। इतना स्पष्ट है कि जिस प्रकार उपन्यास की तुलना में कहानी प्रायः कम आकार लेती है, उसी प्रकार कहानी की तुलना में लघुकथा कम आकार लेती है। लेकिन लघुकथा को विषय के अनुसार परिक्रमा करने दें। वह चाहे एक-दो वाक्यों से लेकर दो-तीन-चार पृष्ठों तक ही क्यों न जाए।

लघुकथा में उद्देश्य की स्पष्टता और पूर्णता अधिक महत्वपूर्ण है, न कि उसका आकार। रमेश बतरा की 'कहूं कहानी', लघुकथा एक वाक्य में ही अपनी बात स्पष्ट व कलात्मक रूप से कह जाती है- 'ए रफीक भाई! सुनो... उत्पादन के सुख से भरपूर थकान की खुमारी लिये, रात मैं घर पहुंचा तो मेरी बेटी ने एक कहानी कही, 'एक लाजा है, वो बोत गलीब है।'

किन्तु काशीनाथ सिंह की 'पानी' तथा हरिशंकर परसाई की 'सर्वे और सुंदरी' लघुकथाएं ढाई पृष्ठों तक जाती हैं। दोनो सिद्ध और प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। ये दोनों रचनाएं एकायामी हैं, एक ही स्थिति का बयान करती हैं। अतः लघुकथा को बाहरी आकार-प्रकार के फतवों में बांधना साहित्य और जीवन को सीमित करने जैसा है।

रचनाकार के समक्ष समाज और उसका यथार्थ होता है। उसके समक्ष समय-समय को बांधने की चुनौती होती है। इस कारण रचनाकार के लिए रचना की पहली शर्त उस सत्य का रचना में रूपांतरण होती है। साथ ही शिल्प और भाषा की चुनौती भी होती है। यह चुनौती भी रूपांतरण से ही जुड़ी होती है। किन्तु रचनाकार किसी विधा या शैली के बाह्य आवरण से संचालित नहीं हो सकता। ऐसा करने पर उसकी रचनात्मक सीमाएं बननी प्रारंभ हो जाएंगी। सामाजिक यथार्थ, शिल्प और भाषा- तीनों मिलकर रचना में का स्वरूप तय करते हैं और उसमें एक अनुशासन का निर्वहण करने में रचनाकार को सहयोग देते हैं। यह अनुशासन ही रचना को एक स्पष्ट उद्देश्य तक ले जाता है।

ऐसी स्थिति में रचनाकार रचना की आवश्यकतानुसार शर्तों का अतिक्रमण भी करता है। रचना के इस आयाम पर विचार करना आवश्यक है। आठवें दशक से अब तक लिखी गई लघुकथाओं को देखने से लगता है कि मोटे तौर पर एक पृष्ठ या उससे छोटा आकार लघुकथा के लिए लगभग रूढ़ हो चुका है। ऐसी स्थिति में हर नए लेखक के चेतन-अर्धचेतन में यही आकार बैठ जाने की आशंका होना स्वाभाविक है। एक तो इस रूढ़ आकार को लघुकथा की अनिवार्यता मानने की मानसिकता से मुक्त होने की आवश्यकता है, दूसरे, ऐसी रचनाओं को भी स्वीकार करने, उभारे जाने की आवश्यकता है, जो इस बाह्य आवरण का अतिक्रमण कर लघुकथा की एकायामिता व अन्य रचनात्मक शर्तों को पूरा करती हैं और उद्देश्य में पूर्ण व स्पष्ट हैं। ऐसी लघुकथाओं को उभारने से लघुकथा का संसार समृद्ध होगा, उसमें ज़िंदगी की धड़कन अधिक स्पष्टता से सुनी जा सकेगी। इस संदर्भ में ऊपर काशीनाथ सिंह और हरिशंकर परसाई की लघुकथाओं के दिए गए उदाहरणों को देखा जा सकता है।

'आकार का अतिक्रमण' का दूसरा अर्थ लघुकथा के संयोजन से है। लघुकथा का आकार कहानी की अपेक्षा छोटा होता है, किन्तु क्या उसका संसार भी छोटा होता है? क्या कोई लघु यथार्थ भी होता है? यथार्थ तो यथार्थ होता है। तो फिर लघुकथा के रूढ़ बाह्य लघु आकार को मानना जिस प्रकार लघुकथा की संभावनाओं को सीमित करता है, उसी प्रकार उसकी आंतरिक सरलता को उसका अनिवार्य लक्षण मानना भी उतना ही घातक है।

नवें दशक में, जब लघुकथा की विस्फोटक शक्ति नई करवट लेकर सामने आई ही थी, तब पटना, इंदौर और गाजियाबाद से लघुकथा के तीन लेखकों-संपादकों द्वारा संयुक्त रूप से एक प्रपत्र जारी हुआ था। उसमें लघुकथा-विषयक अनेक प्रश्न पूछे गए थे, जिनमें अधिकतर रचना-विरोधी थे। इस प्रपत्र ने लघुकथा को बेहतरी के लिए कम और उसे गलत व रचना-विरोधी दिशा में मोड़ने का काम अधिक किया। इस प्रपत्र व इससे मिलते-जुलते ऐसे सवालों पर लघुकथा के गलियारों में बात होने लगी। लघुकथा में कितनी स्थितियां हों, उसमें अधिकतम कितने पात्र हों, वातावरण का चित्रण हो या न हो, संवाद किस सीमा तक रहें, लघुकथा का आरंभ, मध्य और अंत कैसा हो, उसका शीर्षक कैसा हो, आदि। लघुकथा न हुई, वैद्य जी की पुड़िया हो गई!

इन और ऐसे अनेक प्रश्नों का उत्तर बेहतर रचनाएं ही दे सकती हैं। 'आकार का अतिक्रमण' का संयोजनपरक अर्थ भी इन्हीं रचनाओं से स्पष्ट होगा। हरिशंकर परसाई की एक लघुकथा है- 'बात'। इस रचना में कुल आठ पात्र हैं, उन सभी के संवाद हैं। रचना में तीन दिनों की कुल सात स्थितियों का उल्लेख हैं। सातों स्थितियाँ सात

भिन्न-भिन्न समय पर तीन दिनों में घटती हैं। यह अकेली लघुकथा इस क्षेत्र में सिद्धांत और संरचना विषयक फैले विभ्रम को बहुत हद तक दूर करती है।

हिन्दी लघुकथा का विकास

प्रख्यात साहित्यकार विष्णु प्रभाकर आधुनिक लघुकथा को परंपरा से जोड़ते हुए कहते हैं- 'लघुकथा नयी सृष्टि नहीं है, प्राचीनकाल से इसका अस्तित्व नाना रूपों में रहा है। दृष्टान्त-रूपक और नीतिकथाएं लघुकथा का ही रूप हैं।' 1986 में अशोक भाटिया द्वारा लिए गए साक्षात्मकार में यह पूछने पर कि लघुकथा ने परंपरा से क्या ग्रहण किया? विष्णु प्रभाकर ने कहा - 'कलेवर ग्रहण किया।'

इस दृष्टि से वेद, पुराण उपनिषद की लघु आकार की कथाओं को देखें, तो इनमें कहीं आध्यात्मिकता और उपदेशात्मकता की प्रधानता है, तो कहीं सृष्टि के रहस्यों की दार्शनिक व्याख्या मिलती है। इन कथाओं में रोचकता अनिवार्य रूप से विद्यमान है। कर्म-कांडों, अंधविश्वासों, आदर्शों का महत्व बताया गया है।

बौद्ध काल की लघु आकारीय कथाओं में साधु-संन्यासियों, राजाओं, भिक्षुओं, योद्धाओं आदि की कथाएं मिलती हैं। इनमें शिक्षा, उपदेश और कलात्मकता की प्रधानता है।

जैन काल में तीर्थंकरों की कथाएं हैं, जो बौद्ध कथाओं की भांति संसार को अमर प्रमाणित करती हैं और प्रवृत्ति में उपदेशात्मक हैं। इनमें कर्मकांडों के चमत्कार का खंडन किया गया है।

'महाभारत' और 'रामायण' में अतीत की कथाओं को जीवित रखने का प्रयास है। इनमें छोटी-छोटी कथाएं किसी बड़े प्रकरण के अंश के रूप में रखी गयी हैं।

'पंचतंत्र' में पशु-पक्षियों के माध्यम से नीति-शास्त्र की विवेचना की गई है। इसकी प्रत्येक कथा नीति के किसी-न-किसी भाग का प्रतिपादन करती है।

'हितोपदेश' में उपदेशात्मक प्रवृत्ति में समाज का चित्रण मिलता है। 'कथा-सरित्सागर' की रचना ग्यारहवीं शताब्दी में हुई। 'इस ग्रंथ में लोक-कथाएं, ऐतिहासिक गाथाएं, पौराणिक वार्ताएं हैं तथा शिक्षा, नीति, बुद्धिमत्ता, मूर्खता, प्रेम, विरह, त्रिया-चरित्र, भाग्यचक्र आदि से संबंधित रोचक एवं प्रेरम कथाएं तथा कथाओं के अंतर्गत उपकथाएं हैं।'

1000 से पूर्व की इन लघु आकारीय कथाओं का उद्देश्य किसी गूढ़ सूत्र की व्याख्या करना या किसी कथा को सहायक कथा के रूप में प्रयुक्त करना, किसी तथ्य का निरूपण करना या कथानक के विकास को सहयोग देना ही रहा है। इनमें नीति, बोध, उपदेश, शिक्षा आदि में से एक या अधिक तत्वों की प्रधानता रही है। अतः आधुनिक युग की लघुकथा से ये लघु आकारीय कथाएं अपने उद्देश्य में नितांत भिन्न हैं।

वर्ष 1000 के बाद हिन्दी-क्षेत्र में शंकराचार्य, रामानंद, रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य आदि आचार्यों की प्रेरणा से भक्ति की धारा प्रवाहित हुई। इस समय पद्य-गद्य मिश्रित रूप में दो कथा-कृतियाँ - 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' प्रकाशित हुई। इनमें धार्मिक उद्देश्य से दृष्टांत कथाएं लिखी गयी हैं ताकि जन-साधारण की रुचि वैष्णव संप्रदाय की ओर हो जाए।

1802 में 'सिंहासन बत्तीसी' और इसी समय जे.बी. गिलक्राइस्ट द्वारा 'हिंदी स्टोरी टेलर' प्रकाशित हुई, जिसमें लोककथाओं की शैली में 100 कथाएं हैं। ये दोनों पुस्तकें लोकप्रिय हुईं, किंतु लघुकथा के आधुनिक स्वरूप से इनकी कथाएं दूर पड़ती हैं।

1832 में कलकत्ता से स्कूल बुक सोसाइटी द्वारा 'हिन्दवी में कथाएं' पुस्तक तथा 1846 में बाल गंगाधर शास्त्री द्वारा रचित 'सदुपदेश की कथाएं' पुस्तक प्रकाशित हुईं। दोनों पुस्तकों में नीतिकथाएं हैं। इसी काल में कर्नल टाड द्वारा संगृहीत हिन्दुई हस्तलिखित ग्रंथ नागरी लिपि में 'पन्नन की बात' नाम से छपा, जिसमें शिक्षाप्रद और मनोरंजनात्मक 414 कथाएं संगृहीत हैं।

असगर वजाहत ने 'संरचना' पत्रिका के पहले अंक (2008) में 'उन्नीसवीं सदी की लघुकथाएं' शीर्षक लेख में ब्रिटिश लाइब्रेरी में रखी, नवंबर 1883 में प्रकाशित 'मनोहर कहानी' पुस्तक का जो उल्लेख किया है, उसकी कहानियों को स्वयं असगर वज़ाहत ने 'अपने समय की लोकप्रिय और प्रचलित कहानियों का संग्रह' कहा है। ये कहानियाँ विराम-चिन्हों के प्रयोग के बिना

लिखी गई हैं तथा इनकी भाषा खड़ी बोली और ब्रज का मिश्रित रूप है। भाषा में सांकेतिकता और लाक्षणिकता के गुण हैं। किंतु इनमें या तो मुहावरों की व्याख्या है, या अकबर-बीरबल के किस्से हैं या मध्य एशिया के प्रसिद्ध हिकायतों तथा पंत्रतंत्र की कहानियों के परिवर्तित रूप हैं। अतः लघुकथा के वर्तमान रूप से इन किस्से-कहानियों का कोई संबंध नहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक की ये कथाएं अपने उद्देश्य, शिल्प और प्रभाव-तीनों धरातलों पर आधुनिक हिंदी लघुकथा से भिन्न हैं।

(क) हिंदी लघुकथा : 1901 से 1946 ई. तक

कोई साहित्यिक विधा, रूप या शैली सहसा ही विकसित नहीं हो जाती। उसके लिए इतिहास, बदलती परिस्थितियाँ आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मोटे तौर पर उन्नीसवीं सदी के अंत (1900 ई.) तक की छोटी कथाओं में उपदेश, बोध, नीति, शिक्षा आदि के तत्व प्रमुख रूप में रहे, किंतु 1857 की क्रान्ति और अंग्रेजी सत्ता से पिंड छुड़ाने की कशमकश, पश्चिमी दुनिया से संपर्क और प्रिटिंग प्रेस का भारत में आगमन-इन कारकों ने छोटी कहानियों के चले आ रहे स्वरूप को बदला। इस तरह आधुनिकता से युक्त रचनाएं सामने आयीं। अलौकिकता अब साहित्य में विगत समय की बात हो चुकी थी। 1900 से पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल को आधुनिक हिंदी साहित्य के युग का प्रवेश द्वार माना जाता है। इसके बावजूद उस काल की बहुत-सी रचनाएं पुरानी लकीर से जुड़ी हुई थीं। भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' जैसा व्यंग्य-प्रधान नाटक लिखा, तो प्राचीन परिपाटी पर 'चन्द्रावली' नाटिका भी लिखी। इस दृष्टि से भारतेन्दु युग का साहित्य संधि-स्थल पर खड़ा नज़र आता है। किंतु इस काल की रचनाओं में राजनीतिक व्यंग्य और सामाजिक समस्याओं का उभार साहित्य को नयी दिशा और भौतिक धरातल पर नयी सोच देने वाला था। इन सब स्थितियों-परिस्थितियों ने हिंदी लघुकथा को एक आधार और प्राथमिक स्वरूप प्रदान करने में भूमिका निभाई। यह भूमिका प्रत्यक्ष रूप में भले ही दिखाई न देती हो, किंतु साहित्य अपने समय से प्रभावित और प्रेरित अवश्य होता है। लघुकथा पर यह प्रभाव हमें पहले की छोटी कथाओं के साथ 1900 के बाद की लघुकथाओं से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है।

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अप्रैल 1901 में 'छत्तीसगढ़ मित्र' (त्रैमासिक पत्रिका) के अप्रैल अंक में माधवराव सप्रे की रचना 'टोकरी-भर मिट्टी' प्रकाशित हुई। 'छत्तीसगढ़ मित्र' के संपादक-द्वय पं. रामराव चिंचोलकर तथा माधवराव सप्रे थे। इसे हिंदी की पहली कहानी और पहली लघुकथा कहा जाता है। वास्तव में यह रचना एक साथ कईं संधि-स्थलों पर खड़ी है। इस रचना में बोध तत्व की हल्की-सी झलक इसकी बनावट में मिलती है। उसकी तीव्रगतिकता और व्यंजकता इसे एक श्रेष्ठ रचना बनाती है। दूसरे, यह रचना हिंदी कहानी और हिंदी लघुकथा- दोनों के लिए एक द्योतक है। लघुकथा के पुनर्स्थापित हो जाने के बाद अब विद्वज्जन 'टोकरी-भर मिट्टी' पर पुनर्विचार कर सकते हैं।

इस समय हिंदी पत्रिकाओं का उभार शुरू हो चुका था। 1900 से 'सरस्वती' के प्रकाशन के पश्चात् 'चाँद', 'मतवाला', 'साप्ताहिक जागरण', 'भारत मित्र', 'प्रताप' आदि समाचार पत्र तथा 'माधुरी', 'प्रभा', 'हंस', 'इन्दु' आदि पत्रिकाएं प्रारंभ हो गई थीं। किंतु 'सरस्वती' के अतिरिक्त किसी पत्रिका ने अभी लघुकथाएं छापनी आरंभ नहीं की थीं। 'सरस्वती' में 1915 में 'विमाता' लघुकथा और 1916 में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की लघुकथा 'झलमला' प्रकाशित हुई। 'झलमला' में मोमबत्ती के प्रकाश के माध्यम से नायक की मनःस्थिति को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है।

1901 के बाद माखनलाल चतुर्वेदी की पहली लघुकथा 'बिल्ली और बुखार' तथा 1920 में जगदीश चन्द्र मिश्र की पहली लघुकथा 'बूढ़ा व्यापारी' सामने आई। इन दोनों की और लघुकथाएं भी प्राप्त होती हैं। 1924 में शिवपूजन सहाय की लघुकथा 'एक अद्भुत कवि', मारवाड़ी मासिक' (कलकत्ता) के किसी अंक में प्रकाशित हुई। यह रचना सांप्रदायिकता की समस्या पर आधारित है। 1929 में प्रसिद्ध निबंधकार कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'सेठ जी', 'सलाम' आदि लघुकथाएं

लिखीं, जिन्हें देखकर प्रेमचंद ने कहा - 'शबाश यह एक नई कलम है, गद्य-काव्य और कहानी के बीच एक नई पौध, जिसमें गद्य-काव्य का चित्र और कहानी का चरित्र है।'

1930 के आस-पास सुप्रसिद्ध कवि जय शंकर प्रसाद की लघुकथाएं 'गूदड़साई', 'बेड़ी' आदि मिलती हैं। इनमें घनीभूत रूप में भाव-प्रधानता है, जो कवि प्रसाद की मुख्य काव्य-प्रवृत्ति है।

अप्रैल 1901 में प्रकाशित 'टोकरी-भर मिट्टी' से लेकर 1930 तक प्रकाशित छोटे आकार की कहानियों को अभी 'लघुकथा' नाम नहीं दिया गया था। वे कहानियों के साथ कहानियों के रूप में ही प्रकाशित हो रही थीं। दूसरे, उनमें बोधात्मक वृत्ति क्षीण होने के बावजूद विद्यमान थी।

अभी तक उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर 'लघुकथा' शीर्षक के अंतर्गत 1944 में इंदौर से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'वीणा' के नवंबर अंक में रामनारायण उपाध्याय की दो लघुकथाएं - 'आटा और सीमेंट' तथा 'मजदूर और मकान' पृ. 21 पर प्रकाशित हुई। इस प्रकार किसी पत्र-पत्रिका या पुस्तक में 'लघुकथा' शब्द का पहली बार प्रयोग 1944 में मिलता है। रामनारायण उपाध्याय की ये दोनों लघुकथाएं वर्ग-चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पहली लघुकथा में अमीर और गरीब का संवाद है, तो दूसरी में तीन मजदूरिनें आपस में ही अपने और मकान-मालिक के विषय में बात करती हैं। 'आटा और सीमेंट' लघुकथा में जब मजदूर को पता चलता है कि आटा और सीमेंट - दोनों का एक ही भाव है, तो वह मालिक से कहता है- 'अमीरों के पास जब पैसे अधिक आते हैं तो वे अपने मकानों की नींव में सीमेंट डलवाते हैं और गरीबों के पास जब कुछ भी पैसे आते हैं तो वे अपने शरीर की नींव में आटा डालते हैं। 'वह आगे कहता है- 'जब आप अपने मकानों की नींव में मनचाहा सीमेंट डलवा सकते हैं तब हमें अपने शरीर की नींव में पेट-भर आटा भी नहीं मिलता है। मकान की नींव पक्की बनती है, लेकिन आदमी की नींव कच्ची ही रह जाती है, उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता।'

इसके पश्चात 'वीणा' के अगस्त अंक में श्याम सुन्दर व्यास की लघुकथा 'ध्वनि-प्रतिध्वनि' प्रकाशित हुई।

'वीणा' में प्रकाशित उपर्युक्त लघुकथाओं में सामाजिक सोद्देश्यता तो है, लेकिन वे भाषा-शिल्प की दृष्टि से एक परिवर्तन के दौर की साक्षी भी हैं। नए भाषा-शिल्प की तलाश में निकली हुई ये लघुकथाएं सूक्ष्म व्यंग्य की बेधकता लिए हुए हैं।

(ख) हिंदी लघुकथाः 1947 से 1970 ई. तक

भारत की स्वतंत्रता से लेकर आठवें दशक में लघुकथा के सहज आंदोलन बनने तक छिटपुट लघुकथा-संग्रह प्रकाशित होते रहे, जिनकी संक्षिप्त चर्चा इस प्रकार है-

1. 1948 में प्रकाशित सुदर्शन की पुस्तक 'झरोखे' में 48 लघुकथाएं हैं, जो नीति या बोध तत्व से जुड़ी हुई हैं।

2. 1950 में आनंद मोहन अवस्थी की पुस्तक 'बंधनों की रक्षा' आई, जिसमें 28 लघुकथाएं हैं।

3. 1950 में ही डॉ. दिगंबर की लघुकथा-पुस्तक 'हरसिंगार' प्रकाशित हुई।

4. 1951 में विष्णु प्रभाकर की पुस्तक 'जीवन-पराग' प्रकाशित हुई, जिन्हें स्वयं लेखक ने 'बोधात्मक कथाएं' कहा है।

5. 1951 में अयोध्या प्रसाद गोयलीय की लघुकथाएं भारतीय ज्ञानपीठ ने 'गहरे पानी पैठ' नाम से प्रकाशित कीं।

6. 1952 में भारतीय ज्ञानपीठ ने ही निबंधकार कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की लघुकथा-पुस्तक 'आकाश के तारे धरती के फूल' नाम से प्रकाशित की।

7. 1953 में रामनारायण उपाध्याय की लघुकथा-पुस्तक 'अनजाने-जाने-पहचाने' प्रकाशित हुई, जिसमें रेखाचित्र, संस्मरण आदि का प्रभाव मौजूद है।

8. 1955 में शिवनारायण उपाध्याय की 40 लघुकथाएं 'रोज की कहानी' नाम से प्रकाशित हुई।

9. 1955 में ही अयोध्याप्रसाद गोयलीय की एक अन्य लघुकथा-पुस्तक 'जिन खोजा तिन पाइया' नाम से भारतीय ज्ञानपीठ ने प्रकाशित की।

10. 1956 में भृंग तुपकरी की 28 लघुकथाएं 'पंखुड़ियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुई।

11. 1957 में अयोध्याप्रसाद गोयलीय की छोटी-बड़ी कहानियाँ, जिसमें संस्मरण और हास्य के तत्व भी हैं, 'कुछ मोती, कुछ सीप' नाम से प्रकाशित हुईं।

12. शरदकुमार मिश्र 'शरद' की नीति-बोधपरक कथाएं 'धूप और धुआं' नाम से 1957 में प्रकाशित हुई।

13. भारतीय ज्ञानपीठ ने दार्शनिक व चिंतक रावी की लघुकथाएं 'मेरे कथागुरु का कहना है, के दो भाग क्रमशः 1958 और 1961 में प्रकाशित किए।

14. 1958 में जगदीश चंद्र मिश्र की लघुकथा-पुस्तक 'खाली भरे हाथ' प्रकाशित हुई, जो वास्तव में बोध-कथाएं हैं।

15. 1961 में ब्रजभूषण सिंह आदर्श का लघुकथा-संग्रह 'आंखें, आंसू और कब्र' प्रकाशित हुआ।

16. 1962 में श्यामनंदन शास्त्री का लघुकथा-संग्रह 'पाषाण और पंछी' प्रकाशित हुआ।

17. 1966 में 'मिट्टी के आदमी' नाम से जगदीश चंद्र मिश्र की 32 लघुकथाएं प्रकाशित हुईं, जिनका मूल स्वर व्यंग्यात्मक है।

इनके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध साहित्यकार उपेन्द्रनाथ अश्क भी 1947 के पश्चात् लघुकथाएं लिखते रहे। हरिशंकर परसाई की पहली लघुकथा 1948 में प्रकाशित हुई थी। किंतु इन दोनों प्रसिद्ध साहित्यकारों का पृथक से कोई लधुकथा-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। इनके अतिरिक्त 1956 में उपेन्द्रनाथ अश्क, कमलेश्वर तथा मार्कण्डेय के संपादन में हिंदी साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं का बृहद् संकलन 'संकेत' प्रकाशित हुआ, जिसमें एक भाग लघुकथाओं का भी है। इसमें दिनकर, सुदर्शन, बैकुण्ठनाथ मेहरोत्रा आदि की ग्यारह लघुकथाएं संकलित हैं।

1970 तक की हिंदी लघुकथा की यात्रा का अध्ययन करने पर कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। एक यह कि हिंदी में बीसवीं सदी में निरंतर लघुकथाएँ लिखी जाती रही हैं। चौथे दशक में हिंदी के कई प्रसिद्ध साहित्यकारों ने लघुकथा पर कलम चलाई। दूसरे यह कि लघुकथा के लेखक और आलोचक इसके स्वरूप, रचना-विधान पर समय-समय पर, चाहे संक्षेप में सही, विचार व्यक्त करते रहे हैं। तीसरे यह कि मोटे तौर पर 1970 तक आते-आते लघुकथा 'शाश्वत' का दामन छोड़कर समकालीन यथार्थ को सीधे तौर पर व्यक्त करने लगती है, हालांकि 'शाश्वत' का दामन छोड़ने की प्रक्रिया पहले से चल रही थी। इस प्रकार आठवें दशक में आए लघुकथा के सहज आंदोलन के लिए मजबूत पृष्ठभूमि तैयार की चुकी थी।

(ग) हिंदी लघुकथाः 1971 से 2013 ई. तक

सन् 1971 से 2010 तक की अवधि को लघुकथा का 'पुनर्स्थापना काल' कहना अधिक उपयुक्त होगा। हिंदी लघुकथा के विषय में अब तक जितना चिंतन या आलोचनात्मक कार्य हुआ है, वह प्रायः इस काल-खंड की लघुकथा के निकष पर ही हुआ है। लघुकथा के उद्भव का प्रश्न भी वास्तव में लघुकथा की पुनर्स्थापना के संदर्भ में ही देखा गया है। अतः यहाँ हम लघुकथा के उद्भव की अपेक्षा उसके पुनर्स्थापित होने के कारणों पर विचार करेंगे।

1971-72 से लघुकथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से बड़ी तीव्र गति से उभरकर सामने आयी। विशेष रूप से युवा रचनाकारों द्वारा इसे तीव्रता से अपनाया गया। प्रश्न है कि इस समय यह आश्चर्यजनक तेजी के साथ कैसे उभरकर आ गयी? इसके पीछे अब तक मुख्य रूप से निम्नलिखित कारण गिनाए जाते रहे हैं-

1. समय का अभाव या शॉर्टकट संस्कृति
2. यांत्रिक युग का ऊर्जा की बचत
3. कागज का संकट
4. लघुता से जुड़े अन्य आन्दोलन, जैसे लघु मानव, लघु पत्रिकाएँ, लघु उपन्यास आदि।

इन पर विचार करना अपेक्षित है।

1. समय का अभाव लघुकथा के पुनर्स्थापित होने का कोई कारण नहीं है। ऐसा होता, तो उपन्यास, लंबी कहानियां और नाटक हमारे साहित्यिक परिदृश्य से बाहर हो गए होते। वर्तमान काल में 'मुझे चाँद चाहिए' (1991) जैसे वृहदकाय उपन्यास लिखा और सराहा गया है। पिछले दिनों में कलिकथा वाया बाई पास', 'अल्मा कबूतरी', 'कितने पाकिस्तान', 'आवां' जैसे उपन्यास, कहानियों से भी अधिक लोकप्रिय हुए हैं। जो

लेखक समय के अभाव या शॉर्टकट संस्कृति को लघुकथा उभरने का कारण मानते हैं, वास्तव में वे लघुकथा को गंभीर रचनात्मक वस्तु न समझकर उसे समय की कमी में, शॉर्टकट में लिखने वाली चीज़ मानते हैं। इसी कारण वे लेखक आज लघुकथा परिदृश्य से ओझल भी हो चुके हैं।

2. यांत्रिक युग या ऊर्जा की बचत का तर्क भी वास्तव में आधारहीन है। क्या यांत्रिक युग साहित्य-विरोधी है और इस कारण लघुकथा उभरी है? फिर तो लघुकथा भी अपने मूल उत्स में कला या साहित्य-विरोधी है। फिर इस पर इठलाना कैसा? या क्या 'यांत्रिक युग' से अभिप्राय है कि लघुकथा भी यांत्रिक पद्धति से, 'उत्पादित' की जा रही है? यंत्रों के अधिक प्रयोग का सहारा ऊर्जा की बचत के लिए लिया जाता है। यदि इस बचत के रूप में लघुकथा का उभार आया है, तो इसका अर्थ हुआ कि लघुकथा-लेखन लेखकों की शक्ति को बचाता है। यह वास्तव में सामाजिक दायित्व से ही पलायन का सूचक है, क्योंकि गहनता से समाज के जटिल यथार्थ पर चिंतन करना और उन पक्षों को उकेरना ऐसे रचनाकारों की रचनाओं में शामिल नहीं होगा, जो एक रचना का उत्स ही ऊर्जा की बचत के अर्थ में मानते हैं। इन पहले दो कारणों से लघुकथा का 1971-72 से उभार मानने वाले लघुकथा लेखक वास्तव में गंभीर रचनाकर्मी नहीं थे।

3. कागज का संकट भी लघुकथा के सामने आने का कारण नहीं है। देश के समक्ष जो अन्य राजनीतिक समाजिक समस्याएँ थीं, वास्तविक संकट वही था, जिसका लेखक से संबंध है। पत्र-पत्रिकाओं की संख्या इस अवधि में बढ़ी ही थी।

4. लघुता से जुड़े आंदोलनों पर इस दृष्टि से गंभीरता से विचार करना अपेक्षित है। 1960 से 'नयी कविता' उभार में आयी जिसमें 'लघुमानव' को प्रतिष्ठित किया गया। इस प्रवृत्ति की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि जीवन की छोटी-से-छोटी या उपेक्षित मानी जाने वाली वस्तु या व्यक्ति को भी इसमें उचित महत्व दिया गया। हां, लघु पत्रिकाओं ने लघुकथा को उभारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दूर-दराज से छोटे-बड़े अंचलों से निकलने वाली लघु पत्रिकाओं ने अनेक नये लेखकों को प्रोत्साहित किया। इसी के साथ एक खतरा भी लघुकथा के साथ आ जुड़ा। इन लघु अर्थात अव्यावसायिक और साहित्यिक पत्रिकाओं में से जिनके संपादक परिपक्व प्रकृति के थे, वे तो केवल गंभीर रचनात्मक उद्देश्य से प्रसूत लघुकथाओं को अपनी पत्रिका में स्थान देते रहे, किंतु जो संपादक व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से प्रेरित थे, उन्होंने लघुकथा को सतह पर पड़ी हुई स्थिति या घटना का ब्यौरा-भर बना डाला। इससे लघुकथा का बहुत अहित भी हुआ। रातों-रात नये लेखक और संपादक पतंगों की भांति पैदा भी हुए और मर भी गए।

संपर्क : बसेरा, 1882, सेक्टर-13, करनाल-132001 (हरियाणा), **मो.** 9416152100

समकालीन लघुकथाः जन-संघर्ष और तज्जनित अनुभवों को आवाज में तब्दील करने का कारगर औजार

डॉ. बलराम अग्रवाल

शास्त्र-ज्ञान और रचनात्मकता

लघुकथा-रचना के सिद्धान्तों को बताने वाली अनेक आलोचकों की पुस्तकें अब तक प्रकाश में आ चुकी हैं। इन समीक्षा लेखों और पुस्तकों की आवक के बाद सवाल यह पैदा होता है यदि कोई नव-लघुकथाकार इन सिद्धान्तों का अनुगमन न करे तो उसकी रचना की स्थिति क्या हो सकती है?

लघुकथा-रचना पर केन्द्रित नवाचार आठवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों से ही **नवभिन्न** पत्र-पत्रिकाओं के लघुकथा **नवविशेषांकों** तथा लघुकथा-बहुल अंकों में उस समय के लघुकथा उन्नायकों द्वारा प्रस्तुत **किये** जाते रहे हैं। उनमें **शशि** कमलेश, **त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल**, भगवान **प्रियभाषी**, कृष्ण कमलेश का नाम प्रमुखता से **लिया** जा सकता है। प्रायः रचना-**पद्धति** की **प्रकृति** के आधार पर सिद्धान्ततः अनमित अथवा नवभिन्न श्रेष्ठ कृतिकारों द्वारा व्यवहृत और परीक्षित सिद्धान्तों को ही समीक्षा-शास्त्र में स्वीकार किया जाता है। इसलिए जिन लघुकथाओं में उक्त सिद्धांतों की अवहेलना किसी भी रूप में हुई होती हैं, उन्हें किसी न किसी अर्थ में दोषपूर्ण मान लिए जाने की प्रवृत्ति भी सामने आती रही है। यहाँ सवाल यह जरूर पैदा होता है कि क्या कोई कथाकार सिद्धांत-ग्रन्थों को पढ़कर कलम उठाता है? जवाब है–नहीं, ऐसा नहीं होता। केवल शास्त्र-ज्ञान के बल पर कोई भी व्यक्ति उत्तम कोटि का लघुकथाकार नहीं बन सकता। बावजूद इसके कि शास्त्र-ज्ञान रचना को बेहतर बनाने की दिशा में सहायक सिद्ध होता है; लघुकथाकार का निरन्तर अध्ययनशील रहना तथा अभ्यास में बने रहना आवश्यक है। इसी सिद्धान्त का अनुगमन करते हुए आठवें दशक के लघुकथाकारों ने अपने काल की लघुकथाओं के अध्ययन के माध्यम से इस नवीन कथा-विधा के सिद्धान्तों को आकार देना प्रारम्भ किया। कोई रचनाकार या तो अपनी साधना और व्यावहारिक परीक्षा के माध्यम से ऊँचाई पकड़ता है या अपने अध्ययन के बल पर। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **निर्माणकारिणी** शक्ति और समीक्षाशास्त्र के सिद्धान्तों के मध्य परस्पर यह एक सम्बन्ध है जिसका निरन्तर पनपते रहना आवश्यक है।

यह लेख यद्यपि लघुकथा को केन्द्र में रखकर लिखा जा रहा है तथापि साहित्य की किसी अन्य रचनात्मक विधा पर भी यह ज्यों का त्यों लागू हो सकता है। लघुकथा के जिन तत्वों की मीमांसा डॉ० अशोक भाटिया, भगीरथ परिहार, सुकेश साहनी, डॉ० सत्यवीर मानव, डॉ० रामकुमार घोटड़, प्रो० रूप देवगुण आकद अनेक चिंतक-विचारक अब तक कर चुके हैं, उनके आधार पर अथवा अपने अध्ययन की विवशता के आधार पर अध्येता यह समझ सकता है कि किसी लघुकथा में दोष क्या है और नवीनता क्या है? किसी भी रचना में दोष या तो रचना-पद्धति से सम्बद्ध होगा या फिर फिर समेकित प्रभाव की दृष्टि से होगा। कारण जो भी हो, यदि लघुकथा को पढ़ते-सुनते हुए पाठक में उसके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न न हो, किसी प्रकार का रस उसे न मिल सके तो कथाकार का सारा श्रम निरर्थक सिद्ध हो जाता है।

भोथरे कथानक और इतिवृत्तात्मक घटनाएँ

प्रत्येक कथा रचना का प्रमुख अवयव उसका कथानक होता है। यद्धपि गत वर्षों में प्रयोग-विशेष के कथानकविहीन कथा-रचनाएँ भी सामने आती रही हैं; परन्तु वे सब उच्च विद्वता का अलंकरण पाए वर्ग विशेष की सीमा से बाहर अपना स्थान बनाने में असफल रही हैं। किसी भी कथा-रचना के दोषों अथवा गुणों पर विचार करने के क्रम में सबसे पहले ध्यान कथानक पर जाता है। लघुकथा में भी सूक्ष्म ही सही, कथानक का होना आवश्यक है। लेकिन ध्यान रखने की बात यह है कि जिन कथानकों से पाठक अनेक बार गुजर चुका हो, उन्हें पढ़ने-जानने की रुचि उसमें भला क्यों होगी? दैनिक जीवन की सामान्य इतिवृत्तात्मक घटनाओं को जानने में भी उसकी रुचि भला क्यों होगी? कथाकार जब तक घटना के किसी अंश-विशेष को कथा नहीं बनाएगा, पाठक की रुचि को जाग्रत करने का कौशल स्वयं में उत्पन्न नहीं करेगा, उस उद्देश्य की प्राप्ति से वंचित रहेगा, जिसके लिए साहित्य रचा जाता है। यह आस्था और विश्वास का नहीं, वैज्ञानिक सोच का युग है, इसलिए तर्क और बुद्धि की कसौटी पर खरा न उतरने वाला कथानक अथवा उसका एक अंश भी दोषपूर्ण ही माना जाएगा। कथाकार जहाँ कहीं भी पात्र की स्थिति और उसके संवाद में सामंजस्य नहीं बैठाएगा; परिस्थिति और घटनाक्रम का मेल नहीं बैठाएगा; कारण, कार्य और परिणाम में क्रमगत संगति नहीं बैठाएगा, लघुकथा को पद्धति-विषयक दोष से मुक्त नहीं रख पाएगा। इसके अलावा कथानक के भीतर आने वाले अन्य कथांशों की कड़ियाँ यदि ठीक से व्यवस्थित न हो सकीं तो रचना न तो लघुकथा ही बन पाएगी न कहानी रह पाएगी।

अनेक लघुकथाओं में कथानक का अनावश्यक विस्तार देखने को मिलता है। अनेक में कुछेक शब्दों का तो अनेक में कुछेक भावों का दोहराव मिलता है यानी ऊपरी पैरा में कही बात अथवा शब्द ज्यों के त्यों नीचे भी दोहरा दिए जाते हैं। कथाकार का यह कृत्य पाठक में ऊब उत्पन्न करता है। कथानक का क्षिप्र गति से समापन की ओर बढ़ना लघुकथा का विशिष्ट गुण है। जिन कथानकों में गति की क्षिप्रता का निर्वाह नहीं किया जाता वे थकी-हारी कहानी तो कहे जा सकते हैं, लघुकथा नहीं। सोचिए, कोई रचना अगर बार-बार एक ही बिन्दु से गुजरती रहेगी अथवा एक ही बिन्दु पर टिकी रहेगी तो उसे लघुकथा कौन स्वीकार करेगा? क्योंकि वहीं-वहीं घूमती रहकर पाठक के मनो-मस्तिष्क को उलझाती हुई परिस्थितियाँ किसी परिणाम तक पहुँच नहीं पाएँगी, यह तय है। ऐसे में, कथा कथा न रहकर कथा का कैरीकेचर बन जाती है। इधर कुछ लघुकथाओं में विचार-पक्ष की अधिकता इतनी देखने को मिलने लगी है कि एक नयी विधा 'लघु-आकारीय निबन्ध कथा' जन्म लेती-सी लग रही है। वस्तुतः हमें नहीं भूलना चाहिए कि लघुकथा कथा-साहित्य की विधा है, दर्शन अथवा कथेतर साहित्य की नहीं। पाठक लघुकथा पढ़ता है कथा के माध्यम से अपने मूल्यगत दायित्वों को पहचानने और अपनी रुचियों का परिष्कार करने के लिए; न कि विद्वता प्राप्त करने हेतु किसी रूखे और रसहीन विषय के जंगल में भटकने के लिए। इसलिए लघुकथा में कथा-तत्व का रुचिकर सौन्दर्य और सौष्ठव हर हाल में अभीप्सित है।

वस्तु-चयन और प्रस्तुगत कौशल

लघुकथा का विषय और वस्तु पाठक की अनुमान-सीमा के भीतर होनी चाहिए। ऊँची कल्पना और अत्यधिक भावुकता पर आधारित पात्रों, परिस्थितयों, घटनाओं और स्थानों का चित्रण सामान्य स्तर के पाठकों की अभिरुचि का कारण नहीं बन पाते। अतीत के लम्बे अंतराल से वस्तु संग्रृहीत करने वाले उच्च कोटि के कथानक भी सामान्य पाठक के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं। बशर्ते उन्हें आज के समय से कुशलतापूर्वक जोड़कर रुचिकर रूपक बना दिया गया हो। उच्च कोटि का सहृदय भी ऐसे कथानकों के रस का आस्वादन नहीं कर सकता है। साधारण जन उच्च कल्पना प्रसूत ऐकांतिक वातावरण का अनुमान-गम्य अनुभव आसानी से नहीं कर सकते; लेकिन ऐसा नहीं मानना चाहिए कि वे कर ही नहीं सकते, तथापि सुदूर अतीत के और उच्च कल्पना प्रसूत कथानकों से लघुकथाकार का सामान्यतः बचना ही श्रेयस्कर है। रचना तत्व संबंधी ऐसे दोष पात्रों के चरित्र और संवादों में भी हो सकते हैं। पात्रों की स्वरूप निर्मिति अथवा उनकी कल्पना यदि अनुमानित ज्ञान और

अनुभव के अनुरूप नहीं होगी तो पाठक के गले वे नहीं उतरेंगे। समकालीन लघुकथा के केन्द्र में मनुष्य है और मनुष्य गोचर-अगोचर इस समूची प्रकृति का केन्द्र है। उसकी स्थिति 'जल में कुम्भ कुम्भ में पानी, बाहर-भीतर पानी' जैसी है; यानी जगत के सारे कार्य-व्यवहार येन-केन-प्रकारेण मनुष्य से जुड़े हैं और मनुष्य उनसे। इसलिए मानव के साथ-साथ मूर्त-अमूर्त समूची मानवेतर सृष्टि लघुकथा में स्थान पाने की अधिकारी है और कथ्य की आवश्यकता के अनुरूप उपयुक्त भी हो सकती है। सभी स्तर के पात्रों को जीवन और जगत में यथार्थ चेतन प्राणी की तरह आचरण और व्यवहार करते दिखाया जाना चाहिए अन्यथा उनकी यथार्थता विश्वसनीय नहीं हो सकेगी। संवाद यदि अनावश्यक रूप से पांडित्य-पूर्ण हुए और उनकी शैली वस्तुस्थिति के अनुरूप न हो सकी तो सामान्य पाठक भी ऐसी रचना को दोषपूर्ण ही मानेगा। संवादों का गठन पात्र के ही नहीं, पाठक के भी बौद्धिक और सांस्कृतिक गठन के अनुरूप यानी मानवीय धरातल पर स्थित होना आवश्यक है। यह नहीं भूलना चाहिए कि रचना को रुचिकर बनाए रखने के मद्देनजर लघुकथा में वातावरण की निर्मिति नैरेशन द्वारा न करके संवादों द्वारा ही सांकेतिक रूप से सम्पन्न कर दी जाती है।

संवाद और विवरणात्मकता

समीक्षकों और आलोचकों के संज्ञान में ऐसे अनेक लघुकथा संग्रह आते हैं, जिनमें लगभग समूची लघुकथा को कथाकार अपनी ओर से लिख डालता है, पात्र को लेशमात्र भी आगे नहीं आने देता। इसे लघु कथाकार का मोहाविष्ट रहना कह सकते हैं। मोहाविष्ट कथाकार संवाद प्रस्तुति का दायित्व भी सम्बन्धित पात्रों को न सौंपकर स्वयं ही सम्पन्न करता है, जिसके कारण कथा का वह रूप, वह सौंदर्य और वह प्रभाव उभरकर नहीं आ पाता, जिसकी वह अधिकारी होती है और जो वस्तुतः उभरकर आना चाहिए। वर्णनात्मक अंशों की अधिकता लघुकथा में विषय प्रस्तुति की सजीवता को आहत करती है। वर्णात्मता को लघुकथा में साधन रूप में ही अपनाना चाहिए, साध्य रूप नहीं। वर्णानात्मकता कथानक-विस्तार में ही अधिक योग देती है न कि वस्तु-प्रकटीकरण अथवा रुचिसंवर्द्धन में। वर्णन यदि आवश्यकता से अधिक हुआ तो पाठक के चित्त में ऊब पैदा कर सकता है। कोई भी कथा ऊब पैदा करने के लिए नहीं लिखी अथवा कही जाती, इसलिए पाठक में ऊब उत्पन्न करने वाले किसी भी कारक के प्रयोग से रचनाकार को बचना चाहिए और यही विचार लघुकथा की निर्मित का उत्स है। वर्णन की अधिकता कथावस्तु की प्रस्तुति के अभिप्राय, उसके तात्पर्य को धूमिल करती है। ऐसा नहीं कि मात्र लघुकथा ही है जिसमें वर्णात्मकता की अधिकता रचना के प्रभाव का हनन करती है, कहानी और उपन्यास में भी यह देखने में आता है। प्रेमचन्द और प्रसाद से लेकर आधुनिक युग के भी अनेक कहानीकारों की कहानियाँ इस दोष से ग्रसित पायी जाती हैं। वस्तुतः कहानियों में अनावश्यक वर्णन-विस्तार ने भी आठवें दशक के कथाकारों को लघुकथा-लेखन की ओर प्रवृत्त किया था। वर्णनात्मक अंशों की अधिकता रचना की वांछित काया के अतिक्रमण का कारण बनती है, जो सुधी आलोचक को ही नहीं, सामान्य पाठक को भी अखरती है। वर्णानात्मक अंशों की कमी कथा रचनाओं में प्रभाव की समष्टि को घनीभूत करती है। वर्णन और संवाद, कुल मिलाकर अपने सामंजस्य की अपेक्षा कथाकार से करते हैं। लघुकथा की भाषा में काव्य-गुणों को प्रश्रय देने की बात प्रायः स्वीकार की जाती है; लेकिन उसमें भी यदि काव्य-तत्व ही प्रबल हो उठें तो रचना कथा न होकर गद्य-काव्य की श्रेणी में जा खड़ी हो सकती है। ऐसी रचनाएँ शैली की भिन्नरूपता के मद्देनजर भले ही स्वीकार कर ली जाएँ, लघुकथा के रूप में उनकी सर्वग्राह्यता संदेहास्पद हो सकती है। लघुकथा में तथ्य-प्रतिपादन इतने काव्यात्मक ढंग से न हुआ हो कि कथा-तत्व ही बाधित प्रतीत होता रहे।

संवेदनात्मक चुभन

रचना-विधान संबंधी कुछेक उपर्युक्त दोषों के अलावा समकालीन लघुकथा में मुख्यतः दो बातें और देखने में आ रही हैं, पहली, संवेदनात्मक चुभन की कमी और दूसरी, बौद्धिकता का अतिरेक। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लघुकथा क्षिप्र गति से अपने समापन की ओर बढ़ती है। तात्पर्य यह कि प्रतिपाद्य तक पहुँचने की उसकी गति इतनी तीव्र होती है कि उसमें एक नुकीलापन पैदा हो जाता है। इस नुकीलेपन को ही कुछेक मित्र लघुकथा का सर्वस्व मानकर कहने लगे हैं कि लघुकथा

का अन्त नुकीला होना चाहिए। इसके लिए वे 'पंच लाइन' शब्द का प्रयोग करते हैं। हम जानते हैं कि सिर्फ नोंक को पेंसिल कभी नहीं कहा जाता। पहले पेंसिल प्राप्त की जाती है; आवश्यकतानुसार, नोंकदार उसे बाद में बनाया जाता है। अपने अनुभव से हम यह भी जानते हैं कि पेंसिल एकाएक नुकीली नहीं होती। कुछ ऊँचाई से शंक्वाकार छीलते हुए उसे शनैः शनैः नुकीला बनाया जाता है। कुल मिलाकर यह कि लघुकथा का नुकीलापन भी एक कला है और कुशल प्रक्रिया के तहत आकार पाता है, अन्तिम पायदान पर पहुँचकर एकाएक नहीं। अधिक नुकीला बनाने के ताव के परिणामस्वरूप आवश्यकता से अधिक छील-छील कर बचपन में हम सबने अनगिनत नोंकें तोड़ी हैं, कितनी ही पेंसिलें बरबाद की हैं। समझदार लोगों के हाथों भी बनाते-बनाते नोंक टूट जाती है और उसके टूटने की निरन्तरता पेंसिल को अन्ततः समाप्त कर देती है, यह भी अनेक बार के अपने अनुभव से हम जानते हैं। इन तथ्यों को जाने-समझे बिना कोई भी आलोचक नुकीला होने की लघुकथा की प्रक्रिया के साथ न्याय नहीं कर सकता। प्रक्रिया ही है जिसके कारण लघुकथा से ध्वनित होनेवाली संवेदना नुकीली हो उठती है। उस नुकीलेपन का, नुकीलेपन की उस चुभन का अनुभव पाठक जितना अधिक करेगा, रचना उतनी ही अधिक सफल मानी जाएगी। कहने का तात्पर्य यह कि लघुकथा के माध्यम से यदि रुचि आंदोलित नहीं होती, बुद्धि सुसंस्कृत नहीं होती तो लघुकथा- लेखन का हेतु भी समाप्त समझना चाहिए। इसलिए लघुकथाकार को चाहिए कि वह रुचिरता को अक्षुण्ण रखते हुए विषय को शनैः शनैः नुकीला बनाते हुए इस प्रकार आगे बढ़े कि पाठक का चित्त बिंध-सा जाए। लघुकथा की इस बेधक प्रकृति को 'पंच लाइन' मात्र में जकड़कर न देखा जाए, ऐसा दबाव किसी पर नहीं बनाया जा सकता, लेकिन इस पर विचार करने का अनुरोध अवश्य किया जा सकता है।

जन-संघर्ष और तज्जनित अनुभव

लघुकथा का उद्देश्य और लक्ष्य जीवनानुभवों को ऐसी रुचिकर शैली में सामने लाना है जो सरलता से रुचि को प्रभावित कर सके। तात्पर्य यह कि लघुकथा के विषय को नवविद्वता के साथ नहीं, सामान्य रूप में उपस्थित करना चाहिए। जटिल और विशिष्ट ज्ञान के बूते पर खड़े किए गये दूर-दराज के विषय लघुकथा में न उठाए जाएँ तो अच्छा। इस तथ्य पर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो लघुकथा जन-साहित्य की अपनी पहचान को वैसे ही खो बैठेगी जैसे प्रेमचंदोत्तर कहानी ने अनेक आन्दोलनों के बावजूद खो दी है। साथ ही, जैसे जटिल और विशिष्ट ज्ञान युक्त विषयों से बचने की सलाह दी जा रही है, वैसे ही बार-बार दोहराये जाकर अति सामान्य हो चुके विषयों को त्यागने की ओर यथेष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है। समकालीन लघुकथा साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें रचना का आकार लघु होने के बावजूद कथा की गति अत्यन्त घुमावदार है। ऐसी लघु कथाओं को पाठक तब तक ग्रहण नहीं कर पाता जब तक वह वाद-विशेष के, दर्शन के, मनोविज्ञान के कुछ साधारण और कुछ शास्त्रीय सिद्धान्तों को नहीं जान लेता। ऐसी रचनाएँ दुरूह शैली में लिखा शास्त्रीय ज्ञान अधिक और कथा कम हो सकती हैं। लघुकथा को यदि सही अर्थों में गति प्रदान करनी है तो सूक्ष्म बौद्धिकता को उसमें वर्ज्य मानना होगा। जैन और बौद्ध आदि कालों में लघुकथा किसी सिद्धान्त अथवा तथ्य-विशेष का प्रतिपादन करनेवाली रचना अवश्य रही है; लेकिन समकालीन लघुकथा सामान्य जन-जीवन की अनेक त्रासदियों की ही नहीं, जन-संघर्षों और तज्जनित अनुभवों को विस्तारित करने, उन्हें आवाज में तब्दील करने का कारगर औजार भी है।

संपर्क : एम-70, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032,
मो. 8826499115

लघुकथा में शिल्प पर विचार

माधव नागदा

गोपाल राय के अनुसार, 'किसी साहित्यिक कृति के शिल्प का विवेचन करने का अर्थ उस कौशल का उद्घाटन करना है, जिससे उसके रूप या आकार की निर्मिति हुई है।' मार्क शोरर कहते हैं, 'जब हम शिल्प की बात करते हैं तब हम लगभग हर चीज की बात करते हैं, क्योंकि शिल्प ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक का अनुभव, जो उसकी विषय-वस्तु है, उसे अपनी ओर ध्यान देने को विवश करता है' "शिल्प वह एकमात्र साधन है जिसके द्वारा लेखक अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है, जिसके माध्यम से वह उसके अर्थ को संप्रेषित कर सके, और अंततः उसका मूल्यांकन करता है।' सीधी सपाट भाषा में बात करें तो शिल्प यानी गढ़न, अंदाजे बयां, कहन पद्धति, रचना विधान, रचनाकार द्वारा स्वयं को तलाशने की बेचैनी। लघुकथा के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि इस बेचैनी के चलते ही लघुकथाकार प्रस्तुति के ऐसे नये-नये ढंग आविष्कृत करता है जिनके द्वारा वह पाठकों के दिलोदिमाग तक अपनी राह बना सके। वैसे शिल्प लघुकथाकार का आंतरिक लोकतन्त्र है जिसके अंतर्गत उसे यह निर्णय करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है कि किसी कथ्य विशेष के लिए कौन सी कहन पद्धति अपनायी जाए। कई बार यह देखा गया है कि समान कथ्य के लिए दो अलग-अलग रचनाकार सर्वथा भिन्न शिल्प की बुनावट करते हैं। यहाँ कोई नियम-कायदे, कोई शास्त्र काम नहीं देता। दूसरी ओर कई बार ऐसा भी होता है कि कथ्य अपने साथ रूप भी लेकर आता है। यह रचनाकार के अंतस की एक विस्मयकारी घटना है। जब अवचेतन में कोई कथ्य उमगता है तो इसके साथ ही प्रस्तुति का एक अमूर्त खाका भी चमक उठता है। यह स्वतःस्फूर्त शिल्प है। परंतु जब यह परिघटना नहीं होती है, तब लघुकथाकार को अपना मार्ग स्वयं तलाशना पड़ता है।

एक लघुकथाकार के लिए रूप की तलाश बहुत टेढ़ा काम है। वह उपन्यासकार या कहानीकार की तरह निश्चिंत होकर कल्पना के घोड़े नहीं दौड़ा सकता। वह इस प्रकार का एक भी वाक्य, एक भी शब्द, एक भी दृश्य, एक भी चित्रण, एक भी संवाद, एक भी हाव-भाव समाविष्ट नहीं कर सकता जो लघुकथा की कसावट को लुंजपुंज कर दे। यहाँ तक कि उसे एक कवि की भाँति इस बात के प्रति भी सचेत रहना पड़ता है कि कहाँ अर्दधविराम आयेगा, कहाँ पूर्णविराम और किस स्थान पर प्रश्नवाचक व विस्मयादिबोधक चिह्न लगाये जाएंगे। उसे यह भी ध्यान रखना होता है कि कहाँ पैराग्राफ बदलना है और उसकी लंबाई कितनी रखनी होगी। इस तरह लघुकथा को उस मंज़िल पर पहुंचाना होता है जहां यदि एक शब्द भी निकाल दिया जाए तो लगे कि इमारत ढह जायेगी। सब कुछ बहुत कसा हुआ, सुगठित, मितव्ययता के साथ।

लघुकथा के तीन अंग होते हैं; क्या (कथ्य), कैसे (शिल्प) और क्यों (लक्ष्य, दृष्टिकोण या विचार)। शिल्प कथ्य और लक्ष्य के मध्य एक सेतु का कार्य करता है। शिल्प जितना आकर्षक होगा पाठकों की आवाजाही भी उतनी ही अधिक होगी। इस सेतुबंध के लिए लघुकथाकार कई-कई शैलियों का सहारा लेता है यथा–वर्णनात्मक, संवादात्मक, प्रतीकात्मक, व्यंग्यात्मक, आत्मकथात्मक, रेखाचित्रात्मक आदि। कुछ लघुकथाकार पत्र शैली, डायरी शैली, नाटक शैली, रिपोर्ताज शैली का भी प्रयोग करते हैं, यद्यपि इस तरह के उदाहरण कम ही हैं। अनेक लघुकथाओं में जातक कथा, लोककथा, फैंटेसी, फ्लैश बैक, पौराणिक आख्यान के कथा शिल्प भी प्रयुक्त हुए हैं, जिनके माध्यम से समसामयिक परिदृश्य का

खूबसूरती से उद्घाटन हो सका है। भगीरथ परिहार शिल्प यानी तकनीक और शैली के अंतर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, 'तकनीक और शैली क्या है? अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की योजना ही तो है। तकनीक जहाँ पर रचना की आंतरिक बुनावट पर ध्यान केन्द्रित करती है, वहाँ शैली अभिव्यक्ति की विशिष्टता पर केन्द्रित होती है। तकनीक और शैली का संबंध लेखक के रचना कौशल और कथा की आत्यंतिक जरूरतों पर निर्भर करता है।'

लघुकथाकार के रचना कौशल का अनुमान उसके द्वारा दिए गये शीर्षक से ही हो जाता है। शीर्षक न केवल ध्यानाकर्षक और उत्सुकता जगाने वाला, बल्कि लघुकथा के केंद्रीय विचार का संवाहक भी होना चाहिए। बलराम अग्रवाल की एक लघुकथा का शीर्षक है 'आखिरी उसूल'। इस शीर्षक से एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है जो लघुकथा को पूरा पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। इसी प्रकार निम्न शीर्षक भी बहुत कुछ कह जाते हैं, अभी बहुत कुछ शेष है (सूर्यकांत नागर), कलेजा बंदर का (सतीश राठी), कैसी बदनामी (रेणु चन्द्रा), रामदीन का चिराग (गोविंद शर्मा), अयोध्या में खाता बही (हरिशंकर परसाई), उंगली के पोरों पर उतरे आँसू (पारस दासोत), भ्रम के बाज़ार में (संतोष सुपेकर), अनंत में अम्मा हँसती है (मुकेश वर्मा), कपों की कहानी (अशोक भाटिया) आदि। जाहिर है इनमें से कुछ शीर्षक काव्यात्मक हैं, कुछ व्यंग्यात्मक तो कुछ कथात्मक हैं।

लघुकथा का आरंभ और अंत भी शिल्प का एक अहम हिस्सा है जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। लघुकथाकार इन दो बिन्दुओं को लेकर जितना ऊहापोह में रहता है उतना मध्य को लेकर नहीं। प्रभावी आरंभ और सटीक समापन अलग कौशल की अपेक्षा रखते हैं। आरंभ के लिए प्रेमचंद का यह कथन लघुकथा के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कहानी के लिए, 'कहानी वह ध्रुपद की तान है जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।'

लघुकथा का आरंभ चाहे संवाद से हो, चाहे वर्णन से या फिर चरित्र-चित्रण से; परंतु कुछ ऐसे हो कि इसमें रचनाकार का सम्पूर्ण रचना-कौशल दिखाई दे; 'ध्रुपद की तान' की तरह। कहानीकार किरण सिंह कहती हैं, 'कथा की पहली पंक्ति आसमान की चील होती है जो झपट्टा मार कर सुनने आए शिकार को दबोच ले और अपने साथ ले उड़े।' सुकेश साहनी अपनी लघुकथा 'बिरादरी' का आरंभ यों करते हैं;

'बाबू।' मैं कार से उतरा ही था कि अपने बचपन का सम्बोधन सुनकर चौंक पड़ा। किसी पुराने परिचित से सामना होने की आशंका मात्र से मेरे कान गर्म हो उठे...।'

यह आरंभ एक साथ कई बातों की ओर संकेत कर देता है। यह कि कथानायक बड़ा आदमी बन गया है। वह अपने बचपन से पीछा छुड़ाना चाहता है। यानी एक किस्म का झूठा बड़प्पन उसके भीतर घर कर गया है। पाठक देखना चाहेगा कि इस अहंकार का क्या हश्र होता है; खण्ड-खण्ड होता है कि और भी परवान चढ़ता है।

जोगिंदर पाल अपनी लघुकथा 'प्रेत का आरंभ' इस वाक्य से करते हैं-'मैं भूतों में पूरा विश्वास रखता हूँ।' अब इस आरंभ को देखकर कौन पाठक लघुकथा को पूरा पढ़े बिना छोड़ देगा? यह आरंभ 'चील के झपट्टा मारने' की तरह ही है।

लघुकथा का अंत आते-आते यह ज्ञात होता है कि लेखक किस भूत की बात कर रहा है। अर्थात वह आदमी जो अपनी आदमियत छोड़ बैठा है।

आगाज़ बता देता है कि अंजाम क्या होगा। मतलब, आरंभ देखकर अंत का अनुमान लगाया जा सकता है। परंतु पाठक के मन-मस्तिष्क पर वे लघुकथाएँ सदा के लिए अंकित हो जाती हैं, जिनका समापन उसकी कल्पना के विपरीत बिन्दु पर जाकर होता है। जरूरी नहीं कि ऐसा अंत चमत्कारिक हो, प्रतीकात्मक या प्रश्नाकुल कर देने वाला हो। बल्कि सहज भी हो सकता है। उदाहरण के रूप में हम रामेश्वर कामबोज 'हिमांशु' की 'ऊंचाई' लघुकथा ले सकते हैं। इसका आरंभ इस तरह होता है-

'पिता जी के अचानक आ धमकने से पत्नी तमतमा उठी-' लगता है बूढ़े को पैसों की जरूरत आ पड़ी है, वरना यहाँ कौन आने वाला था! अपने पेट का गड्ढा भरता नहीं, घरवालों का कहाँ से भरेंगे?' मैं नज़रें झुकाकर दूसरी ओर देखने लगा।'

इस आरंभ को देखकर पाठक अनुमान लगाता है कि पिता जी यहाँ बस एक-दो दिन के ही मेहमान हैं। बहू के पटकों-झटकों से अपमानित और बेटे की उपेक्षा का शिकार होकर बेरंग ही गाँव लौट जायेंगे, परंतु लघुकथाकार बड़ी कुशलतापूर्वक कहानी को अलग ही अंज़ाम पर पहुंचाता है। पिता जी घर की हालत देखकर कुछ मांगने की बजाय सौ-सौ के दस नोट बेटे को थमा देते हैं।

लघुकथा के मध्य भाग पर काम करते हुए सदैव यह खतरा रहता है कि अनावश्यक विस्तार न हो जाए, लघुकथा अपने शिल्प का अतिक्रमण करते हुए कहानी के क्षेत्र में प्रवेश न कर जाए, लफ़्फ़ाज़ी का शिकार न हो जाए, रूप के बोझ तले दबकर कराह न उठे। मध्य भाग रीढ़ की हड्डी है। लघुकथा की रीढ़ नाजुक होती है, इस पर कहानी की तरह अधिक बोझ वांछित नहीं है। इसीलिए निष्णात लघुकथाकार ऊपर वर्णित शैलियों के दायरे में रहते हुए भी संक्षिप्तता, सांकेतिकता और कलात्मकता का संतुलन बनाए रखता है। कभी-कभी तो वह रूढ़ कथा शैलियों के पार जाकर बिलकुल मौलिक कथा पद्धति आविष्कृत कर लेता है जो मील का पत्थर सिद्ध होती हैं। गुलशन बालानी की लघुकथा 'गुप्त सूचना' का शिल्प देखते ही बनता है। यहाँ कथ्य केवल तीन फोन कॉल में सिमटा हुआ है। प्रथम फोन किया जाता है दारोगा जी को यह बताने के लिए कि सेठ ज्वालाप्रसाद के गोदाम में दो नंबर का माल पड़ा है। दूसरा फोन सेठ को दारोगा करता है कि आपके गोदाम में छापा पड़ने वाला है। तीसरा फोन पुनः दारोगा को किया जाता है। परंतु यह फोन सेठ करता है। इन तीन फोन संवादों से दारोगा व सेठ का चरित्र तार-तार हो जाता है। लघुकथा सिर्फ आठ पंक्तियों की है-

'हैलो दारोगा जी, एक गुप्त सूचना है। सेठ ज्वाला प्रसाद के हरीनगर वाले मकान में नंबर दो का माल भरा पड़ा है, छापा मारकर पकड़ लो, साला ब्लैक करता है।'

'हैलो सेठ जी। एक गुप्त सूचना है, अपना गोदाम नंबर चार खाली करवा लो, अब से तीन घंटे बाद छापा मारने के ऑर्डर हो गए हैं।'

'हैलो दारोगा जी। आपने गुप्त सूचना देकर मेरी इज्जत बचा ली, आज रात गप-शप करने आप हमारे गरीबखाने पर तशरीफ ले आएँ, शराब और शबाब दोनों का इंतजाम है...आपकी गुप्त सूचना की फीस अलग होगी।'

कुशल लघुकथा शिल्पी अधिक विस्तार में न जाकर केवल कुछ संवाद, पात्रों के हाव-भाव या प्रतीक से ही अपनी बात कह देता है। उसे अलग से चरित्र या परिवेश चित्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती। 'आनंद बिल्थरे की संवाद शैली में रचित लघुकथा 'पक्की रिपोर्ट' के आरंभिक कुछ संवादों से ही परिवेश के साथ-साथ पात्रों के चरित्र साकार हो उठते हैं। लघुकथा इस प्रकार है-

'हजूर, रिपोर्ट लिखानी है।'

'अबे, काहे की रिपोर्ट? कच्ची लिखूँ या पक्की?'

'मैं कच्ची-पक्की क्या जानूं सरकार। गई रात डाकू मेरी जवान बेटी को उठाकर ले गए।'

'अबे, तो हम क्या करें? तूने पहले रिपोर्ट क्यों नहीं लिखाई कि तेरी जवान बेटी भी है?'

'कुछ उपाय करो हजूर।'

'कैसा उपाय? क्या तेरी लौंडिया हमारी जेब में रखी है?'

'हजूर, माई बाप, मेरी बिटिया नादान है।'

'अबे, अब काहे की नादान रही। तेरी लौंडिया तो दूसरी फूलन बनेगी, फूलन।'

ज़ाहिर है कि संवाद थाने में दारोगा और गरीब नादान व्यक्ति के मध्य है। दारोगा काइयाँ है, वह येन-केन-प्रकारेण गरीब लाचार व्यक्ति को टरकाना चाहता है। संवाद, विधा के अनुरूप चुटीले और संक्षिप्त हैं। यहाँ पुलसिया मानसिकता और कार्य-प्रणाली केवल संवादों के माध्यम से ही अच्छी तरह उजागर हो रही है। संवाद शैली में पारस दासोत ने प्रचुर लघुकथाएँ लिखी हैं जो उनके संग्रह 'मेरी अलंकारिक लघुकथाएँ' में संकलित हैं। इनकी लघुकथाओं में आये संवाद टटके, संक्षिप्त और मारक हैं । एक लघुकथा प्रस्तुत है-

'मदारी, चौराहे पर तमाशा दिखा रहा था।'

'बंदरिया, चोली पहन रही थी।'

'पापा...और जमूरा?'

'जमूरा ! बेटे, जमूरा अपनी कमीज उतार रहा था।' (चौराहे पर)

'वॉक आउट' (संतोष सुपेकर) में टोपियों और जूतों की दो विरोधाभासी स्थितियों को लेकर टोपियाँ अर्थात बड़बोले राजनेताओं पर जबर्दस्त कटाक्ष किया गया है । यह लघुकथा निर्जीव वस्तुओं के मानवीकरण की अच्छी मिसाल है । इस शिल्प का उपयोग यों तो कई लघुकथाकारों ने किया है, परंतु यहाँ जिस सधे हुए अंदाज में अपनी बात कही गई है वह उद्धरणीय बन पड़ी है। लघुकथा का आरंभ इस प्रकार होता है-

टोपियों और जूतों की एक सभा जारी थी। टोपियाँ जूतों पर हँस रहीं थीं। लगातार उन पर फब्तियां कस रहीं थीं, व्यंग्य कर रहीं थीं-कहाँ टोपी और कहाँ जूते? कहाँ ताज और कहाँ तख्त? जूतों की क्या औकात जो टोपियों की ओर नज़र उठाकर भी देख सकें...क्या मजाल उनकी जो टोपियों से तुलना की बात भी कर सकें....

अशोक भाटिया ने 'तीसरा चित्र' में शिल्प का एक सुंदर प्रयोग किया है जिसमें वृद्ध पिता अपने कलाकार पुत्र को तीन चित्र बनाने के लिए कहता है। पुत्र उच्च, मध्य व निम्न वर्ग के तीन चित्र बनाता है। तीसरा अर्थात निम्न वर्ग का चित्र सिर्फ पेंसिल से बनाया जाता है। पूछने पर पुत्र कहता है कि यहाँ तक आते-आते सारे रंग समाप्त हो गए थे। यह लघुकथा संकेत रूप में बहुत बड़ी बात कह जाती है। घनश्याम अग्रवाल ने अपनी लघुकथा 'सरकारी गणित' में सर्वथा मौलिक प्रयोग आजमाया है। यहाँ सरकारी कार्यालयों में व्याप्त **भ्रष्टाचार** को टेबल नंबर 1 से 6 पर रखी फाइलों के माध्यम से बड़ी खूबसूरती से बेनकाब किया गया है। इस लघुकथा में कोई कथा नहीं है और न ही कोई पात्र। फाइलें ही पात्र हैं और उनमें कैद रिपोर्ट ही कथा।

शिल्प की दृष्टि से निम्न लघुकथाएँ भी उल्लेखनीय हैं; मधुदीप की 'समय का पहिया घूम रहा है' (नाटक शैली), गोविंद शर्मा की 'दो बूँदें', 'अंगूर खट्टे हैं' (प्रतीकात्मक), अशोक भाटिया की 'समय की जंजीरें' (इतिहास का पात्र के रूप में आना), श्यामसुंदर दीप्ति की 'मूर्तियाँ' (दृश्यात्मक), पारस दासोत की 'आदमी' (संवाद शैली), सुरेश तन्मय की 'एकलव्य' (पौराणिक), हरिशंकर परसाई की 'जाति' (वर्णनात्मक), जसवीर चावला की 'कौआ' (जातक कथा), घनश्याम अग्रवाल की 'आज़ादी की दुम' (व्यंग्यात्मक), उपेंद्रनाथ अश्क की 'गिलट' (फैंटेसी), कुमार नरेंद्र की 'व्यापारी' (फ्लैश बैक) आदि।

दरअसल शिल्प का उपयोग जमूरे की डुगडुगी के रूप में नहीं, होना चाहिए। शिल्प मकबरे के ऊपर की नक्काशी नहीं बल्कि उस भवन की वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना होता है जिसमें ज़िंदगी की हलचल निवास करती है। यहाँ विचारों की गरमाहट, मानवीय संवेदनाओं की खुशबू, लोकजीवन के संघर्ष, रिश्तों के बनते-बिगड़ते समीकरण और समाज की धड़कनें आबाद रहती हैं। इन सबके बिना खालिस शिल्प का कोई अर्थ नहीं। डॉ. विद्या भूषण के अनुसार, 'कथ्य शिल्प की नोक पर चढ़कर ही पाठक के मर्म को भेद पाता है। किन्तु जहां शिल्प की नोक कृत्रिम और खुरदरी होती है वहाँ वह पाठक के मर्म को न भेदकर स्वयं रचना को ही भेद जाती है।'

शिल्प का कार्य है लघुकथा को अधिक से अधिक संप्रेषणीय बनाना ताकि इसमें समाहित युगीनबोध ठीक उसी रूप में पाठकों तक संप्रेषित हो सके जिस रूप में लघुकथाकार चाहता है। इसमें भाषा, शैली, भाव, संवेदनाएँ, बिम्ब, प्रतीक, पात्रों की मनःस्थिति, संघर्ष चेतना, अंतर्विरोध, शब्दों की मितव्ययता, चरित्र चित्रण (यदि लघुकथा में गुंजाइश हो), एकान्विति, परिवेश आदि सभी कुछ आ जाता है।

संपर्क - लाल मादड़ी (नाथद्वारा) - 313301(राज), मोबाइल-9829588494

आलेख

वर्तमान हिंदी लघुकथा का परिप्रेक्ष्य

रामदेव धुरंधर

हिन्दी साहित्य ने आज गद्य और पद्य दोनों विधाओं में अच्छी प्रगति कर ली है और उसकी प्रगति का पहिया निरंतर घूम कर भविष्य से गलबाँही करने चल निकला है। भविष्य अनदेखा होने से उसकी कोई निश्चित रूप रेखा बना कर कहा नहीं जा सकता कि वह कैसा होगा। पर वर्तमान दिख रहा है और अतीत दिखा हुआ न होकर लिखित शब्दों में हमारे सामने अपने होने की पहचान टाँकता रहता है। यहाँ मैं लघुकथा के बारे में लिखने का मन बना रहा हूँ, लेकिन मैं अपनी सीमा जानता हूँ। लघुकथा के इतिहास की बात करने में मैं सक्षम नहीं हूँ। अपने समय में लघुकथा को जहाँ तक मैं समझ रहा हूँ और स्वयं इसके लेखन में मेरी सजगता बनी होती है इस बिना पर इसे रेखांकित करने के लिए दो शब्द लिखने का जैसे - तैसे मैं साहस कर रहा हूँ।

मैंने अपनी ही लिखी हुई लघुकथाओं से बहुत सीखा है। दूसरों की लघुकथाओं से भी मैंने सीखा है और सीखना आज भी जारी है। मैं ऐसा मानता हूँ कि लघुकथा एक बहुत कठिन विधा है। कठिनता इसकी सूक्ष्मता से आती है और यही सूक्ष्मता अकसर लघुकथाकारों से छूटती है। इस तरह से मान लिया जाता होगा कि कम शब्दों का लेखन है, मानों नाला हो जिसे एक छलांग में पार किया जा सकता है। पर नाला भी मानें तो इसका महासागर है और महासागर का बिंब बनाकर लघुकथा में उतरें तब लगेगा, इसमें कठिनता तो बहुत है।

एक बार फेसबुक में लघुकथा के संदर्भ में एक विस्मयकारी बात लिखी गयी थी। एक बहुचर्चित लघुकथाकार ने लोगों के बीच अपनी लघुकथा सुनायी थी। पर उनके बारे में लिखा गया था कि उन्होंने जो सुनाया था वह लघुकथा नहीं थी। इस बात में बहुत दम है। बड़ा लघुकथाकार भी अपनी ही लघुकथा से धराशायी हो सकता है और इसके विपरीत नया लघुकथाकार अपनी लघुकथा से बड़े मजे से जम जाये तो कोई आश्चर्य नहीं।

कथा - साहित्य की मेरी समझ इस तरह से है कि 'उपन्यास' में बहुत घटनाएँ होने से उसमें विस्तार की बहुत संभावनाएँ रहती हैं। 'कहानी' में घटना एक ही हो इसलिए उसमें विस्तार की अपेक्षा अपने को कम शब्दों में केन्द्रित करना पड़ता है। 'लघुकथा' का स्थान कहानी से नीचे होता है अर्थात कहानी की अपेक्षा इसे कमतर शब्दों में लिखा जाता है। यह इसकी सूक्ष्मता है जो बहुत मूल्यवान होती है। कहानी शुरु हो तो उसकी मंजिल दस पन्नों के बाद आती है, लेकिन लघुकथा लिखें तो मानो घर से निकलने की प्रक्रिया में चौखट ही उसकी मंजिल होती है। इसमें वह वामन कहाँ से हो जो तीन पगों में धरती की लंबाई नाप दे, लेकिन इसमें एक लघुकथाकार हो सकता है जो तीन पगों को छोटा कर के एक पग से भी कम सीमा में बांध दे और वह संपूर्णता का आभास दे रहा हो। लघुकथा यही होती है छोटी फिर भी बड़ी और बड़ी फिर भी छोटी। जरूर छोटे - बड़े के इसके चक्कर में माथे पर कुछ बल अधिक ही पड़े, लेकिन उससे छँट कर जो लघुकथा निकले वह सदा रह जाने के लिए हो। साहित्य में ऐसा होता है। कि बहुत कुछ छपा हो कर भी लुप्त हो जाता है, लेकिन जो रहता है जरूर अपने कद के स्वाभिमान से रहता है। अचंभा लगे, लघुकथा का कद बेहद छोटा, फिर भी रह जाने का वह दंभ भर रही हो। पर वह रह सकती है, बशर्ते अपनी सूक्ष्मता में भी उसका कद बड़ा हो।

अब तो धारणा ऐसी बन गयी है कि बड़ी चीज पढ़ने के लिए लोगों के पास समय नहीं रहता। बड़ी चीज का मतलब तो उपन्यास से ही होता है। समय की बात करने वाले तब तो उपन्यास को ही छोड़ें और कहानी में गोता लगायें। पर कहानी से भी समय को जोड़ कर देखने वाले तो निकल ही आयें, मानो समय से समय ही हो और इसमें किसी प्रकार का अवरोध न हो। शायद लिखने वालों को समय की इसी पुकार से समझौता करना पड़े और पढ़ने वालों के चरणों में छोटी रचना अर्थात लघुकथा का अर्ध्य समर्पित करें। मुझे नहीं लगता लेखक को इतना समझौतापरस्त होना चाहिए। वास्तव में समय का रोना रोने वाले अपना काम कर रहे हैं और लेखक भी अपना ही काम कर रहा है। लेखक के काम में हर विधा जायज है। लघुकथा लेखक के लिए इसलिए जायज है, क्योंकि वह देख रहा है कि एक कंकड़ से भी वह बड़ा युद्ध लड़ सकता है।

मैंने उपन्यास, कहानी और लघुकथा का अच्छा खासा लेखन किया है। यह लेख लिखने की प्रक्रिया में

मैं अपनी इन तीन विधाओं के बारे में सोचने लगा हूँ। मेरे मन में इस तरह से आ रहा है कि उपन्यास मुझे दौड़ाता है, कहानी मुझे मद्धम करती है और लघुकथा मुझे एकदम से थमे रह जाने के लिए विवश कर देती है। अब जो लघुकथा के मामले में एकदम से थम गया हो उससे लघुकथा कैसे लिखी जाये। पर मैं लिखता हूँ और इस संदर्भ में मेरा व्याकरण इस तरह से होता है कि थमा होना तो इसका ऊपरी आवरण है, जबकि भीतर में यह बहुत गतिमान है।

यह जो थमे होने की मैं बात कर रहा हूँ इसकी व्याख्या मेरे पास है। वह व्याख्या मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह बात तो मैंने ऊपर की पँक्तियों में लिखी है कि लघुकथा छोटी होने से घर और चौखट जैसी बहुत सीमित दूरी उसमें रहती है। इसको इस तरह से बढ़ा रहा हूँ कि लघुकथा के प्रथम शब्द लिखें तो मानो एक साँस जैसी दूरी में अंतिम शब्द इंतजार कर रहा हो। एक पन्ने से ज्यादा जिसका विस्तार न हो, आँखें ऊपर नीचे दौड़ती रहती हैं। दोनों तो सामने ही होते हैं फिर तो ऊपर के शब्द हटा कर नया शब्द लिख दें या नीचे जो लिखा उसे अटल सा मान कर विवेचन करते रह जायें क्या इसे छोड़ा जा सकता है या इसी में पूरी लघुकथा का प्राण अपनी उपस्थिति जता रहा है। लघुकथा के बीच का भाग भी अपने मूल्य के लिए तकाजा करता रहता है, क्योंकि वही तो होता है जो आरंभ और अंत को जोड़ता है। अब इस बात पर हम जरा ध्यान तो दें जो लघुकथा स्वयं में निर्णय कर रही हो आरंभ, मध्य और अंत के इस त्रिकोण में सफल एका हो वह लघुकथा कैसे पठनीय न हो।

लघुकथा के लिए एक परिभाषा यह हो सकती है कि हर घटना में लघुकथा का कथ्य नहीं हो सकता। पर सूक्ष्म पकड़ वाले इस परिभाषा के मोहताज नहीं होते। उनकी कलम की नोक पर निर्भर रहता है कि वह कितनी रचना उगल सकती है। तभी तो कहा गया है कि रेगिस्तान में बैठा हुआ लेखक वसंत से जगमगाती रचना का सृजन कर सकता है। कुल मिला कर बात वहाँ पलटती है, जो लेखक अंदर से हुआ जाता है। इसमें फैशन नहीं होता और न देखा देखी होती है कि वह लिख रहा है तो मैं भी लिखूँ। लेखन एक संवेदना का नाम है, एक विचार का तकाजा है। रचना छपने पर पाठक के सामने आये तो वह उसमें अपनी संवेदना का तारतम्य अनुभव करे और साथ ही उसे अपने विचार के बहुत करीब पाये। प्रेमचंद इसी बात पर बड़े हुए और तुलसीदास तो घर - घर पहुँच गये। लघुकथा को इस नादान सोच से आँका न जाये कि वह छोटी होती है तो उसके लिए इतनी सारी शर्तें अनिवार्य होती नहीं हैं। रचना रचना होती है, चाहे वह छोटी हो या बड़ी।

इन दिनों कविताएँ बहुत लिखी जा रही हैं, लेकिन भूल भुलैये की शिकार भी हो रही हैं। आज की कविता की सब से बड़ी बाधा यह है कि वह गद्यात्मक हो गयी है। कविता का नाम मैंने इसलिए लिया, क्योंकि लघुकथा को आँकने में मुझे सुविधा हो अर्थात वह स्वयं में इन दिनों कहाँ है? लघुकथा को ढूँढने पर मैं उसे अपनी जगह पर अटल ही पाता हूँ। उसका चोला गद्य से था और वह गद्य में ही अपना सफर तय कर रही है। अब लघुकथा में व्यंग्य खूब देखा जाता है। यह उसकी एक खास सजावट है। बल्कि व्यंग्य में लघुकथाएँ अधिक से अधिक लिखी जायें तो उसकी स्थापना को और प्रबलता मिल सकती है। पर वह रहे तो संवेदना में ही, विचारों में ही, बस व्यंग्य उसे धारदार बनाने की जिम्मेदारी का संवहन करे।

सच कहें तो लघुकथा में कोई श्रेष्ठ नहीं है। हालाँकि लोग लघुकथा रत्न और लघुकथा शिरोमणि वगैरह बन रहे हैं। यह क्षेपक जैसा है, लेकिन मूल पाठ नहीं। मानों लघुकथा वह वाहन है जिसमें आगे कोई बैठा हो या पीछे बैठा हो, जहाँ जाना होता है वे वहीं उतरते हैं। इसी तरह लघुकथा में एक संभाव है। लिखने को सभी लिख रहे हैं जिससे लघुकथा लेखन पुष्ट हो रहा है, लेकिन इसकी अगुवाई करने वाला कोई खास एक वीर नहीं है।

एक समय था जब लोग व्यंग्य को विधा के रूप में स्वीकार करना नहीं चाहते थे। आज यह बात कहाँ पहुँची है मुझे मालूम नहीं है। लघुकथा के लिए भी मेरी परिस्थिति ऐसी ही है। यानी उसे हिन्दी साहित्य में एक दमदार विधा मानने का मन बन पाया है कि नहीं। मैं भारत का लेखक तो हूँ नहीं कि मुझे हिन्दी की तमाम पत्रिकाएँ, अखबार वगैरह उपलब्ध हो जाते हों। ऐसे में हो सकता है मैं यहाँ जो लिख रहा हूँ उसमें से बहुत सारा झूठ पड़ जाये। पर हिन्दी साहित्य में अपना मन लगाने से मैं ऐसा मानता हूँ कि हिन्दी की मुख्य धारा में मैं एक स्वर तो होता ही हूँ।

बात लघुकथा की होने पर उसी से अंत कर रहा हूँ। लघुकथा और समृद्ध हो यही मेरा और आपका संकल्प हो।

संपर्क : कोरोलिन बेल एर, मॉरिशस, फोन : + 23057537057

लघुकथा के कलात्मक उपकरणः शिल्प, भाषा और शैली

श्री भगीरथ परिहार

शिल्प की अवधारणा

रचना के शिल्प से तात्पर्य अभिव्यक्ति के ढंग से है, जो रचना के सम्प्रेषण को प्रभावी बनाती है।

किसी रचना को प्रस्तुत करने के ढंग को शिल्प कहा जाता है। शिल्प वह कारीगरी है जो रचनाकार की सूझबूझ से मूर्त होती है। शिल्प रचनाकार के विस्तृत अध्ययन, अनुभव और दृष्टिकोण पर अवलंबित होता है।

माधव नागदा शिल्प के बारे में लिखते हैं, 'शिल्प यानी गढ़न, अंदाजे बयां, कहन पद्धति, रचना कौशल, प्रभावी सम्प्रेषण की तकनीक। इस तकनीक में भाषा की विभिन्न भंगिमाएं भी आती हैं और कहन पद्धतियाँ अर्थात शैलियाँ भी।'

किसी भी भावना या विचार को केवल भाषाबद्ध करने से उसे साहित्य की संज्ञा नहीं मिल जाती, साहित्यकार उसे कलात्मक रूप यानी शिल्प भी देता है। ताकि कथा में रोचकता, आकर्षण और उसकी प्रभावशीलता बढ़े।

शिल्प 'कला कौशल और रचनात्मक कौशल' से युक्त एक विशेष कलाकृति है। कहानी में हम शिल्प के अंतर्गत कथावस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद, देशकाल, भाषा-शैली और उद्देश्य की चर्चा करते हैं। लेकिन लघुकथा में देशकाल व चरित्र चित्रण का स्कोप बहुत कम होता है अतः लघुकथा के शिल्प में हम कथावस्तु, संवाद, भाषा-शैली व उद्देश्य के बारे में चर्चा करते हैं।

लघुकथा सुगठित रचना होती है जिसके सारे अवयव आपस में गूँथे (well nit) हुए होते हैं। उन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता। फिर भी अध्ययन की दृष्टि से हम उन्हें अलग करके देखते हैं। उपर्युक्त चार अवयवों के अलावा शीर्षक और कथा का अंत महत्वपूर्ण होने से उन्हें भी इसमें शामिल किया जा सकता है। क्योंकि कई कथाओं के अर्थ उनके शीर्षक से ही खुलते हैं। और अंत तो महत्वपूर्ण है ही। यहीं रचनाकार लघुकथा के मर्म की सृष्टि करता है। अतः लघुकथा के छह तत्व हैं-कथावस्तु, संवाद, भाषा, शैली, उद्देश्य, और कथा का अंत।

कुछ लोग लघुकथा के अंत को भी रचना कौशल का हिस्सा मानते हैं । अतः शिल्प की चर्चा में इन्हें भी शामिल किया जाना चाहिए। अधिकतर सफल लघुकथाओं के अंत चमत्कारिक, अभिव्यंजनात्मक या विचारोत्तेजक होते हैं। इसी कारण वे पाठकों को अधिक प्रभावित करती है। कथ्य का सम्प्रेषण ज्यादा प्रभावी होता है। विशिष्ट शिल्प के अंतर्गत बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत विधान आदि का प्रयोग रचना के सौन्दर्य और सम्प्रेषणीयता बढ़ाने के लिए होता है।

योगराज प्रभाकर जैसे कई विद्वान लघुकथा के तीन अंग मानते हैं; क्या कहना है (कथानक या प्लॉट), कैसे कहना है (भाषा-शैली), और क्यों कहना है (विचार/ भाव उद्देश्य)।

कई विद्वान लघुकथा के अन्य तीन तत्व मानते हैं- 'नायक-खलनायक, और उनके बीच द्वन्द्व और द्वन्द्व का परिणाम यानी कथा का उद्देश्य। नायक उद्देश्य' की ओर काम करता है प्रतिपक्षी उसके विरोध में। यह एक शास्त्रीय दृष्टि है और अब लघुकथाएं इस क्लाससिकल फॉर्म नहीं नहीं लिखी जातीं फिर भी लघुकथा में द्वन्द्व या संघर्ष तत्व प्रमुखता से होता है।

शिल्प के विश्लेषण से हमें विषयवस्तु, कथानक, उद्देश्य आदि के विकास के आंतरिक तत्वों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। जहाँ कथानक से हम पता लगाते हैं कि, 'क्या पेश किया गया है', शिल्प से यह मालूम किया जाता है कि, विषय वस्तु को 'किस तरह पेश किया गया है' और क्यों। इसलिए शिल्प एक तकनीक भी है।

रचना के उद्देश्य या कथ्य को पाठक तक संप्रेषित करने के लिए रचनाकार विचाराभिव्यक्ति या भावाभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग अपनाता है। इसे ही शिल्प कहते हैं। भाषा शिल्प यानी भाषिक अभिव्यंजना के विभिन्न तरीकों को ही साहित्य का शिल्प कहा जाता है ।

आजादी - खलील जिब्रान

वह मुझसे बोले-'किसी गुलाम को सोते देखो तो जगाओ मत; हो सकता है कि वह आजादी का सपना देख रहा हो।'

'अगर किसी गुलाम को सोते देखो तो उसे जगाओ और आजादी के बारे में बताओ।' मैंने कहा।

गुलामी में आजादी के सपने देखना पर्याप्त नहीं, बल्कि उसे जगाकर आजादी के बारे में बताना जरूरी है कि यह आजादी उसके लिए क्यों जरूरी है। केवल दो संवादों से आजादी के बारे में अपनी वैचारिकता या विचार सूत्र को पाठक तक पहुँचाना उनके शिल्प (विचाराभिव्यक्ति) का कमाल है।

भाषा

लघुकथा की भाषा सरल, स्वाभाविक, प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली होनी चाहिए। ऐसी भाषा जनभाषा ही हो सकती है जिसमें मुहावरे और लोकोक्तियाँ में का यथासंभव उपयोग हो।

लघुकथा की भाषा,कम शब्दों में अधिक बात कहने की क्षमता रखती है। इसके लिए लेखक को ऐसे प्रभावशाली शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो एक ही शब्द से एक अधिक बात कह सके या कुछ शब्दों / वाक्यों से ही एक विस्तृत बात को कह दिया जाए।

पात्रों और कथानकों को पाठक के मन में जीवंत बनाने के लिए, लघुकथाएँ, विशेष रूप से, आलंकारिक भाषा पर बहुत अधिक निर्भर करती हैं - जैसे कि उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, और अलंकार – भाषा में शब्द - चयन, सुसंगठित वाक्य-विन्यास, लक्षणा-व्यंजना आदि का प्रयोग उसकी महत्ता को बढ़ा देता है।

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा लेखक अपने विचारों एवं भावों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। भाषिक अभिव्यंजना के विभिन्न ढंगों को ही साहित्य शिल्प कहा जाता है। यह विचाराभिव्यक्ति का साधन है। प्रत्येक रचना का कोई उद्देश्य होता है उसे पाठक तक संप्रेषित करने के लिए रचनाकार शिल्प का ही सहारा लेता है। कथा या अंतर्वस्तु के आधार पर ही शिल्प - रचना और भाषा निर्मित होती है।

कहानी में आकार की दृष्टि से नए-नए शैल्पिक प्रयोग हुए हैं जिसमें लघुकथा भी एक है और लंबी कहानी भी। यानी लघुकथा भी शिल्पगत प्रयोग है। जो बातें हम उपन्यास कहानी में नहीं कह पाते या कहने पर उसकी अहमियत नहीं रह पाती या उसे नजरअंदाज भी किया जा सकता है उसे लघुकथा उचित महत्व देकर अभिव्यक्त कर सकती है।

इसी प्रकार भाषा की भी विभिन्न भंगिमाएं हो सकती हैं यथा; प्रतीकात्मक, व्यंग्यात्मक, मुहावरेदार, आलंकारिक, काव्यात्मक, आंचलिक, जनभाषा आदि। भाषा-शैली आदि का लक्ष्य कथ्य को पाठक तक प्रभावी ढंग से पहुँचाना है।

भाषा तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फारसी और अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से वह आकर्षक बन जाती है। भाषा को सहज बनाने में जन भाषा, लोकभाषा के मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग और व्यंग्य शैली उपयोगी है।

भाषा के माध्यम से रचना रूप ग्रहण करती है। भाषा से ही लेखक अपने अभिप्राय को पाठक तक पहुँचाता है। अशोक भाटिया भाषा के तीन गुण बताते हैं पहला 'रचना की ज़रूरत के मुताबिक सटीक शब्दावली का प्रयोग करना।' दूसरा 'पात्रों के संवादों में उन्हीं के अनुकूल शब्द-प्रयोग करना।'

तीसरा गुण है, कम से कमतर शब्दों का प्रयोग। 'अनावश्यक वर्णन की लघुकथा में कोई जगह नहीं है। अनावश्यक वर्णन लघुकथा की कसावट को कमजोर करता है। लघुकथा में कुछ अनकहा भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। कान्ता राय की कथा 'व्रती' में अनकहा ज्यादा महत्व रखता है।

-सालों गुजर गए थे, मोहित विदेश से वापस नहीं लौटे। प्रतिदिन फोन का आना, धीरे-धीरे हफ़्तों का अंतराल लेते हुए, महीनों में बदल गया। पतिव्रता अपने धर्म का निर्वाह किए जा रही थी कि 'पतिव्रता होने का व्रत टूट जाता है जब ऑफिस कलीग दोस्ती से जरा ज्यादा आगे बढ़ गए और उसने इनकार नहीं किया। केवल पत्नी का ही दायित्व नहीं है कि वह पतिव्रता रहे, पति का भी तो दायित्व है पत्नीव्रता रहे।

इसी तरह रवि प्रभाकर की लघुकथा 'दंश' में भी 'कहा गया' के साथ अनकहा भी है जो अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यही कथ्य को संप्रेषित करता है। पड़ोसन कह रही है अब मुन्नी को यहाँ क्यों छोड़ रही हो अब तो तुम्हारा देवर आ गया है। प्रत्युत्तर में कहती है 'इसीलिए तो तुम्हारे पास छोड़ रही हूँ।' कहने का भाव छुपा हुआ है। एक तरह का अर्थालंकार, जिसमें कही गई बात का अन्य भाव निकलता है।

लघुकथा में छोटे आकार के वाक्यों का प्रयोग रचना के प्रति पाठक के आकर्षण को बढ़ाता है।

पात्रों के संवादों को प्रस्तुत करने का ढंग भी प्रभावशाली होना चाहिए। संवादों में वाक्यों का आकार और शब्द-प्रयोग पात्र के वर्ग, उसके व्यवसाय और उसकी मनस्थिति पर निर्भर करते हैं।

संवाद पात्रानुकूल भाषा में संक्षिप्त, तार्किक या भावपूर्ण होने चाहिए, जो लघुकथा के प्रवाह को आगे बढ़ाते हों।

भाषा के अनेक कलात्मक आयाम होते हैं। ग्रामीण अंचल पर लिखी लघुकथा में आंचलिक/स्थानीय शब्दावली का प्रयोग रचना को विश्वसनीय बनाता है। चित्रा मुद्गल की कथा 'गरीब की माँ' में पात्रों के संवाद बंबईया भाषा में प्रस्तुत किए गए हैं जो कथा को रोचक ही नहीं उसके सौन्दर्य में भी वृद्धि करते हैं।

कविता के तत्वों का यथावश्यक प्रयोग रचना की अर्थवत्ता को बढ़ाता है। उपमाओं, दृष्टांतों और प्रतीकों का उचित प्रयोग लघुकथा को अधिक अर्थगर्भी बनाने का काम करते हैं। प्रतीक और बिम्ब रचना में सूक्ष्म अर्थ को व्यक्त करने का काम करते हैं। चैतन्य त्रिवेदी की कथाएं इस संदर्भ में देखी जा सकती हैं।

बदलते जीवन यथार्थ और जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए रचना विधान और भाषा शैली को उनके अनुरूप ढाला जाता है यानी नए प्रयोग किए जाते हैं। तब नयी शैलियों का आविर्भाव होता है।

शैली

लघुकथा लिखने में कई तरीकों का इस्तेमाल हो सकता है। इन्हें शैलियां कहा जाता है। आप लघुकथा की भाषा और बुनावट में व्यंग्य का प्रयोग करेंगे, तो वह व्यंग्यात्मक शैली की लघुकथा होगी। व्यंग्यात्मक शैली की कथाएं लिखने में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और शंकर पुणतांबेकर सिद्धहस्त हैं।

यदि आप लघुकथा को गद्य की भाषा की बजाय कविता की भाषा में लिखें तो वह काव्यात्मक शैली कहलाएगी। जैसे योगराज प्रभाकर की 'वीरगाथा' जिसमें लय है और 'आत्मकथा से बेदखल पन्ना' जो गजल के तेवर में लिखी गई है। भगीरथ की 'आश्वस्ति' में काव्य

भाषा के तेवर का प्रयोग हुआ है। एकाधिक बिंबों और प्रतीकों के प्रयोग से भी भाषा काव्यात्मक हो जाती है।

मुख्य तौर पर लघुकथा वर्णनात्मक, संवाद और मिश्रित या संश्लिष्ट शैली में लिखी जाती है। वर्णनात्मक या विवरण शैली से आशय है - किसी घटना, वस्तु, व्यक्ति, स्थान अथवा विषय-वस्तु का वर्णन करना। इस कथन शैली में लेखक द्वारा वर्णित घटना या विषय की प्रस्तुति ही प्रमुख होती है, जैसे 'बंद दरवाजा'-प्रेमचंद, 'आग' - माधव नागदा, 'हाय मालिक'-अमर गोस्वामी, 'ताराबाई चाल'- सुधा अरोड़ा ।

संवाद शैली की लघुकथा पात्रों के संवादों से रचित होती है। यह लघुकथा लेखकों की सबसे प्रिय शैली है। संवादात्मक शैली सबसे ज्यादा प्रचिलित और लोकप्रिय शैली है। दो पात्रों के संवादों से ही कथा बुनी जाती है। जैसे 'पासा'- सतीश दुबे, 'आधा आदमी' जगदीश अरमानी, 'रोटी का टुकड़ा' -भूपिंदर सिंह, 'आखिरी पन्ना'- शोभना श्याम।

मिश्रित या संश्लिष्ट शैली में उपर्युक्त दोनों शैलियों का एक साथ एक ही रचना में प्रयोग किया जाता है। अधिकतर लघुकथाएं इसी शैली में लिखी जाती हैं। 'एक टोकरी-भर मिट्टी'-माधव राव सप्रे, 'घासवाली'- रामवृक्ष बेनीपुरी ईश्वर की कहानी-विष्णु नागर, 'आजादी' मोहन राजेश।

कथा को बीते समय की घटना में ले आना 'फ्लैश बैक' (पूर्व दीप्ति) कहलाता है। इस पद्धति का प्रयोग कथा में वर्तमान से अतीत में भ्रमण करना या वर्तमान और अतीत की स्थितियों में तारतम्य पैदा करना होता है। इसे तथाकथित कालदोष निवारण के लिए भी उपयोग में लिया जाता है। उदाहरण 'घूमता पहिया'-मधुदीप, 'ब्रह्मराक्षस'-संध्या तिवारी, 'मीरा' श्रुतकीर्ति अग्रवाल।

डायरी के अंशों के जरिए कथा कहना डायरी शैली कही जाएगी। उदाहरण 'उतार'- सुकेश साहनी, 'वह जो नहीं कहा'-स्नेह गोस्वामी, इसमें विभिन्न तारीखों की बजाय एक ही तारीख का भिन्न-भिन्न समय अंकित है। अभी हाल ही प्रकाशित लघुकथा कलश के प्रयोगात्मक लघुकथा विशेषांक में डायरी, पत्र व टेलीफोन शैली की बहुत सी रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। टेलीफोन शैली में 'सदुपयोग' -कुमारसंभव जोशी, 'मोबाइल है ना'- अर्चना राय।

पत्र शैली में एक या एक से अधिक पत्रों के माध्यम से कथा रचना बुनी जाती है। कल्पना भट्ट की 'अंतर्नाद' और मधु जैन की 'खिलता गुलाब' में केवल एक ही पत्र है।

लघुकथा की विषय-वस्तु को प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। भगीरथ की लघुकथा 'छिपकली' में छिपकली के क्रियाकलाप को पूंजीपति की शोषण प्रक्रिया के तौर पर प्रस्तुत किया है। 'खुलता बंद घर' - चैतन्य त्रिवेदी, जगदीश कश्यप की 'चादर' प्रतीकात्मक शैली में लिखी हुई लघुकथाएं हैं। प्रतीक रचना को सार्थक अर्थ देता है और कथा के सौन्दर्य में भी वृद्धि करता है। 'फीनिक्स' - ऋता शेखर 'मधु'। जैसे फीनिक्स पक्षी अपनी राख से फिर जिंदा हो जाता है वैसे ही नायिका ऐसिड अटैक की शिकार होकर भी फिर उठ खड़ी हुई है।

फेंटेसी किसी बात को बिना प्रमाण या तथ्य के सच मान लेना; यह एक तरह की परिकल्पना है। इस शैली में भी लघुकथा लिखी जाती है। इस संदर्भ में भगीरथ की 'दोजख' और 'फेतकार' लघुकथाएं देखी जा सकती हैं। असगर वजाहत की 'शाहआलम, कैम्प की रूहें' श्रेणी की पाँचवीं लघुकथा। इस कैम्प में बच्चे की रूह और अन्य व्यक्ति के बीच संवाद है। व्यक्ति पूछता है तुम 'किसकी बहादुरी का सुबूत हो?'

'उनकी जिन्होंने मेरी मां का पेट फाड़कर मुझे निकाला था और मेरे दो टुकड़े कर दिए थे।' यहाँ कथा का अंत है जो इस कथा का अभीष्ट है। फेंटेसी से आगे लेखक जादुई यथार्थ की रचना करते हैं।

मनोविश्लेषणात्मक शैली को विस्तार चाहिए। इसलिए लघुकथा में प्रयोग नहीं की जाती या कम प्रयोग की जाती है, लेकिन मनोभावों को व्यक्त करने वाली लघुकथाएँ प्रचुरता से मिल जायँगीं।

आत्मकथात्मक शैली के अंतर्गत कहानीकार एक सूत्रधार के रूप में कथावाचक की भाँति पूर्णतः तटस्थ होकर कहानी की सृष्टि करता है। लघुकथा साहित्य में आत्मकथात्मक शैली का कम ही प्रयोग हुआ है। संस्मरणात्मक शैली, जो आत्मकथात्मक शैली का ही फॉर्म है, उसमें लघुकथाएं जरूर लिखी गई हैं। विष्णु प्रभाकर की प्रसिद्ध लघुकथा 'पानी की जाति' एक संस्मरण पर आधारित है।

लघुकथा के कलात्मक उपकरण की इस चर्चा को हम यों सार रूप में व्यक्त कर सकते हैं। किसी रचना को प्रस्तुत करने के ढंग को शिल्प कहा जाता है। इसके शिल्प का निर्धारण रचनाकार की दृष्टि और रचना कौशल पर अवलंबित होता है। शिल्प का काम रचना का उद्देश्य कथा को ज्यादा प्रभावी ढंग से पाठक तक संप्रेषित करना है। लघुकथा के शिल्प में हम कथावस्तु, संवाद, भाषा-शैली व उद्देश्य के बारे में चर्चा करते हैं।

भाषा के माध्यम से ही रचना रूप ग्रहण करती है। भाषा वह साधन है जिसके द्वारा लेखक अपने विचारों एवं भावों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। भाषा की भी विभिन्न भंगिमाएं हो सकती हैं यथा; प्रतीकात्मक, व्यंग्यात्मक, मुहावरेदार, आलंकारिक, काव्यात्मक, आंचलिक, जनभाषा आदि। भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फारसी और अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से आकर्षक बन जाती है।

संवाद पात्रानुकूल और प्रसंगानुसार होने चाहिए। संवाद छोटे, चुटीले और तार्किक होने चाहिए। लघुकथा लिखने के ढंग या तरीके को शैली कहा जाता है। लघुकथा लिखने में कई तरीकों का इस्तेमाल हो सकता है, जैसे व्यंग्य हो तो व्यंग्यात्मक शैली। लघुकथा लेखन में मुख्य तौर पर वर्णनात्मक, संवाद और मिश्रित या संश्लिष्ट शैली में लिखी जाती है। अन्य शैलियों में 'फ्लैश बैक', डायरी, पत्र अभी हाल लोकप्रिय हुई टेलीफोन शैली, इनके अलावा प्रतीक, फेंटेसी व काव्यात्मक शैलियों का प्रयोग कम किया जाता है।

संपर्क : मॉडर्न पब्लिक स्कूल, 228, नया बाजार,
रावतभाटा, राजस्थान - 3233071 मो. 9414317654

लघुकथाः परिभाषा और स्वरूप

डॉ. चुम्मन प्रसाद

यों तो किसी भी साहित्यिक विधा को ठीक-ठीक परिभाषित करना कठिन ही नहीं लगभग असंभव होता है, कारण साहित्य गणित नहीं है, जिसकी परिभाषाएँ, सूत्र आदि स्थायी होते हैं। साहित्य की विधाओं को परिभाषा-स्वरूप दी गयी टिप्पणियों से विधा के अनुशासन तक पहुँचा जा सकता है, किन्तु उसे उसके स्वरूप के अनुसार हू-ब-हू परिभाषित नहीं किया जा सकता। लघुकथा भी इस तथ्य से भिन्न नहीं है।

इसका कारण यह है कि साहित्य की कोई भी विधा हो समयानुसार उसमें परिवर्तन होते रहते हैं, यह परिवर्तन विधा के प्रत्येक पक्ष के स्तर पर होते हैं। लघुकथा की भी यही स्थिति है। फिर भी लघुकथा के अनुशासन तक पहुँचने हेतु अनेक विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का सद्प्रयास किया है, सर्वप्रथम इसे परिभाषित करने का प्रयास किया। बुद्धिनाथ झा 'कैरव', जिन्होंने अपनी पुस्तक 'साहित्य साधना की पृष्ठभूमि' उन्होंने न केवल 'लघुकथा' शब्द का प्रयोग किया अपितु उसे इस प्रकार परिभाषित भी किया- "संभवतः लघुकथा शब्द अंग्रेजी के 'शॉट स्टोरी' शब्द का अनुवाद है। 'लघुकथा' और 'कहानी' में कोई तात्विक अंतर नहीं है। यह लम्बी कहानी का संक्षिप्त रूप नहीं है। लघुकथा का विकास दृष्टान्तों के रूप में हुआ। ऐसे दृष्टान्त नैतिक और धार्मिक क्षेत्रों से प्राप्त हुए। 'ईसप की कहानियाँ', 'पंचतंत्र की कथाएँ', 'जातक कथाएँ', 'महाभारत', 'बाइबिल' आदि कथाएँ इसी के रूप में हैं।"

आधुनिक कहानी के संदर्भ में 'लघुकथा' का अपना स्वतंत्र महत्व एवं अस्तित्व है। जीवन की उत्तरोत्तर द्रुतगामिता और संघर्ष के फलस्वरूप इसकी अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता ने आज कहानी के क्षेत्र में लघुकथाओं को अत्यधिक प्रगति दी है।

1958 में लक्ष्मीनारायण लाल ने बुद्धिनाथ झा 'कैरव' द्वारा दी गई लघुकथा की परिभाषा को ही लगभग हू-ब-हू हिन्दी साहित्य-कोश (भाग-1), पृष्ठ 740 पर उतार दिया था। यहाँ यह बताना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि 'लघुकथा' नाम 'छोटी कहानी', 'मिनी कहानी', 'लघु कहानी' आदि नामों के बाद ही रूढ़ हुआ। लघुकथा को यों तो शब्दकोश के अनुसार स्टोरिएट (storiette) एवं उर्दू में 'अफसांचा' कहा जाता है, किन्तु ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, लंदन में डॉ. इला ओलेरिया शर्मा द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबंध 'The Laghukatha : A Historical and Literary Analysis of a modern Hindi Prose Genre' में उन्होंने लघुकथा को storiette न लिखकर 'लघुकथा' (Laghukatha) ही लिखा है। अतः हमें यह मान लेने में अब कोई असुविधा नहीं है कि जिसे हम लघुकथा कहते हैं वह अंग्रेजी में लघुकथा ही है और storiette से मतलब छोटी कहानी आदि हो सकता है।

लघुकथा को यों तो अनेक लेखकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है, किन्तु जिन परिभाषाओं को वर्तमान लघुकथा के करीब कहा जा सकता है उन्हें यहाँ उद्धृत करना चाहता हूँ 'प्रामाणिक अनुभूतियों पर आधारित किसी एक क्षण को सुगठित आकार के माध्यम से लिपिबद्ध किया गया प्रारूप लघुकथा है।'

- डॉ. माहेश्वर

'दरअसल कम-से-कम शब्दों में काफी पुरअसर ढंग से जिंदगी का एक तीखा सच कथा में ढाल दिया जाये तो वह लघुकथा कहलाएगी।'

- पृथ्वीराज अरोड़ा

'जिए हुए क्षण के किसी टुकड़े को उसी प्रकार शब्दों के टुकड़े-भर में प्राण दे-देना लघुकथा है।'

- दिनेशचन्द्र दुबे

'जीवन का सही मूल्य स्थापित करने के लिए व्यक्ति और उसका परिवेश, युगबोध को लेकर कम-से 'कम और स्पष्ट सारगर्भित शब्दों में असरदार ढंग से कहने की विधा का नाम लघुकथा है।'

- विक्रम सोनी

'अनुभव प्रायः घनीभूत होकर ही आते हैं और बिना पिघलाएँ (डाइल्यूट किये) कहना लघुकथा है।'

- रामलखन सिंह

'एक क्षण की आणविक मनःस्थिति को शाब्दिक सांकेतिकता द्वारा जो अभिव्यक्ति दी जाती है तथा जिंदगी के व्यापक कैनवास को रेखांकित करती है' लघुकथा है।'

- वेद हिमांशु

'समाज में व्याप्त विसंगतियों में किसी विसंगति को लेकर सांकेतिक भाषा-शैली में चलने वाला सारगर्भित प्रभावशाली एवं सशक्त कथ्य जब झकझोर/छटपटा देने वाला लघु आकारीय कथात्मक रचना का आकार धारण कर लेता है, तो लघुकथा कहलाता है।'

- डॉ. सतीशराज पुष्करणा

लघुकथा की पृष्ठभूमि -

लघुकथा की बात चले और भावनात्मक रूप से भारत की मिट्टी को, इसके प्राच्य ग्रंथों को श्रद्धा की दृष्टि से देखने वाला व्यक्ति इसका उत्स वेदों और पुराणों से न बताए, यह हो नहीं सकता। साहित्य की लगभग सभी अन्य विधाओं का आदि स्रोत की भाँति 'लघुकथा का आद्य ग्रंथ भी हमारे वेद हैं। अथर्वदेव के कथात्मक चिह्न अलौकिकता, आध्यात्मिकता, सृष्टि-मूल के व्याख्यायुक्त कथानकों से पूर्ण हैं। ऋग्वेद में कथात्मक उद्‌बोधन हैं जो प्रेरक, हृदयस्पर्शी तथा प्रभावपूर्ण हैं।'

यहाँ लघुकथा के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन समीचीन प्रतीत होता है, 'भारतीय परम्परा यह है कि किसी भी नए शास्त्र के प्रवर्तन के समय उसका मूल 'वेदों' में अवश्य खोजा जाता है। वेद ज्ञानस्वरूप हैं, उनमें त्रिकाल का ज्ञान बीज रूप में सुरक्षित है। भारतीय मनीषी अपने किसी ज्ञान को अपनी स्वतन्त्र उद्‌भावना नहीं मानते।'

इस प्रकार, हम पाते हैं कि लघुकथा का उत्स वेद-उपनिषद् तक भी पहुँचता है। चक्रधर नलिन अपने एक आलेख में लिखते हैं 'उपनिषद् लघुकथाओं का भंडार हैं। पुराणों में असंख्य उद्‌बोधक बालकथाएँ यत्र-तत्र भरी पड़ी हैं। शतपथ ब्रह्मण, आरण्यक साहित्य, मैत्रायणी संहिता (1.5.12) में प्रचुर लघुकथाओं के दर्शन होते हैं। संस्कृत साहित्य में पंचतंत्र तथा हितोपदेश लघुकथाओं का आदि रूप हैं। 'मैत्रायणी संहिता' (1.5.12) में आदि लघुकथा का रूप मिलता है। शतपथ ब्रह्मण गंधर्व कथाओं का भंडार है। इस पर उपदेशात्मक प्रवृत्ति हावी है। उपनिषदों में दार्शनिक व्याख्या-युक्त अविस्मरणीय लघुकथाएँ हैं।'

पालि, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में लघुकथाओं की प्रचुरता है। बुद्ध जन्म के पूर्व की लघुकथाओं में उपदेश-वृत्ति प्रधान है। बुद्धकालिक लघुकथाओं में सामाजिक चित्रण की बहुलता है। इसमें राजा, भिक्षु, योद्धा, गृहस्थ एवं पुरोहित आदि संबंधी लघुकथाओं का समायोजन है। इनमें सामाजिक ज्ञान है। जातक लघुकथाओं (बुद्ध काल के बाद की) में कला और उपदेशात्मकता प्रबल है। जैन लघुकथाओं की वर्ण्य-सामग्री में डाकू, व्यापारी, राजा,

यात्री गृहस्थ आदि संबंधी रोचकतापूर्ण कथाएँ और उपदेशप्रद प्राकृत कथाएँ यथार्थ-बोध के साथ ही आदर्श-कथाओं से अन्तर्लघुकथाएँ गुम्फित अवश्य हैं, पर प्रत्येक में एक नई ज्ञान चेतना है। महाभारत जैसी लघुकथाएँ विश्व-साहित्य में दुर्लभ हैं। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में प्रकृति और जीव, पशुपक्षियों संबंधी लघुकथाएँ वर्णित है जो उन्नत लघुकथा-यात्रा की प्रामाणिकता सिद्ध करती हैं।'

लघुकथा उद्भव और विकास -

प्रश्न उठता है कि लघुकथा (वर्तमान समय में जो लघुकथाएँ लिखी जा रही हैं) का उद्भव कहाँ से माना जाए? अब तक ज्ञात शोधों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 1874 ई0 बिहार के सर्वप्रथम हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'बिहार-बन्धु' में कतिपय उपदेशात्मक लघुकथाओं का प्रकाशन हुआ था। इन लघुकथाओं के लेखक मुंशी हसन अली थे, जो बिहार के प्रथम हिन्दी पत्रकार थे।'

1875 ई0 में भारतेंदु हरिश्चंद्र का लघुकथा–संग्रह 'परिहासिनी' प्रकाश में आया। इसके पश्चात् तो फिर माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, छबीलेलाल गोस्वामी, अयोध्या प्रसाद गोयलीय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, जगदीशचंद्र मिश्र, आनंदमोहन अवस्थी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, निराला, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, विनोबा भावे, सुदर्शन, रामनारायण उपाध्याय, पाण्डेय बेचन शर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, भृंग तुपकरी, दिगम्बर झा, रामधारी सिंह 'दिनकर', शरद कुमार मिश्र 'शरद', हजारी प्रसाद द्विवेदी, हरिशंकर परसाई, रावी, श्यामानन्द शास्त्री, शांति मेहरोत्रा, शरद जोशी, विष्णु प्रभाकर आदि ने लघुकथा को अपने-अपने समय के सच को रेखांकित करते हुए लघुकथा को ठोस आधार दिया।

सातवें-आठवें दशक में डॉ. सतीश दुबे, डॉ. कृष्ण कमलेश, डॉ. शंकर पुणतांबेकर, भगीरथ, जगदीश, कश्यप, महावीर प्रसाद जैन, पृथ्वीराज अरोड़ा, रमेश बत्तरा, बलराम, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, बलराम अग्रवाल, डॉ. कमल चोपड़ा, डॉ. शकुंतला किरण, विक्रम सोनी, सुकेश साहनी, अंजना अनिल, नीलम जैन, सतीश राठी, मधुदीप, मधुकांत, अनिल शूर, चित्रा मुद्गलआदि ने इसे आधुनिक स्वरूप देकर साहित्य जगत् में समुचित प्रतिष्ठा दिलाने का सार्थक प्रयास किया ।

लघुकथा के लिए आठवाँ दशक बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। इस दशक में अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया जिनमें 'सारिका', 'तारिका', 'शुभ तारिका', 'समग्र', 'वीणा', 'प्रगतिशील समाज', 'नालंदा दर्पण', 'दीपशिखा', 'अंतर्यात्रा', 'कहानीकार', 'प्रयास', 'लघुकथा', 'विवेकानंद बाल सन्देश' इत्यादि प्रमुख हैं।

इसी काल में 'गुफाओं से मैदान की ओर' (सं. भगीरथ एवं रमेश जैन), 'श्रेष्ठ लघुकथाएँ' (सं. शंकर पुणतांबेकर), 'समान्तर लघुकथाएँ' (सं. नरेंद्र मौर्य एवं नर्मदा प्रसाद उपाध्याय), 'छोटी-बड़ी बातें' (सं. महावीर प्रसाद जैन एवं जगदीश कश्यप), 'आठवें दशक की लघकथाएँ' (सं. सतीश दूबे), 'हालात', 'प्रतिवाद', 'अपवाद', 'आयुध','अपरोक्ष' (सं. कमल चोपड़ा), 'हस्ताक्षर' (सं. शमीम शर्मा), 'आतंक (सं. नन्दलाल हितैषी एवं धीरेन शर्मा), 'लघुकथाःदशा और दिशा- (सं. डॉ. कृष्ण कमलेश एवं अरविंद) इत्यादि ने लघुकथा को साहित्य-जगत में विधा के रूप में न मात्र स्थापित कर दिया अपितु इसे पाठकों के मध्य लोकप्रिय बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इसके पश्चात 'मानचित्र', 'छोटे-छोटे सबूत', 'पत्थर से पत्थर तक', 'लावा' (विक्रम सोनी), 'चीखते स्वर' (नरेंद्र प्रसाद'नवीन'), 'लघुकथा : सृजन एवं मूल्यांकन' (कृष्णानन्द कृष्ण)', 'काशें', 'अक्स-दर-अक्स', 'आज के प्रतिबिंब', 'प्रत्यक्ष', 'हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ लघुकथाएँ', 'तत्पश्चात', 'मंटो और उनकी लघुकथाएँ', 'बिहार की हिन्दी लघुकथाएँ', 'बिहार की प्रतिनिधि हिन्दी लघुकथाएँ', 'कथादेश', 'दिशाएँ', 'आठ कोस की यात्रा', 'तनी हुई मुट्ठियाँ', 'पड़ाव और पड़ताल' के 30 खंड (सं. मधुदीप), 'जिंदगी के आस-पास एवं पतझड़ के बाद (सं. राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी 'बन्धु')', 'कल के लिए' (सं. मिथलेश कुमारी मिश्र), 'नई धमक' (मधुदीप), 'नई सदी की लघुकथाएँ' (अनिल शुर), 'किरचों की वीचीःवक़्त की उलीची' (सं. डॉ. सतीशराज पुष्करणा), 'अभिव्यक्ति के स्वर', 'खण्ड-खण्ड जिंदगी', 'यथार्थ सृजन, मुट्ठी में

आकाशःसृष्टि में प्रकाश' (सं. विभा रानी श्रीवास्तव) आदि के संकलनों ने लघुकथा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

लघुकथा में एकल संग्रह भी कई रचनाकरों के आ चुके हैं। इनमें प्रमुख रूप से डॉ. सतीश दुबे, भगीरथ, बलराम, मधुदीप, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, बलराम अग्रवाल, कमल चोपड़ा, जगदीश कश्यप, विक्रम सोनी, पारस दासोत, मधुकांत, राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी 'बन्धु', डॉ. मिथलेश कुमारी मिश्र, कमलेश भारतीय, सतीश राठी, विक्रम सोनी, डॉ. स्वर्ण किरण, सिद्धेश्वर, तारिक असलम 'तस्लीम', अतुल मोहन प्रसाद, सुकेश साहनी, रूपदेव गुण, शील कौशिक, राजकुमार निजात आदि का नाम सगर्व लिया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त 'लघुकथाकलश', लघुकथा डॉट कॉम', 'संरचना', 'दृष्टि', 'क्षितिज', 'ललकार', 'लकीरें', 'काशें', 'पुनः', 'सानुबन्ध', 'दिशा', 'व्योम', 'भागीरथी', 'अंचल', 'भारती', 'गंगा', 'आगमन', 'राही', 'साहित्यकार', 'पल-प्रतिपल' आदि सैकड़ों पत्रिकाओं ने भी लघुकथा के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

लघुकथा के विकास हेतु डॉ. शकुंतला किरण, शमीम शर्मा, डॉ. मंजू पाठक, डॉ. ईश्वरचंद्र, डॉ. अमरनाथ चौधरी 'अब्ज' ,शंकर लाल, डॉ. सीताराम प्रसाद आदि ने शोध प्रबंध लिखकर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है।

लघुकथा के विकास में अन्य जिन माध्यमों का योगदान रहा है उनमें सम्मेलनों एवं गोष्ठियों का भी बहुत महत्त्व है। लघुकथा-सम्मेलनों एवं गोष्ठियों में पटना, फतुहा, गया, धनबाद, बोकारो, राँची, सिरसा, दिल्ली, इंदौर, बरेली, जलगाँव, होशंगाबाद, नारनौल, हिसार, जबलपुर इत्यादि के योगदान को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। लघुकथा पोस्टर प्रदर्शनियों के माध्यम से सिद्धेश्वर, सुरेश जांगिड़, उदय इत्यादि लोगों का लघुकथा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनके द्वारा पटना, धनबाद, राँची, लखनऊ, कैथल इत्यादि नगरों में लघुकथा पोस्टर प्रदर्शनियों लग चुकी हैं। पटना, राँची, धनबाद, सिरसा,इंदौर में लघुकथा-मंचन भी हुए हैं। लघुकथा प्रतियोगिताओं एवं अनुवाद द्वारा भी सार्थक कार्य हुए हैं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन भी इस कार्य में पीछे नहीं रहे हैं। साक्षात्कारों 'परिचर्चाओं द्वारा भी उल्लेखनीय कार्य हुए हैं। लघुकथा में समीक्षात्मक' आलोचनात्मक कार्य को जिन लोगों ने बल दिया है उनमें मधुदीप, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, रामेश्वर काम्बोज हिमांशु, जितेंद्र जीतू, डॉ. ध्रुव कुमार, डॉ. मिथलेश कुमारी मिश्र, डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा, सुकेश साहनी, योगराज प्रभाकर, रवि प्रभाकर, बलराम अग्रवाल, सतीश दुबे, डॉ. शंकर पुणतांबेकर, रमेश बतरा, जगदीश कश्यप, कमल चोपड़ा, राधिका रमण अभिलाषी, निशान्तर, डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा, विक्रम सोनी, राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी 'बन्धु', प्रो. निशांत केतु, डॉ. स्वर्ण किरण इत्यादि प्रमुख हैं।

लघुकथा के विकास में देशभर में सक्रिय अनेक संस्थाएँ भी सोत्साह अपने दायित्व का निर्वाह कर रही हैं। बिहार, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, गुजरात संग कुछ और राज्यों की पाठ्य-पुस्तकों में भी लघुकथाएँ शामिल हैं। लघुकथा-जगत में आयी नई पीढ़ी जिनमें गणेश जी बागी, संदीप तोमर, संध्या तिवारी, कल्पना भट्ट, सरिता रानी, रानी कुमारी, वीरेंद्र भारद्वाज, आलोक चोपड़ा, पुष्पा जमुआर, कांता राय, कमल कपूर, अंजू दुआ जैमिनी, अनिता ललित, अंतरा करवड़े, अशोक दर्द, आकांक्षा यादव, आरती स्मित, इंदु गुप्ता, डॉ. लता अग्रवाल, उमेश महादोषी, उषा अग्रवाल 'पारस', ओम प्रकाश क्षत्रिय 'प्रकाश', कपिल शास्त्री, ज्योत्स्ना कपिल, शोभा रस्तोगी, मृणाल आशुतोष, कुमार गौरव, सन्तोष सुपेकर, सीमा जैन, सुधीर द्विवेदी, सीमा सिंह, स्वाति तिवारी, पूर्णिमा शर्मा, मंजू शर्मा, दिव्या राकेश शर्मा, विभा रानी श्रीवास्तव इत्यादि प्रमुख हैं। इस पीढ़ी में अनन्त संभावनाएँ हैं।

संदर्भ- डॉ. राम निरंजन परिमलेन्दु, बिहार के स्वतंत्रता 'पूर्व हिन्दी' कहानी' साहित्य, परिषद-पत्रिका, स्वर्ण जयंती अंक,वर्षः 50, अंकः1-4, अप्रैल 2010 से मार्च 2011, बिहार 'राष्ट्रभाषा' परिषद, पटना-4, पृष्ठ 261

संपर्क : उर्फ आदित्य अभिनव, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), भवंस मेहता महाविद्यालय, भरवारी कौशाम्बी (उ. प्र.) 212201, मो. – 7972465770

अचकचाए छोड़ जाती हैं लघुकथाएँ

डॉ. राजीव कुमार रावत

लघुकथा - कथा, कहानी, किस्सों, अनुभवों, संस्मरणों की अभिव्यक्ति का एक ऐसा साहित्यिक रूप है जिसमें जीवन के अंग-प्रत्यंग अथवा भाव व्यवहार से जुड़ी हुई घटनाओं अथवा चिंतन को केंद्र में रखते हुए छोटी-छोटी रचनाएं लिखी जाती हैं जो कि कहानी अथवा कथा साहित्य के कलेवर की तुलना में काफी संक्षेप में किंतु तीखी होती हैं जैसे कि प्रसिद्ध साहित्यकार हरीश नवल जी का कहना है कि लघुकथा में अनुभूति की तीव्रता आवश्यक है। कोई भी लघुकथा मुख्य रूप से एक संदेश विशेष, मनोरंजन या जागतिक अद्भुतता, खटकन, वैचित्र्य अथवा मानवीय स्वभाव व्यवहार की कोई सूक्ष्म विसंगति का ध्यान रखते हुए अपनी एक-एक पंक्ति नहीं बल्कि एक-एक शब्द द्वारा पाठक को झकझोरने करने का प्रयास करती है। डॉ. पुरुषोत्तम दुबे के अनुसार लघुकथा का सत्य टूटन और विखंडन नहीं है, उसका सत्य कहीं दूर होता है। छोटे आकार में, लघुकथा अपनी गहराई और दुनिया के विभिन्न पहलुओं को छूने की क्षमता तो रखती ही है साथ ही व्यंग्य साहित्य से भी करारी मारक क्षमता से संपन्न है। यहां यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि लघुकथा एक छोटी कहानी नहीं है और कहानी का लघु रूप भी नहीं है। यह विधा अपने एकांगी स्वरूप में किसी भी एक विषय, एक घटना या एक क्षण विशेष पर आधारित होती है और इसकी क्षणभंगुरता का कहानी जैसा कालजयी होना ही इसकी सफलता है। डॉ. सूर्यकांत नागर के अनुसार लघुकथा पढ़ने में पाठक को कहानी का अहसास हो। आधुनिक लघुकथा अपने पाठकों में चेतना जागृत करती है। यह किसी भी बोध कथा, चुटकुले या व्यंग्य से भी पूरी तरह अलग है। हर लघु कथा अपूर्ण अभिव्यक्ति होती है जिसके समापन पर अनायास ही लेखक का मंतव्य रस का संबोधन पाठक के ह्यदय और मस्तिष्क में गूंजता है। बहुधा लघुकथा के अंत में पाठक स्वयं अपने आपको ही मुख्य पात्र के रूप में पाता है।

हिंदी साहित्य में लघुकथा नवीनतम विधा है। इस विधा को लोकप्रिय बनाने में 'सारिका', 'तारिका' (बाद में 'शुभतारिका'), 'सुपर ब्लेज', 'लघुकथा चौमासिक', 'शब्द', 'आघात' (बाद में 'लघुआघात'), 'दिशा', 'अवसर' मुक्तांचल, धर्मयुग आदि पत्रिकाओं एवं अनेक अखबारों का योगदान रेखांकन योग्य है। 'लघुकथा कलश' के महाविशेषांकों ने लघुकथाओं को गुरुत्ता और गरिमा, दोनों दी है। श्री बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु' के अनुसार पहली लघुकथा की दौड़ में मुख्यतया तीन लघुकथाएँ शामिल होती हैं- (1) 'अंगहीन धनी' (1876), भारतेन्दु हरिश्चंद्र की इन्क्यावन शब्दों की लघुकथा वास्तव में बोलचाल की व्यंग्यात्मक भाषा के ज्यादा नजदीक है, जिसे संदर्भ का स्पर्श देकर लघुकथा का रूप दिया गया है। (2) 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1900-1901), माधवराव सप्रे की लगभग सात सौ शब्दों की यह लघुकथा, लघु कहानी के ज्यादा नजदीक है, क्योंकि इसमें समय अंतराल काफ़ी है। (3) 'झलमला' (1916), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की लगभग छह सौ पचास शब्दों की यह लघुकथा, आधुनिक लघुकथा की अवधारणा में सबसे सशक्त है। पहले पत्रिकाओं में मुख्य लेख आलेख से बचे स्थान में लघुकथाएं छपती थीं किंतु अब कथाकारों के लघुकथा संग्रह भी निकलने लगे हैं और लघु कथा को केंद्र में रखते हुए बड़े-बड़े समारोह, संगोष्ठियां भी आयोजित हो रही हैं।

लघुकथा अपनी विधागत सरोकार की दृष्टि से भी एक पूर्ण विधा के रूप में हिर्दी जगत् में समादृत हो रही है। इसे स्थापित करने में जितना हाथ समकालीन लघुकथाकारों का रहा है उतना ही कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, बलराम, कमल चोपड़ा, सतीशराज पुष्करणा, धर्मवीर भारती, मीरा सिन्हा, पंकज साहा आदि जैसे पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों का भी रहा है। यह देखने में आया है कि समीक्षकों एवं आलोचकों ने लघु और कथा शब्दों के संयोजन से ऐसा मान लिया कि कोई रचना जो आकार में लघु हो और कथा हो। इसलिए हर कथा जो छोटी थी, लघु कथा मान ली गई। बाद में एक शब्द बना- लघुकथा। दूध और शक्कर यानी दूध के अणुओं के बीच शक्कर के अणु। शक्कर के अणु यानी- सिर्फ शैली, भाषा जो संगठित हो यानी वह सबकुछ जो मिठास, उपयोगिता, उद्देश्य बढ़ा दे और समय का भी ख्याल रखे। कालांतर में हिंदी शब्द लघुकथा को अंग्रेजी में शॉर्ट स्टोरी कहने से इस कोमल साहित्यिक विधा के साथ अन्याय हुआ है। लघु कहानी के लिए भी शॉर्ट स्टोरी कहते हैं तो लघुकथा को शार्ट स्टोरी कहने से वह साहित्यिक बोध भाव और रचना के प्रति गांभीर्य पाठक समाज में स्थापित नही हो सका जो इस विधा का नैसर्गिक अधिकार था। इसलिए शायद भाव संप्रेषण की सुगठित एवं सशक्त विधा होने के बावजूद आजतक कोई बड़ा प्रकाशक, साहित्य जगत का कोई प्रतिष्ठित सम्मान, बुकर या अकादमी, पदम पुरस्कार लघु कथा लेखकों में से किसी को नहीं मिला है जबकि अपने समय के महान साहित्यकारों ने इस विधा को पूरा मान सम्मान देकर संवारा है और समृद्ध किया है और हमारे समय के महान साहित्यकार डॉ. लक्ष्मी शंकर वाजपेयी कहते हैं कि जिसे हम लघु कहते हैं असल में वह विराट होती है।

किसी भाव विशेष को लेकर गीत, कविता, लेख, कहानी यहाँ तक कि उपन्यास लिख देना शायद आसान और सहज हो किंतु कम शब्दों में भाव पूर्णता को संप्रेषित करना बहुत दुरूह है और संवेदनशील साहित्यकार के पैने अनुभव की साधना से ही सध सकता है। शब्दों के चितेरे, बारीकी से लघु कथा बुनने वाले लघुकथाकारों की सूची बहुत लंबी है फिर भी सारांश रूप में दिनकर, सुदर्शन, शिव पूजन सहाय, शांति महरोत्रा, विष्णु प्रभाकर, हरिशंकर परसाई, जानकी बल्लभ शास्त्री, रमेश चंद्र श्रीवास्तव, बेनीपुरी, विनोवा भावे, यशपाल, प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, भवभूति मिश्र, सतीश दुबे, युगल, रमेश बतरा, भगीरथ, अज्ञेय, जैनेंद्र, असग़र वजाहत, पृथ्वीराज अरोड़ा, चित्रा मुद्गल, जगदीश कश्यप, बलराम अग्रवाल, कांता रॉय, कृष्ण कमलेश, बलराम, अशोक भाटिया, कमल चोपड़ा, सुकेश साहनी, माधव नागदा, रामकुमार आत्रेय, श्याम सुन्दर दीप्ति, सिमर सदोष, मधुदीप, विष्णु नागर, जसबीर चावला, सुरेन्द्र मंथन, विक्रम सोनी, पंकज साहा, मुकेश वर्मा, रामेशर काम्बोज 'शिया, ज्ञानदेव सुकेश, दीपक मशाल, शरद मिश्र, सुधा भार्गव, रूपसिंह चंदेल, सतीश राठी, शील कौशिक, शोभा रस्तोगी, अशोक भाटिया, कृष्णा अग्निहोत्री आदि प्रमुख लघु कथाकार हैं। (पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूं कि यह बहुत सूक्ष्म सूची है) लघुकथा लिखने वाले अधिकांश साहित्यकार अपने साहित्यिक अवदान एवं कद में बहुत बड़े हैं तथा ख्याति लब्ध एवं प्रतिष्ठित हुए हैं और हो रहे हैं और देखने में आ रहा है कि अभी लघुकथा की विधा में परंपरा और प्रयोग की टकराहट चल रही है।

लगभग सभी लघुकथाकारों ने अपने समय की विचारधाराओं, सामाजिक रूढ़ियों, परिवर्तनों, ज्वलंत मुद्दों, नैतिकता और मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं को लघुकथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अच्छे और अनुभवी शब्द शिल्पकारों द्वारा लघुकथा गढ़ने के मानक स्थापित होने से लघुकथा एक साधारण या आम दिनचर्या के पीछे छिपे हुए महत्वपूर्ण संदेशों को खोजने, सूंघने, भांपने की क्षमता रखती है। एक अच्छी लघुकथा पढ़ने वाले को उत्कृष्ट व्यक्तित्व, सामाजिक परिवर्तन, अद्भुतता, प्रेम, वैचारिकता और मनोवैज्ञानिक पहलुओं से परिचित कराने में सफल हो सकती है। अपने छोटे से कलेवर में लघुकथा जीवन की महत्वपूर्ण अनुभूतियों को विभिन्न दृष्टिकोणों से दर्शाने की क्षमता रखती है। यह जीवन की जटिलताओं, विपदाओं और परिवर्तनों को संक्षेप में प्रस्तुत करने का एक मार्मिक तरीका सिद्ध हुई है जो सीधा पाठक पर चोट करती है और उसे चिंतन के लिए असहाय एकाकी छोड़ती है। इसलिए, लघुकथा हमारे जीवन के आसपास की वास्तविकता के साथ-साथ अन्याय, सामाजिक विभाजन, प्रेम और जन्म, मौत, चाल, कपट,

पाखण्ड, औदार्य, धर्म जैसे विषयों पर भी चर्चा कर सकती है।

लघुकथा लेखन का एक अन्य लाभ यह है कि यह लेखक को अपनी कथाओं को अधिक संक्षेप में प्रस्तुत करने के लिए चुनौती भी पेश करती है और प्रेरित भी करती है इसलिए शब्दजाल से अलग सार तत्व नवनीत रूप में प्राप्त हो पाता है। इसमें कथानकी और कथा संवाद जैसे तत्वों के प्रभाव को लेखक उत्पन्न करने को प्रयासरत होता है दूसरी ओर पाठक अपनी समय की कमी की परिस्थिति में भी साहित्य पिपासा की तृप्ति के लिए लघुकथा का पान करता है। इस रूप में, लघुकथा लेखन लेखकों के लिए पाठक ही नहीं बल्कि जन साधारण के प्रशिक्षण और समाज के लिए वैचारिक जड़ताओं की मुक्ति का अनुसंधान मार्ग भी है और एक माध्यम भी है।

संक्षेप में कही जाने वाली लघुकथाएं हमारे जीवन के महत्वपूर्ण ज्ञान, अनुभव की चरम अवस्थाओं के साथ समय की कीमत को दर्शाती हैं तथा प्रसिद्ध समीक्षक माधव नागदा के अनुसार पाठक लघुकथाओं की त्वरा, विश्वसनीयता के साथ एक बार स्वयं को जी लेता है। लघु कथाओं के शीर्षक ही पाठक को भावभूमि निर्मित कर आकर्षित कर लेते हैं। इन छोटी-छोटी रचनाओं को पढ़ने से हमें समस्याओं का सामना करने के नए और सुलझे तरीके मिलते हैं या अपनी लघुता का बोध भी होता है। लघुकथाएँ हमें अपने अंतर्मन के साथ जुड़ने का विराट मौका देती हैं और हमें हमारी खुद की ही सच्चाइयों से भी परिचित कराती हैं। अपने लघुकथा संग्रह 'संभावना' में प्रो. पंकज साहा की एक लघुकथा 'भीड़ छटने लगी' में हमें खुद ही लगता है कि अरे ! मैं भी तो इसी भीड़ में हूँ, यह मेरी ही तो कहानी है, यह भीड़ मेरे जैसों से ही मिलकर तो बनी थी और खेल देख रही थी, किंतु दायित्व निभाने का समय आते ही कतरा गई और छंटने लग गई। तब फिर हम अपने आपको अपने चारों ओर उगी हुई अमानवीय जीवन शैली के उथले पन में कैद की जकड़न में जीने को अभिशप्त पाते हैं। कुछ चेतन होने पर बोध होता है कि आज की मोबाइल युगीन डिजिटल एआई संपोषित संवेदनाएं ऐसी ही तो नकली हो गई हैं जो हर समस्या अथवा घटना की वीडियो तो बनाना चाहती हैं, फेसबुक, इंस्टा, वाट्सअप आदि पर अपलोड करने को तो आतुर हैं किंतु मानवीय जीवन के सूक्ष्म एवं संवेदनात्मक चिंतन तत्वों की अभिव्यक्ति के समय वीरोचित चुनौती को स्वीकारने अथवा किसी बदलाव के लिए स्वयं को प्रस्तुत करने में ढोंगी हैं। समाज, व्यवस्था, देश, सरकारों को दोषी ठहराकर साफ बच निकलने की चालाकी में माहिर हम, एक नकारात्मक, विंध्वसक, टाइमपास-दायित्वविहीन चरम पर जी रहे हैं जिसको लघुकथा उधेड़ कर रख देती है। प्रसिद्ध साहित्यकार सुभाष चंदर लघुकथाकारों के लिए एक कसौटी स्थापित करते हुए कहते हैं कि लघुकथा कहानी का संक्षिप्तिकरण नहीं है, न ही किसी घटना का विवरण, लघुकथा को संक्षिप्त भी होना है पूर्ण भी होना है, सम्प्रेषणीयता के साथ शिल्प भी मजबूत हो और सम्वेदना के चरम को भी स्पर्श करें। आज डिजीटल साहित्य शब्दों का विशालकाय कलश है, भटकन बहुत है परंतु इस खोखलेपन के कलश में खनकती शब्द मंजरियों जैसी लघुकथाओं का साहित्यिक भविष्य निश्चित बहुत उज्ज्वल है जो पाठक को, अज्ञेय के शब्दों में, अचकचाए, अवाक छोड़ जाती हैं।

संपर्क : वरिष्ठ हिंदी अधिकारी, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, खड़गपुर
मो. 9564156315, dr.rajeev.rawat@gmail.com

स्मृति-सांद्र का अनोखा उदाहरण है काठगोदाम का अक्स

डॉ. अवधेश प्रसाद सिंह

सुपरिचित कवयित्री डॉ. शुभ्रा उपाध्याय की कविता काठगोदाम का अक्स स्मृति-सांद्र का अनोखा उदाहरण है। स्मृतियों की विवृति इस कविता की विशेषता है। कविता यद्यपि संवाद शैली में लिखी गई है, पर उसमें स्मृतियाँ ही मुख्यधारा के रूप में प्रवाहित हैं। इसमें जीवन के स्मृति भंडार की वे जीवंत छवियाँ हैं, जिन्हें बड़े स्नेहिल स्पर्श से अभिव्यक्ति के कैनवास पर स्निग्धता के साथ उकेरा गया है। दरअसल ये स्मृतियाँ ओस की उन छोटी-छोटी बूंदों की तरह हैं, जिन्हें जीवन-यात्रा में प्रखर सूर्य किरणों के ताप से सूख जाने से बचाए रखने की कोशिश है। कविता में अतीत की कोमल और मसृण यादें अनोखी शब्द-योजना के साथ अभिव्यक्त हैं, जो हृदयग्राही आकर्षण बनकर पूरी कविता में तरंगायित हैं, जिनसे गुजरती हुई कविता आगे बढ़ती है। इसमें घटनाक्रमों का एक अविच्छिन्न प्रवाह है जो पाठक को शुरू से अंत तक बांधे रखता है। कविता में शुरू से लेकर अंत तक जीवन स्पंदित है।

प्रथम और मध्यम पुरुष के बीच संवाद के रूप में लिखी गई यह कविता एक छोटी यात्रा के रूप में प्रारंभ होती है, जिसकी आरंभिक पंक्तियों में ही वात्सल्य का एक अनोखा भाव मार्मिक रूप में प्रकट होता है। एक भाई का अपने अस्वस्थ अनुज के मुलायमियत से थामे हुए हाथों की स्नेहिल उष्मा, उसके प्रति आँखों में छलकते अकूत प्रेम और अंतःकरण में पसीज रहे मनोभाव शब्दों की तुलना में ज्यादा मुखर हैं। यह भाई, जो उसकी चाची बनी सगी मौसी का बेटा है, और उसके प्रति उसका ममत्व हृदय की गहराई से निःशब्द प्रकट हो रहा है। कवयित्री इस पूरे दृश्य को शब्द-चित्रों के माध्यम से उकेरने में कामयाब होती हैं। इन पंक्तियों में उनकी कवित्व-प्रतिभा का परिचय मिलता है जो उनके हृदय में बीज रूप में प्रस्फुटित होकर शब्द रूपी कोपलों में फूट निकली है। भावनाओं की एक बाढ़ पाठक को फेनिल उर्मियों से भिगोती चलती है। कवयित्री उस संसार में विचर रही हैं जो सुंदर और सुकुमार है, और मार्मिक भी।

गाड़ी में पास बैठे स्वजन की फटी धोती पर नजर जाते ही पिता की कमीज पर रफू करने की अपनी कलाकारी की याद आती है, और इस धोती में भी रफू करने की अदम्य इच्छा उमगने लगती है। यादों का सिलसिला निरंतर बढ़ता जाता है। परस्पर संवाद के बीच आत्ममुग्धता के साथ जन्म से लेकर वयस्क होने तक की घटनाओं के जुड़ते-बिखरते झीने तार फैले हैं। उनमें बालपन की माता के सान्निध्य से वंचित सफेद फ्रॉक, लाल बेल्ट, सफेद मोजे और काले जूते तथा बालों में दो लाल फीते के फूल बांधी बालिका भी आती है और स्कूल-कॉलेज से लेकर एमए तक पढ़ाई करती युवती भी। उन यादों में सदा हृदय के तार स्पंदित होते रहते हैं, किशोर जीवन की सुमधुर स्मृतियाँ भी लहराती रहती हैं, जहाँ बेहद जहीन और गहरे धँसती आँखों वाली दृष्टि और महीन होठों से छूटती सफेद काँस के फूलों

की उजली हँसी बिखेरता व्यक्ति भी है, जो आज भले ही एक अंतराल के बाद मिला हो पर पहले अकसर मिलता रहा है और अपने सामीप्य सुख से सिंचित भी करता रहा है। गाड़ी में उस करुणा से भरे, अत्यंत संवेदनशील चहेते व्यक्तित्व के पार्श्व में बैठी संगी एक असीम धन्यता तथा अनिर्वचनीय आंतरिकता से भावोदीप्त है। धोती-कुरते में विभूषित उसकी उदात्त भारतीय परंपरा, संस्कार सुसंपन्नता उसे अभिभूत कर रही है। सायंकालीन रोशनी के रेशमी तिलिस्म के लघु काल-क्षण में विचरती हुई उसकी हृदय-तंत्री के तार झंकृत हो रहे हैं।

संवाद-सूत्र से जुड़ते हैं जालान कॉलेज के हिंदी विभाग के शिक्षक, नंदा मासी, डॉ. मंजूरानी सिंह, नागार्जुन आदि। फिर अंत में वयस्क जीवन, बच्चे और परिवार। गंतव्य निकट आते ही यादों का प्रवाह थमने लगता है, छोटी-छोटी पगडंडियों में दायें-बायें मुड़ते हुए।

इस कविता की एक विशेषता है शब्दों के बिना भी बहुत कुछ कहने की क्षमता, ठीक उसी तरह जैसे मौन रहकर भी बहुत कुछ कहा जाता है। यद्यपि कविता लंबी है, पर अक्स भी तो बड़े हैं! सबको जोड़ने में कलात्मता स्पष्ट दिखती है। प्रायः देखा जाता है कि कविता में कई बार जीवन की परतों में उन रंगों की खोज की जाती है, जो प्रायः खोजे नहीं मिलते, पर जब मिलते हैं तो बड़े खूबसूरत और आह्लादकारी बन जाते हैं।

मधु-सुरभि से भरी हुई इस कविता की सप्राणता इसकी भावना में है, जो बिंबों की प्रमुखता से चकित करती है। कवयित्री का लक्ष्य अर्थग्रहण कराने की तुलना में बिंब ग्रहण कराने का अधिक रहा है। भाषा की समास-शक्ति और व्यंजनात्मकता उल्लेखनीय है। कविता में सौंदर्यमय प्रतीक-विधान आकर्षित करते हैं।

संपर्क : डॉ. अवधेश प्रसाद सिंह, मो. 9903213630

21वीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में लघुकथा का अस्तित्व एवं महत्व

सिद्धेश्वर

आदमी अपनी जमीन पर ही जिंदा रह सकता है! आदमी के लिए, आदमी का होकर रहने के लिए, ऊंचे-ऊंचे कोठे एयर कंडीशन कमरों और बड़े-बड़े महलों से उतरकर लघुकथा 21वीं सदी की जमीन पर खड़ी है, आपनी पूरी गरिमा और अपनी पहचान के साथ विकसित हुए हैं। लघुकथा की इस उर्वरक भूमि में एक सौ से अधिक ऐसे लघुकथाकार अंकुरित होकर पले और वे लघुकथा के इतिहास में अपना नाम दर्ज करा चुके हैं तथा लघुकथा के शोध, आलोचना और मूल्यांकन के दौरान उनकी सृजनात्मकता को रेखांकित उल्लेखित किया जा रहा है।

हिंदी साहित्य में, 'लघुकथा का अस्तित्व और महत्व' विषय को लेकर जब मैंने ऐसे ही प्रतिनिधि लघुकथाकारों से विचार-विमर्श किया, तब कई उल्लेखनीय बातें हमारे सामने आईं। उन सभी विचारों को हूबहू उतार दूं तो एक भरापूरा ग्रन्थ बन जाए। किंतु हमारा उद्देश्य लघुकथा विशेषांक एवं पुस्तक में उसका संक्षिप्त अंश प्रस्तुत करना है ताकि अधिकांश विचारों को एक आलेख के रूप में समेटा जा सके।

यशस्वी समीक्षक आलोचक डॉ कमल किशोर गोयनका ने लिखा है - 'लघुकथा 21वीं शताब्दी की विधा है और अब वह साहित्य की स्वीकृत एवं मान्य विधा बन गई है। साहित्य में लघुकथाकारों की कई पीढ़ियां रचनारत हैं और बेहतरीन लघुकथाएं लिखी जा रही है। आज लघुकथाएं अपना इतिहास स्वयं रच रही हैं और भविष्य में आने वाली पीढ़ियाँ भी इसी प्रकार रचती रहेंगी। सिद्धेश्वर जी,आपके द्वारा लघुकथा के विकास के लिए जो काम किए जा रहे हैं, वह बेहद महत्वपूर्ण हैं और इसमें 13/14 वर्षों की वेस्ट लघुकथाएं सामने आ सकेंगी!'

कमल किशोर गोयनका ने मुझसे किए गए इस पत्राचार में एक जरूरी सवाल भी उठाया है कि - क्या लघुकथा अकादमी बनाई जा सकती है, जो लघुकथा के विकास प्रकाशन तथा पुरस्कृत करने के दायित्व को निष्पक्ष ढंग से उठा सके?'

कृष्ण कुमार यादव 21वीं सदी को माइक्रो व नैनो के रूप में देखते हुए, लघुकथा के महत्व पर टिप्पणी करते हैं कि –' एक दौर था, जब नख - शिख वर्णन के लिए साहित्य में सैकड़ों पन्ने भर दिए जाते थे। साहित्य में वर्णनीयता को काफी तरजीह दी जाती थी। लंबे-लंबे उपन्यास, लंबी कहानियां, लंबी कविताएं.....! पर ठीक इसके विपरीत लघुकथा एक विषय, एक घटना के मार्मिक बिंदु पर केंद्रित होकर उसके संवेदना सूत्र को सारगर्भित रूप में, सटीक कथ्य, कथानक, संवाद-योजना, शिल्प एवं भाषा शैली के साथ इस रूप में सहज प्रेषित की जाती है कि अंत तक वह पाठकों को जिज्ञासु बनाए रखें!'

कभी फिलर बनकर पत्रिकाओं की उदर पूर्ति कर रही लघुकथा, आज शोध का विषय बन कर उभरी है! देशभर की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाएँ लघुकथा विशेषांक प्रकाशित कर रही हैं। मात्र एक दशक 2001 – 2010 की बात करें तो 190 व्यक्तिगत लघुकथा संग्रह और 75 लघुकथा संकलन प्रकाशित हुए हैं! अब तो इंटरनेट पर तमाम वेबसाइट और e-patrika (ई पत्रिका) है वह ब्लॉग दिशा में महत्वपूर्ण काम कर रही है।

लघुकथा के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर डॉ कमल चोपड़ा ने लघुकथा के शिल्प को रेखांकित करते हुए लिखा है –' लघुकथा के शिल्प के प्रति जागरूकता बढ़ी है। सधी हुई भाषा, ठोस वैचारिकता, सरल भाषिक सजगता, सटीक शब्द चयन आदि इन सबसे निकलकर लघुकथा में ऐसा सशक्त गद्य निर्मित होता है जिसे लघुकथा कहा जाता है। किसी गहन सूक्ष्म विचार या कथ्य के इर्द-गिर्द में कथा बुनी जाए, फिर उसकी कटाई छँटाई करके उसे धारदार बनाकर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। वस्तुतः लघुकथा विद्युत तरंग का विस्फोट होती है।

लघुकथाओं की बाढ़ सी आ गई है ऐसा कहते हैं आलोचक मित्र। किंतु ऐसी बात सिर्फ लघुकथा के साथ नहीं बल्कि अन्य विधाओं के साथ भी है। फिर सिर्फ लघुकथा को बदनाम करने की जरूरत क्या है? इस संदर्भ में अशोक भाटिया लिखते हैं कि -' थोक में लेखन हुआ और थोक व्यापारी भी उभर आए। लघुकथाओं के और लघुकथा संग्रहों के अंबार लग गए। इसके बावजूद हिंदी में अच्छी लघुकथाएं पहले भी लिखी जाती रही हैं और आज भी लिखी जा रही हैं। जरूरत इस बात की है कि सामाजिक दायित्व निभाते हुए उन्हें पहचाने और उदारता के साथ बेहतर लघुकथाओं को सामने लाएं, किसी व्यक्ति विशेष की चमचागिरी या चापलूसी नहीं करें। नकारात्मक भाव के स्थान पर सकारात्मक भाव को बढ़ाने की आवश्यकता है।

पुरुषोत्तम दुबे के अनुसार सामाजिक विद्रूपदाओं पर प्रहार करती है लघुकथाएं। लघुकथा में जीवन की जितनी मीमांसा होगी, लघुकथा उतनी ही प्रासंगिक कहलाएगी। वहीं पर सिद्धेश्वर कश्यप के विचार में आज की हिंदी लघुकथा जीवन के यथार्थ को परत दर परत उघारती है और मानवीय अस्मिता को स्वर देती है तथा मनुष्य की अब संस्कृति और मानवीयता से ग्रस्त अस्मिता को रेखांकित करने में पूर्णतः सफल है!

संतोष श्रीवास्तव ने लिखा है कि हिंदी साहित्य में लघुकथा लेखन एक महत्वपूर्ण विधा है। लघुकथा जीवन के हर पक्ष को छूती हुई और आर्थिक सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक मोर्चे पर डटे रहकर मनुष्य का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम है।

वहीं विष्णु प्रभाकर ने एक जगह पर लिखा है कि लघुकथा को विराट रूप में देखा जाना चाहिए। उनके अनुसार लघुकथा के शब्द अल्प हैं, पर अर्थभूमा है। वह सूत्र रूप में जीवन की विराटता की व्याख्या करती है। वह अर्थ वहन करने की क्षमता में अपूर्व होती है, और यही अपूर्व लघुकथाओं को सशक्त और मजबूत बनाती है।

धीरेंद्र शर्मा ने लघुकथा के महत्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि गंभीर प्रभाव सतसैया के दोहे, घाव करे गंभीर कहावत को चरितार्थ करती है लघुकथा।

सतीश राठी भी स्वीकार करते हैं की लघुकथा जिंदगी की तमाम विसंगतियों पर वजनदार चोट करने में पूर्णतः सक्षम है। वहीं शकुंतला किरण लिखती हैं कि लघुकथा अपने तीखेपन से, हमारी चेतना को झकझोर देती है और गंभीर चिंतन-बीज देती है। शंकर पुणतांबेकर ने भी स्वीकार किया है कि आकार में लघु होते हुए भी गहन अर्थधर्मी है, जिसकी सघन संवेदना चेतना को स्पंदित कर देती है। लघुकथा में जीवन के किसी जीवंत क्षण, महत्वपूर्ण अनुभव, अनुभव जन्य विचार, संवेदना या जीवन मूल्य की सशक्त अभिव्यक्ति करने की क्षमता होती है।

साहित्य में लघुकथा

बलराम अग्रवाल ने विस्तार से 21वीं सदी की लघुकथाओं को रेखांकित करते हुए लिखा है - '21वीं

सदी सात पायदान पार कर आठवें पायदान पर पाँव रख रही है। हिंदी लघुकथा ने कथ्य, भाषा, शैली एवं शिल्प के नए आकाश में पांव पसार लिए हैं।'

यशस्वी कथाकार भगवती प्रसाद द्विवेदी ने लघुकथा पर विस्तार से 'अतीत, वर्तमान और संभावनाएं' के अंतर्गत लिखा है कि - 'लघुकथा एक जीवंत साहित्य की विधा है। लघुकथा जीवन की धरती पर प्रकट होती है, समाज में सांस लेती है, आसमान की ओर देखती है और बाहर की हवा को ग्रहण करने में पीछे नहीं रहती!'

डॉ मिथिलेश कुमारी मिश्र के अनुसार – 'उपयोगिता ही किसी विधा का महत्व बढ़ाती है। बाजारीकरण के युग में मशीनी सभ्यता पाँव फैलाने लगी। यहां तक कि आज भी संवेदनाओं से दूर, आदमी मशीन जैसा बनने लगा है। ऐसे संक्रमणात्तमकता में, पाठक भी वृहद आकरीय विधाओं से हटने लगा है और उसका आकर्षण लघु आकारीय विधाओं की ओर बढ़ने लगा।'

डॉ नरेंद्र नाथ लाहा ने विधा के महत्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि – ' लघुकथा बड़ी बात को लघु रूप में कहती है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। किंतु बड़े साहित्य को पढ़ना अब नामुमकिन होता जा रहा है। आम पाठकों का रुझान लघुकथा की ओर बढ़ने लगा है। लघुकथाएं ही एक माध्यम रह जाती है जो सारी समस्याओं को पाठक के सामने रख देती है। धड़ल्ले से छप रही किताबें, आज लाइब्रेरी और आलमारी के हिस्से बनती जा रही हैं। बाद में रद्दी के भाव बिक जाती हैं। किंतु लघुकथा की पुस्तकें आज भी खूब पढ़ी और खरीदी जा रही हैं।'

डॉ महाश्वेता चतुर्वेदी ने लिखा है - जिसमें सामर्थ्य होता है वही जीवित रहता है। अस्तित्व के अभाव में दो पल भी जीवित रहना दुष्कर है। हिंदी साहित्य में लघुकथा का अस्तित्व प्रश्नवाचक नहीं, अपितु प्रेरित करने वाला है।'

डॉ पुष्पा जमुआर के अनुसार - आपातकाल में जब अभिव्यक्ति पर पाबंदी लगी, तब छोटी-छोटी विधा की रचनाएं यथा - कविता,गजल के साथ-साथ लघुकथा– व्यंग्यात्मक तेवर के कारण जनता के बीच अधिक अभिव्यक्त हुई। आज पत्र-पत्रिका ही नहीं इंटरनेट, आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा भी लघुकथाएं अपना महत्त्व दर्शा रही हैं। मंचों पर प्रदर्शित भी हो रही हैं। विदेशों में भी लघुकथाओं पर शोध कार्य चल रहे हैं।'

डॉ अंजना अनिल के शब्दों में' सृजन की अद्भुत विधा है 'लघुकथा'। छोटे से कैनवास पर बड़ी से बड़ी बात और तराशे हुए क्षणों की गंभीर अभिव्यक्ति लघुकथा के द्वारा ही संभव है। लघुकथा नैतिकता, भ्रष्टाचार, असहजता, नारी मन की व्यथा, समकालीन लघुकथा पर्यावरण, संवेदनशीलता के विविध आयाम, यानी सभी पहलुओं से हमारा साक्षात्कार करवाती है। साहित्य की यह सशक्त विधा निरंतर अपना फलक विस्तारित कर रही है!'

डॉ भारती सुबालकर लिखती हैं कि - 'प्रेमचंद से लेकर आज के लघुकथाकारों के द्वारा सृजित लघुकथाओं का विस्तृत आयाम है। पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा सरितसागर की तरह लघुकथा का यह लघु कथानक रूप, सिर्फ रचनाकारों नहीं, बल्कि आप पाठकों तक भी पहुंच गई है। लघुकथा महाकाव्य का चित्र और कहानी का चरित्र है।'

यशस्वी कवि कथाकार अज्ञेय ने लघुकथा के महत्व को स्वीकारते हुए लिखा है कि - 'लघुकथा लंबी कहानी की कथावस्तु का प्लाट मात्र ही नहीं बल्कि उसका सपरिधान रूप भी है।'

विख्यात कथाकार कमलेश्वर ने लघुकथा के महत्व को व्यावहारिक रूप में स्वीकारते हुए अपने संपादन में प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'सारिका' के माध्यम से पूरे देश में लघुकथा को एक पुख्ता जमीन दी। उन्होंने इस संदर्भ में लिखा भी है कि लघुकथा अपनी आंतरिकता में महाकथा को समेटे होती है। लघुकथा छोटे-छोटे प्रसंग को बारीकी से उद्घाटित करती है।'

कथाकार बलराम ने तो लघुकथा के महत्व और अस्तित्व को स्वीकारते हुए, लघुकथा कोश के कई खंड

भी प्रकाशित करते हुए एक कीर्तिमान स्थापित किया है। बलराम के अनुसार -' निश्चय ही लघुकथा एक कथा विधा ही है, गीत और गजल की तरह प्रभावशाली। महाकाव्य, खंडकाव्य से गीत ग़ज़ल की जो प्रासंगिकता है, वही प्रासंगिकता उपन्यास कहानी से लघुकथा की भी है। किंतु बढ़ती व्यस्तता के कारण छोटी-छोटी रचनाओं में पाठक अधिक रुचि ले रहा है, जिसके कारण लघुकथा विधा का महत्व और अधिक बढ़ा है।'

कथाकार जयंत के शब्दों में - 'हिंदी साहित्य में लघुकथा ने अपनी एक अलग पहचान स्थापित की है। लघुकथा का महत्व वर्तमान भाग-दौड़ की उपज है! आज कोई पाठक किसी पत्र-पत्रिका को पढ़ने के लिए उठाता है तो उसकी नजर लघुकथा पर ठहर जाती है। उसकी मानसिक भूख लघुकथा, गीत, ग़ज़ल जैसी लघुआकारीय रचनाओं को पढ़कर संतुष्ट हो जाती है।'

उनके इस विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि दूरदर्शन, कंप्यूटर और इंटरनेट के प्रचलन के कारण वर्तमान में पठनीयता एवं भावपूर्ण वाचन की प्रकृति में तेजी से गिरावट आई है। लघुकथा अपने पैनेपन के कारण भी पाठकों पर गहरी छाप छोड़ती है और उन्हें सोचने के लिए विवश करती है और यही तो साहित्य का उद्देश्य है। भाई, देखन में छोटन लगे घाव करे गंभीर वाली कहावत चरितार्थ होती है लघुकथा के लिए।'

कवि कथाकार डॉ उपेंद्र प्रसाद राय के अनुसार - साहित्य का इतिहास गुणात्मकता का होता है। प्रचार तंत्र के माहिर खिलाड़ियों का नही। इसलिए गुणात्मकता के कारण ही साहित्य की मूल विधा के रूप में पहचान बना ली है लघुकथा ने। किंतु आवश्यकता है, श्रेष्ठ लघुकथाओं को निष्पक्षता और गुणवत्ता से परखने और परोसने की, जो आज बहुत कम देखने को मिल रहा है। लघुकथा पर गुटवादिता और मसीहावादिता हावी है। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अच्छी लघुकथाएं बार-बार पाठकों के सामने लानी चाहिए, तभी लघुकथा की जीवंतता भी बरकरार बनी रहेगी।'

प्रो. रूप देवगुण के अनुसार -' चमत्कृत करने वाली विधा होने के कारण इसे अधिक पसंद की गई है। व्यस्तता के इस युग में कम से कम समय लेकर लघुकथा अधिक से अधिक उपयोगी और प्रासंगिक हो गई है। लघुकथा ने अपने स्वरूप को निश्चित किया है, संवारा है, जन-जन के हृदय में स्थान बनाया है।'

अशोक आनंद ने तो लघुकथा को पहन ओढ़कर खुद को लघुकथा के रूप में अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि -' मैं अपनी सहज संप्रेषणीयता की वजह से हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा बन गई हूं। मेरा शिल्पगत सौंदर्य मेरी लोकप्रियता एवं पाठकीय रिश्ते की मजबूती का एक पैमाना है। मैं लघु होते हुए भी जीवन की व्याख्या हूं। 21वीं सदी में मेरे अस्तित्व एवं महत्व को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि मैं एक बहुपठित लोकप्रिय विधा हूं। मैं इस सदी के पाठकों की पसंद के पहले पायदान पर हूं।'

डॉ मोहम्मद मोहिउद्दीन अतहर ने लिखा है कि-' लघुकथा सत्य का साक्षात्कार है। सामाजिक विसंगतियों को पर्दाफाश करने में लघुकथा सक्षम है। लघुकथा आम आदमी के निकट होने के कारण जनप्रिय भी है।

हिंदी साहित्य में लघुकथा

डॉ सतीशराज पुष्करणा ने लिखा है -' इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के युग में, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गति आई है। साहित्य एवं उसकी प्रायः सभी विधाएं भी इस प्रभाव से बची नहीं है, तो लघुकथाएं इसका अपवाद कैसे हो सकती हैं? मैं यह कहना चाहूंगा कि लघुकथा भी क्रमशः विकास कर रही है। कारण टी.वी.केबल, कंप्यूटर एवं अंतरजाल,ये सभी इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के रूप हैं। अतः पढ़ने से अधिक देखने में लोगों की रुचि अधिक होती है। यही कारण है कि' लघुकथा डॉट कॉम' नाम से भी ई -पत्रिका इंटरनेट के माध्यम से चल रही है। लघुकथा संबंधित कई ब्लॉग चल रहे हैं। लघुकथा पर वेबसाइट भी उपलब्ध है। निश्चित ही इस अंतरजाल के युग में भी लघुकथाओं का भविष्य बहुत ही उज्जवल है।'

हरदर्शन सहगल ने सुझाव दिया है कि -' इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के इस युग में लघुकथाएं ही ज्यादा पढ़ी जाती है। ऐसे में लघुकथा की पुस्तकों को भी कॉलेजों के कोर्स में पढ़ाई जानी चाहिए।'

सूर्यकांत नागर ने लघुकथा के व्यापक महत्त्व को स्वीकारते हुए लिखा है - इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के इस युग में भी लघुकथा को कोई खतरा नहीं है। उल्टे इन माध्यमों से लघुकथाएं और उनसे जुड़ा साहित्य दूर-दराज तक, बहुसंख्यक पाठकों तक पहुंच रहा है। विषय वस्तु, भाषा और शिल्प के स्तर पर भी नए प्रयोग हो रहे हैं। लघुकथाएं नए आयामों और नए तेवरों के साथ हमारे सामने आ रही हैं। बस, घिसी-पीटी विषय छूटते जा रहे हैं। यदि दोहराए भी जाते हैं तो नए अंदाज में।'

इस शोध परक आलेख को और अधिक विस्तार ना देते हुए अंत में डॉ. सतीश दुबे के विचार को सामने रखना चाहूंगा, जिन्होंने हमें लिखा है कि - ' परिधियों से मुक्ति ही लघुकथा का प्रांजल - स्वरूप है। लघुकथा की पहली शर्त है - कथा - बीज की तत्व के अनुरूप फलक पर प्रभावी अभिव्यक्ति। यानी लघुकथा, कथा नहीं बल्कि क्षणिक घटना, भाव या विस्तार से निःसृत लघुकथा-बीज होता है। इसका पल्लवन संप्रेषण स्तर पर, साहित्यिक सामाजिक सरोकार के मद्देनजर कथा आस्वाद के साथ बुना जा रहा है।'

लघुकथा के प्रांजल स्वरूप को लालायित आंखों से देखने को आतुर परिधियों से बाहर तटस्थ खड़े चिंतातुर पारिखियों के आंतरिक -सेंध लगाकर व्यक्त की जा रही, ऐसी नन्ही अंतरकथाओं के बावजूद अनेक रेखांकित किए जाने योग्य पहल लघुकथा लेखन क्षेत्र में जारी है।'

लेकिन इस विचार को व्यक्त करते हुए एक सवाल छोड़ जाते हैं डॉ सतीश दुबे जी - 'लघुकथा साहित्य में आज प्रेमचंद जैसा नाम क्यों नहीं है ?'

किंतु सच यह भी है कि ऐसे आरोपों को उछालने के पूर्व यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रेमचंद नए सूरज के मानिंद युग प्रवर्तक हैं! उन्होंने कथा साहित्य को पूर्ववर्ती तिलिस्म या कल्पना - लोक से मुक्त कर जीवन समय और लोक यथार्थ में तब्दील किया है। प्रेमचंद से कथा साहित्य की नई परंपरा प्रारंभ होती है। ऐसी परंपरा जिसने इतने प्रेमचंद से परिचित कराया है कि किसी एक नाम को विशेष रूप से रेखांकित करना आज मुश्किल हो गया है।

इन तमाम सीमाओं और परिधि के बावजूद हमने देशभर के चर्चित एवं श्रेष्ठ लघुकथाकारों, पाठकों एवं समीक्षकों के बीच जब उनके पसंद के श्रेष्ठ 21 लघुकथाकारों का नाम जानने की इच्छा व्यक्त की , तब उन्होंने जो नाम गिनाए उनमें 10-12 लघुकथाकारों के नाम ही ऐसे थे, जो लगभग सभी के विचारों के साथ तालमेल रख रहे थे। बाकी ने अपने मित्र लघुकथाकारों को ही भजने -जपने और भंजाने का अंजाम दिया, भले उनकी लघुकथाएं श्रेष्ठ हो या नहीं हो। किंतु जब सर्वेक्षणात्मक आधार पर, कोई निर्णय लेने की या चुनाव करने की बात हो तो, बात तो बहुमत की ही माननी पड़ती है। सामूहिक तौर पर 21वीं सदी के प्रतिनिधि लघुकथाकारों में जिन लघुकथाकारों को अपने पसंदीदा क्रम के चुनाव में रखा गया, उनमें प्रमुख हैं – सर्व श्री सुकेश साहनी , डॉ कमल चोपड़ा, डॉ सतीशराज पुष्करणा, डॉ सतीश दुबे, शंकर पुणतांबेकर, सिद्धेश्वर , रामयतन यादव , युगल, कमलेश भारतीय, डॉ रामनिवास मानव, डॉ मिथिलेश कुमारी मिश्रा, विक्रम सोनी, चित्रा मुद्गल, डॉ बलराम अग्रवाल, रूप देवगुण, मधुकांत, डॉ अंजना अनिल, सतीश राठी, ज्ञानदेव मुकेश, पारस दासोत, भगवती प्रसाद द्विवेदी, डॉ योगेंद्रनाथ शुक्ल, बीएल आच्छा, डॉ किशोर काबरा, मार्टिन जॉन, तस्नीम, कांता रॉय, रामेश्वर कांबोज हिमांशु, उमेश महादोषी, बलराम, मिथिलेश दीक्षित, पूरन सिंह, पवन शर्मा, कमल पुंजाणी, नरेंद्रनाथ लाहा,ज्योति जैन, राधेश्याम पाठक, मो मोहिउद्दीन अतहर, कुंवर प्रेमिल, देवेंद्र नाथ साह, डॉ रामकुमार घोटड़, पारस अशोक, राजकुमार निजात, डॉ स्वर्ण किरण, शकुंतला किरण, कृष्णानंद कृष्ण, श्याम सुंदर अग्रवाल,

राजेंद्र मोहन त्रिवेदी बंधु, डॉ पुष्पा जमुआर, संतोष श्रीवास्तव, वीरेंद्र कुमार भारद्वाज, चंद्रभूषण सिंह चंद्र, सुरेश शर्मा, चैतन्य त्रिवेदी, श्यामसुंदर दीप्ति, माधव नागदा, इंदिरा खुराना, सुभाष नीरव, महेंद्र सिंह महलान, भागीरथ, आनंद बिल्थरे, अशोक भाटिया, प्रताप सिंह सोढ़ी,शकुंतला किरण, आभा सिंह, रचना भारती आदि।

60 लघुकथाकारों, पाठकों, समीक्षकों द्वारा लिखित अनुशंसा के आधार पर उपरोक्त लघुकथाकारों का नाम पंक्तिबद्ध किया है मैंने। इनमें से अधिकांश लघुकथाकार बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में काफी सक्रिय रहे हैं और उनकी लघुकथाएं पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के माध्यम से सर्वाधिक चर्चित रही हैं। इसलिए इनकी सक्रियता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसलिए इन लघुकथाकारों को 21वीं शताब्दी के आरंभ में ही, 21वीं सदी के लघुकथा आकाश का नक्षत्र मान लिया गया। किंतु बात 21वीं सदी की है। इसलिए सर्वसम्मति से सर्वेक्षणात्मक आंकड़े के मापदंड पर जिन 21 लघुकथाकारों का नाम चुना गया है। उपरोक्त लघुकथाकारों में से कई नामों से असहमति प्रकट की जा सकती है, या कई नए नामों को जोड़ा जा सकता है। यह अलग विषय है। किंतु हमने इन नामों का चुनाव व्यक्तिगत न रखकर, सामूहिक रखा और निष्पक्षता पूर्वक उसका निर्वाह भी किया, बगैर किसी खेमे बाजी के। जबकि बहुत जगह पर देखा गया है कि बिना किसी आधार और बिना किसी मूल्यांकन के श्रेष्ठता की सूची बनाकर, जग जाहिर कर दिया जाता है, जिनमें अधिकांशतः उनके मित्र मंडली के लोग होते हैं। यह तोहमत यहां पर इसलिए नहीं लगाई जा सकती, क्योंकि सब कुछ लिखित और सर्वेक्षण के आधार पर हुआ है। हां सर्वेक्षण में शामिल लोग, कितने निष्पक्ष रहे यह मैं नहीं कह सकता। किंतु इस तरह यदि साल में एक बार, खुला सर्वेक्षण हो, तो प्रत्येक सूची में कई नए नाम आ सकते हैं और कई उल्लेखित नाम छूट सकते हैं। मेरे विचार से हर प्रांत में, इस तरह का प्रयोग किया जाए तो आम पाठकों के बीच, वे तमाम सृजनशील रचनाकार सामने आ सकते हैं, जिन्हें कुछ आत्ममुग्ध बड़े भइयों के द्वारा जानबूझकर उपेक्षित कर दिया जाता रहा है।

यह भी सच है कि अंततः साहित्य के इतिहास के निर्णायक तो पाठक ही होते हैं। हमें पाठकों के विचार सुझाव और परामर्श की आवश्यकता बनी रहेगी। और हम यह चाहेंगे कि प्रत्येक वर्ष साहित्य की प्रत्येक विधाओं पर इस तरह का पाठकीय मूल्यांकन हो, और इस आधार पर शोध आलेख तैयार हो। वरना आज के समीक्षक, आलोचक और शोध लेखकों का रवैया क्या रहा है, यह बात किसी से छुपी हुई नहीं है। इसलिए उनके मोनोपोली, खेमेबाजी को तोड़ने के लिए इस तरह के प्रयास को व्यापक मुकाम तक पहुंचाने की सख्त जरूरत है।

21 वी शताब्दी को समर्पित लघुकथा पुस्तक, पत्र-पत्रिकाएं एवं लघुकथा विशेषांकों की प्रासंगिकता 21वीं शताब्दी में प्रकाशित हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियों में कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा, भेंटवार्ता संबंधित विधाओं के अपेक्षा लघुकथा विधा की अधिक प्रासंगिकता रही है। लघुकथा अन्य विधाओं के अपेक्षा अधिक पढ़ी और सराही गई है। बल्कि श्रेष्ठता और स्तरीयता के मापदंड पर भी लघुकथा खरी उतरी है। पत्र-पत्रिकाओं के जितने विशेषांक प्रकाशित हुए हैं, उनमें लघुकथा विशेषांकों की संख्या भी अधिक रही है। इतना ही नहीं लघुकथा की पुस्तकें भी अधिक छपी है और बिक्री की संख्या में भी उसने अपना अलग स्थान बना रखा है। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि 21वीं शताब्दी को प्रभावित करने वाले हिंदी साहित्य में अन्य विधाओं की प्रासंगिकता कम रही है। किंतु लघुकथा कम समय में अधिक प्रभाव छोड़ने वाली विधा रहने के कारण पाठकों की पहली पसंद बन गई है इसमें कोई दो मत नहीं। हम सैद्धांतिक नहीं व्यवहारिक बातें कर रहे हैं। आज भी आप कोई भी पत्र-पत्रिका या पुस्तक उठा लें, उनमें कहानी, लेख या उपन्यास पढ़ने से भले कुछ

पाठक चुक गए हों या मुक्तछंद की कविता को बिना पढ़े पृष्ठों को पलट दिया हो। किंतु जब लघुकथा या गीत गजल पर उनकी नजर जाती है तो वे तुरंत आत्मसात कर लेते हैं, और पढ़ते हैं। इस तरह व्यावहारिक तौर पर कहा जा सकता है कि अन्य विधाओं की अपेक्षा लघुकथा अधिक पढ़ी और सराही जा रही है तथा हिंदी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण हस्तक्षेप कर रही है।

किसी भी विधा में कुछ 'नामवरों' की दखलंदाजी के कारण भले कुछ कमजोर रचनाएं भी अपना प्रभाव छोड़ने में अप्रासंगिक रह गई हो, कुछ अच्छी रचनाएं हिंदी साहित्य के दायरे में आने से चूक गई हो, किंतु लघुकथा के क्षेत्र में हर वर्ष नई प्रतिभाओं का जबरदस्त दखल हुआ है, और हो रहा है।, जो लघुकथा की प्रासंगिकता को अलग ढंग से रेखांकित कर रही है। आवश्यकता इस बात की है कि 21वीं शताब्दी में लघुकथा को और अधिक प्रासंगिक बनाने के ख्याल से, रचनाकारों के नामों को अनदेखा कर, लघुकथाओं पर ध्यान दिया जाए और अच्छी लघुकथाओं को पूरा स्पेस दिया जाए। उसे सिर्फ एक बार प्रकाशित देख कर अनदेखा न करें बल्कि श्रेष्ठ स्तरीय लघुकथा को,जो प्रकाशित हो भी गई है, तो उसे भी एक अंतराल के पश्चात पुनः साभार प्रकाशित किया जाता रहे। इस प्रकार एक श्रेष्ठ प्रभावकारी लघुकथा कुछ पाठकों के बीच कहीं छूट न जाए बल्कि हजारों लाखों पाठकों तक पहुंच कर पूरे 21वीं सदी के लिए उपयोगी और प्रासंगिक बनी रहे। आगे की सदियों में भी उसे याद किया जाता रहे।

सच यह भी है कि एक लेख या एक पुस्तक में भी सारे के सारे महत्वपूर्ण पुस्तकों, पत्रिकाओं या लघुकथाकारों को समेट पाना संभव नहीं हो सकता। किंतु यदि खेमेबाजी और भाई भतीजावाद से हटकर, अध्ययन करते हुए यदि इस तरह के लेख,आलोचना, समीक्षा की पुस्तक लिखी जाती रहे,तो अधिकांश स्तरीय लघुकथा और लघुकथा कारों को रेखांकित तो किया ही जा सकता है। हमने तो यहां तक देखा है कि कई समीक्षक आलोचक और लेखक, स्वतंत्र सृजनशील लघुकथा लेखकों को भी द्वेष, ईर्ष्या, खेमेबाजी के कारण जानबूझकर श्रेष्ठ लघुकथा और प्रतिनिधि लघुकथाकारों को बार-बार अपनी दृष्टि से उपेक्षित करते रहे हैं।

नित नई उपलब्धि पा रही लघुकथा के लिए यह घातक और निंदनीय स्थिति है। इसके लिए नए लघुकथाकरों के बीच से, एक अंतराल के पश्चात, लघुकथा के मूल्यांकन के लिए किसी न किसी को आगे आना ही होगा। लघुकथाओं पर समीक्षा, आलोचना और आलेख लगातार सर्वश्री कृष्णानंद कृष्ण, डॉ सतीश राज पुष्करणा, निशांतर, डॉ स्वर्ण किरन, बलराम अग्रवाल, रामनिवास मानव, ब्रजकिशोर पाठक, भगवती प्रसाद द्विवेदी, जगदीश कश्यप, शंकर पुणतांबेकर, डॉ कमल चोपड़ा, सुकेश साहनी निरंतर लिखते रहे हैं। इन्होंने बीसवीं शताब्दी की लघुकथाओं पर खूब लिखा है। इसके बाद की पीढ़ी में रामयतन यादव, इस पंक्ति का लेखक (सिद्धेश्वर), तस्लीम, सूर्यकांत नागर, बीएल आच्छा, नरेंद्र नाथ लाहा, अंजना अनिल, मधुकांत, डॉ पुष्पा जमुआर, रामकुमार घोटड़, उपेंद्र प्रसाद राय, रूप देवगुण आदि कई नए पुराने लघुकथाकार, अपनी नई दृष्टि और नई सोच के साथ समकालीन लघुकथाकारों के मूल्यांकन में अपने अहम भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं।

जरूरत यह भी है कि लघुकथाकारों के अतिरिक्त वैसे युवा संपादक, युवा रचनाकार या युवा विचारक भी सामने आए, जो लघुकथा भले न लिख़ रहे हों, किंतु लघुकथा के करीब रहते हों और लघुकथा को गंभीरता से ले रहे हों। तभी समकालीन लघुकथाओं का सही मूल्यांकन हो सकेगा और झाड़ झंझार को साफ करते हुए श्रेष्ठ लघुकथाओं को, 21वीं शताब्दी की थाती बनाने में हम सक्षम हो सकेंगे।

निश्चित तौर पर समय साक्षी होता है और अच्छी रचनाएं इतिहास बनती है। एक काल अंतराल के बाद भी उसका मूल्यांकन होता है। 21 वी शताब्दी के संदर्भ

में, बीसवीं शताब्दी के प्रतिनिधि लघुकथा पुस्तकों पत्रिकाओं पर एक सरसरी निगाहों से आकलन करें तो मुलाकात हो रहे लेखों के आधार पर लघुकथा संग्रहों में, प्रतिध्वनि (जयशंकर प्रसाद), स्वाति सुमन (तिलक सिंह), झरोखे (सुदर्शन), गेहूं और गुलाब (रामवृक्ष बेनीपुरी), रोज की कहानी (शिवनारायण उपाध्याय), लीला कमल (जानकी वल्लभ शास्त्री), कुछ शिप कुछ मोती ,लो कहानी सुनो (अयोध्या सिंह), एक और नीलांजना (वीरेंद्र कुमार जैन), मां (तिलक सिंह परमार), नारियल का पेड़ (खलील जिब्रान), पंचतत्व (जगदीश चंद्र मिश्र), सैलाब (राकेश भारती),चौरस (गुलजार), सखी (निराला), उजली आग (रामधारी सिंह दिनकर), आकार (इंद्रदेव सिंह), संकेत (उपेंद्रनाथ अश्क), मुखोटे (कृष्ण कमलेश), नेताजी की वापसी (बलराम), महत्वपूर्ण नजर आता है।

एकल लघुकथा संग्रहों में बीसवीं शताब्दी के अंत तक लगभग साढे 700 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें जो लघुकथा संग्रह श्रेष्ठ लघु कथाओं को लेकर चर्चा के केंद्र में रही हैं,उनमें प्रमुख हैं – बंधनों की रक्षा (आनंद मोहन अवस्थी), पहला कहानीकार (रावी), लाल कौड़ी (ठाकुर दत्त शर्मा पथिक), मौन का स्वर (राजेंद्र सिंह), आंखें, आंसू और कब्र (बृजभूषण), पाषाण के पंछी (श्याम नंदन शास्त्री), निर्माण के अंकुर (शरद कुमार शरद), मिट्टी के आदमी और, ऐतिहासिक लघुकथाएं (जगदीश चंद्र मिश्र), सिसकते उजास (डॉ सतीश दुबे), मोहभंग (कृष्ण कमलेश), खड़ी बोली की लघु कथाएं (सत्या गुप्ता), एक और अभिमन्यु (संत मिश्र), छोटा आदमी (ईश्वर चंद्र), नीम चढ़ी गुरबेल (श्री राम मीणा), वर्तमान के झरोखे से (डॉ सतीश राज पुष्करणा), अपना पराया (स्वर्ण किरण), भविष्य का वर्तमान (भगवती प्रसाद द्विवेदी), बनफूल (चंद्रभूषण चंद्र), आपकी कृपा है (विष्णु प्रभाकर), निरंतर इतिहास (पूरन मुद्गल), ताकि सनद रहे (रामनिवास मानव /दर्शन दीप), नई धरती नए बीज (अबज़), जिस्म पर उगा कफन (कृष्ण शंकर भटनागर), यीशु बुलाता है (श्यामसुंदर सुमन), मिट्टी के गंध (चंद्र भूषण सिंह चंद्र), मस्त राग जिंदाबाद (कमलेश भारतीय), घायल आदमी (सुरेश मंथन), तरकश (मधुकांत), लघुकथाएं अंजूरी भर (सत्यनारायण नाटे), ठहरा हुआ जल (अतुल मोहन प्रसाद), मेरी सौ लघुकथाएं (प्रमोद कुमार गोविंद) आदि।

लघुकथा का महत्व और लोकप्रियता इस बात से भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय ज्ञानपीठ जैसी संस्था ने भी चित्रा मुद्गल की लघुकथा संग्रह 'बयान' का प्रकाशन किया है तथा राजेंद्र यादव अपने संपादन में प्रकाशित 'हंस' पत्रिका में लघुकथा को वरीयता के साथ स्थान देते रहे हैं। इतना ही नहीं अनेक विश्वविद्यालयों में भी लघुकथा को शोध के विषय के रूप में, पिछली सदी के आठवें दशक से ही स्वीकार किया जाता रहा है। देशभर में लघुकथाओं पर प्रतियोगिताएं आयोजित की जा रही हैं। देशभर में लघुकथा के ऊपर तो अब लघु फीचर फिल्म भी बनाई जा रही हैं, जिसमें सबसे आगे बिहार के अभिनेता निर्माता निर्देशक अनिल पतंग नजर आते हैं।

लघुकथा साहित्य की एक सशक्त विधा के रूप में स्वीकार कर ली गई है। लघुकथा अब नवीनतम विधा नहीं रह गई है। जिस प्रकार मुक्तछंद कविता को यथार्थपरक कविता की तीव्र भावात्मक परिणति के रूप में देखी जाती है, ठीक उसी प्रकार लघुकथा को भी प्रखर संवेदना की कथात्मक अभिव्यक्ति के रूप में जानी जाती रही है। तभी तो डॉ रमाकांत श्रीवास्तव कहते हैं कि लघुकथा का निःसरण ठीक वैसे ही हुआ है, जैसे कविता का! अतः लघुकथा यथार्थवादी कविता के अधिक निकट है। विशेषकर मुक्तछंद कविता के। कविता की तरह लघुकथा को भी प्रखर संवेदना की कथात्मक अभिव्यक्ति मानी जाता रहा है। कविता का यथार्थ बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होता है, जबकि लघुकथा का यथार्थ, भावुकता की अतिशयता से विरहित प्रत्यक्ष कथात्मक यथार्थ है।'

लेकिन मेरे विचार से लघुकथा कविता के निकट होते हुए भी कविता से अधिक लोकप्रिय और पठनीय विधा है, पाठकों के बीच। दरअसल कविता छंद से हटकर सपाट बयानी होती जा रही है, जबकि पाठक कविता में छंद से दूर होते हुए भी उसमें काव्यात्मकता खोजता है, जो वहां नहीं मिल पाती। जबकि लघुकथा तो अपने आप में गद्य है। उसे काव्यात्मकता की कोई जरूरत नहीं। बल्कि जरूरत है उस प्रखर संवेदना और यथार्थ परक कथ्यात्मकता की, जो उसे भीतर तक हिलोर सके। यानी आधुनिक लघुकथा में व्यक्त होने वाला यथार्थ बहुआयामी होता है। दरअसल समसामयिक जीवन और जिजीविषा में अनेक जटिलताएं और विसंगतियां हैं। इन्हीं जटिलताओं और विसंगतियों के कारण यथार्थ के अनेक रूप देखने को हमें मिलते हैं। रमाकांत के शब्दों में जिस प्रकार साहित्य की अन्य विधाओं को श्रेष्ठतम के लिए अध्ययन, अभ्यास और प्रतिभा का होना अत्यंत आवश्यक है, वैसे ही लघुकथा के लिए भी इन गुणों की अनिवार्यता है। लघुकथा की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज नए पुराने सभी साहित्यकार इससे जुड़ गए हैं। एकल लघुकथा संकलनों के अलावा संपादित लघुकथा संकलन भी अच्छी संख्या में सामने आ रहे हैं। लघुकथा पर शोध कार्य भी बहुत तेजी से हो रहे हैं।

साहित्य का सृजन एक अनवरत प्रक्रिया है। किंतु सृजन और शोध, सृजन और आलोचना, सृजन और मूल्यांकन के बीच यदि नई दृष्टि और ईमानदार नजरिया नहीं होगा, तब लघुकथा की उर्वरक शक्ति को हम बचाए नहीं रख सकेंगे, ताकि बीसवीं शताब्दी की तरह 21वीं शताब्दी भी अपने आगत अतिथि 22वीं शताब्दी को लघुकथा की एक पुख्ता जमीन और स्वर्णिम इतिहास सौंप सके।

लघुकथा विकास के अवरोधक तत्व

लघुकथा के विकास में उन लघुकथाकारों की ऐतिहासिक भूमिका रही है, जिन्होंने 'गुट' ओर 'वाद' से हटकर निष्पक्षता पूर्वक समकालीन लघुकथाओं के मूल्यांकन की ईमानदार कोशिश की है। दुर्भाग्य है कि हिंदी साहित्य में कुछ गैर जिम्मेवार रचनाकारों ने इसके विकास में अवरोधक का काम भी किया है। भाई भतीजावाद तथा गुट और वाद-विवाद के चक्कर में लघुकथा को नुकसान ही पहुंचाया है। जब भी लघुकथाओं पर मूल्यांकन करने के लिए उन्होंने कलम उठाया, उन्हें लघुकथाओं को पढ़ने की जरूरत कम महसूस हुई। और वे अपने मित्रों परिचितों को खुश करने के लिए कमजोर लघु कथाकारों के नामों का जिक्र बार-बार करते रहे हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि लघुकथाओं पर लेख तो वैसे भी बहुत कम लिखे गए हैं। किंतु जो भी आलेख लिखे गए हैं उन्हें आप पढ़ेंगे तो पाएंगे कि कुछ शब्दों का हेरफेर कर लगभग एक ही लघुकथकार का नाम और लघुकथा का शीर्षक का दोहराव होता रहा है। ढेर सारे पाठक और लेखक इस बात को महसूस करते हैं किंतु कहने का जुर्रत बहुत कम लोगों में होती है । इस पचड़े में जल्दी कोई पड़ना नहीं चाहता, जबकि यही वह मूल कारण है कि लगातार बेहतर लघुकथा लिखे जाने के बावजूद कई लघुकथाएं और लघुकथाकार हाशिए में ही रह जाते हैं।

इस बात की सत्यता का एक सशक्त उदाहरण देना चाहूंगा । विगत दो दशक से लेकर आज तक की लघुकथा से संदर्भित आलेख या समीक्षा को आप स्वयं पढ़िए । इधर प्रकाशित हो रही लघुकथाओं में मैं अपने नाम का जिक्र न होने की बात छोड़ दूं, तो ज्ञानदेव मुकेश, भगवती प्रसाद द्विवेदी, विजयानंद विजय, ऋचा वर्मा जैसे कई ऐसे नाम है, जिन्होंने लगभग 1 सौ से अधिक ऐसी श्रेष्ठ लघुकथाओं का सृजन किया है, आज इनकी ये लघुकथाएं देशभर की पत्र पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित और पुरस्कृत होती रही हैं, किंतु इनके नाम का उल्लेख बहुत कम लेखों में या आलोचनाओं में शामिल किया गया है,आखिर क्यों ? आज कुछ ऐसे नाम हैं, जिन्होंने साधारण लघुकथाएं भी नहीं लिखी, किंतु

उनकी चर्चा लगभग हर आलेखों में आप पाएंगे। कुछ ऐसे लेखकों को जबरन उछालने की कोशिश की जाती रही है, जिसकी आलोचना होनी चाहिए या नहीं? जब लघुकथा के इतिहास की बात होती है तो प्रेमचंद से लेकर जगदीश कश्यप, विक्रम सोनी तक के नामों को दोहराए जाते हैं, किंतु 'भविष्य का वर्तमान' जैसे उत्कृष्ट लघुकथा पुस्तक देने वाले सशक्त कथाकार भगवती प्रसाद द्विवेदी के नाम का उल्लेख शायद ही किसी लेख में देखने को मिले आपको। पूरे देश में पहली बार लघुकथा पुस्तक के लिए पुरस्कार की घोषणा होने के पश्चात 'प्रसंगवश' (लेखक : डॉ सतीशराज पुष्करणा) के साथ साथ ' बूंद बूंद सागर '(लेखक : सिद्धेश्वर) का जिक्र भी आपको बहुत कम ही लेख में देखने को मिलेंगे। लघुकथा की समीक्षा और आलोचना लिखने वाले लेखकों को इसकी जानकारी नहीं, जानने की कोशिश नहीं करते, या मेहनत नहीं करते या फिर जानबूझकर उपेक्षित करना चाहते हैं। जबकि इन से बदतर स्तर की लघुकथाओं का जिक्र सामान्यतः हर लेख में देखने को मिल जाएंगे आपको! आखिर इस स्थिति के लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं?

यह भी सच है कि साहित्य जगत में ढेर सारी प्रतिभाएं सृजनरत हैं! और सब का उल्लेख संभव भी नहीं। कोई न कोई नाम या लघुकथा छूट सकती है। किंतु दोहराव की अपेक्षा यदि हम नित्य प्रकाशित हो रही लघुकथाओं को गंभीरता से पढ़ें (लघुकथाकारों के नाम को हाशिए पर रखकर), तब निश्चित ही हर एक नए लिखे जा रहे लेख में कुछ पुराने छूटते हुए नजर आएंगे और कुछ नए लघुकथा और लघुकथाकार जुड़ते हुए नजर आएंगे। और तब साहित्य का यह पूरा परिदृश्य ही बदलता हुआ नजर आएगा आपको। और फिर तब से अब तक लिखे गए लघुकथा से संबंधित आलेख, समीक्षा, आलोचना के ऐतिहासिक महत्व को स्वीकारा जा सकेगा। जानबूझकर उपेक्षित किए जा रहे हैं जिन दो चार लेखकों के नाम मैंने ऊपर जिक्र किया है, यदि इनकी लघु कथाएं और इनका नाम आगे से जोड़ लिया जाए तब भी मैं इस लेख को लिखने का अपना श्रम सार्थक समझूंगा। हमारा उद्देश्य सिर्फ इन नामों को जोड़ना नहीं बल्कि इस तरह जिन श्रेष्ठ लघुकथाओं को और जिन श्रेष्ठ लघुकथाकारों को जानबूझकर उपेक्षित किया जाता है उसके प्रति सकारात्मक रवैया अपनाने से है।

इसी संदर्भ को लेते हुए प्रखर समीक्षक डॉ कमल किशोर गोयनका भी, अपने आलेख 'लघुकथा जीवन की आलोचना है!' में मेरे विचार का समर्थन करते हुए दिख पड़ते हैं –' लघुकथा में जैसी आपाधापी, भीड़ भाड़ अराजकता है, वैसी हिंदी में किसी विधा के साथ नहीं रही।' शायद यही कारण है कि उन्हें यह लिखने पर भी मजबूर होना पड़ा कि -' आज ऐसे लघुकथाकारों की ऐसी फसल उग आई है, जिसे काटकर साफ करना कठिन हो रहा है। यह फ़सल न सिर्फ उर्वरक शक्ति को कम कर रही है, बल्कि अपने झाड़ झंझार में, लघुकथा के वास्तविक पौधों की प्राणशक्ति को सोखते हुए उसे छिपा दबाकर मार देना चाहती है। जो लघुकथाकार, पत्रिकाओं के संपादक, समीक्षक तथा पाठक लघुकथा को फलते फूलते देखना चाहते हैं, उन्हें लघुकथाओं के ढेर में से वास्तविक लघुकथाओं को चुनकर शेष को भूसे के समान काट कर फेंक देना चाहिए। जब तक लघुकथा और लघुकथाकार के प्रति हम निष्पक्ष, उदार और ईमानदार दृष्टि नहीं रखेंगे, क्या ऐसा संभव है?

सच पूछिए तो सामाजिक परिवारिक विसंगतियों के खिलाफ, आंतरिक संवेदनाओं के माध्यम से एक नई विचारधारा के निर्माण एवं सकारात्मक वैचारिक चिंतन की पृष्ठभूमि तैयार करने की उर्वर भूमि है साहित्य। और आज साहित्य की सर्वाधिक चर्चित और पठनीय विधा है लघुकथा। क्योंकि कहानी, उपन्यास, कविता, लेख की तरह साहित्य की एक सशक्त विधा के रूप में लघुकथा ने आज अपनी पहचान बना ली है।

21वीं शताब्दी की लघुकथाओं के 21 नक्षत्र एवं सैकड़ों प्रतिनिधि लघुकथाकार राजनीति, साहित्य, कला, फिल्म हर क्षेत्र में चुनिंदा 10 श्रेष्ठ हस्तियों का जिक्र

किया जाता रहा है। एक जमाने में शुक्रवार,आउटलुक, इंडिया टुडे जैसी पत्र-पत्रिकाएं 10 श्रेष्ठ कवि-कथाकार के नामों का जिक्र कर उस पर विशेषांक निकालते रहे हैं। सैकड़ों, हजारों रचनाकारों के हाथ विरोध और समर्थन दोनों में खड़े होते रहे हैं। यदि यह प्रयास निष्पक्षता पूर्वक हो तो तमाम विवादों के बीच, इसकी सार्थकता तो अवश्य स्पष्ट करती है कि एक बड़े वर्ग द्वारा यह सराही गई है।

साहित्य का क्षेत्र राजनीति और फ़िल्म से बहुत बड़ा है! उसमें कई गुणा अधिक प्रतिभाएं (कलम के सिपाही) होती हैं।

दरअसल हजारों और लाखों में से दस -बीस का चुनाव करना एक जोखिम भरा काम भी है। वह भी तब जब एक साहित्यिक पुरस्कार लेने के पीछे एक रचनाकार अपनी तमाम राजनीतिक और साहित्यिक दांव पेंच खेलने में अपना सारा श्रम लगा देता है। यह बात ठीक है कि पुरस्कृत रचनाएँ, सभी पाठकों की दृष्टि में श्रेष्ठ हो यह जरूरी नहीं। किंतु उन पर एक बड़े पाठक वर्ग की दृष्टि तो पड़ती ही है। यह स्वभाविक है और पुरस्कार सम्मान का उद्देश्य भी यही होता है। इस संदर्भ में गीतांजलि श्री ने ठीक ही कहा है कि -' मुझे जिस पुस्तक पर बुकर पुरस्कार मिला है, इस बात का परिचायक नहीं की इससे श्रेष्ठ पुस्तक नहीं लिखी गई। बस इतना सच होता है कि जो पुस्तक निर्णायक के हाथ तक पहुंच गई, और उन्हें सर्वाधिक पसंद आई, वह पुरस्कार के योग्य समझी गई और पुरस्कृत की गई।

पत्र-पत्रिकाओं,समीक्षकों अथवा आलोचकों के द्वारा, निष्पक्ष ढंग से अलग-अलग, यदि 10 या 20 श्रेष्ठ कवियों, कहानीकारों, लघुकथाकारों का चयन, प्रत्येक वर्ष ईमानदारी पूर्वक किया जाए, तो श्रेष्ठ साहित्य को एक उर्वरक भूमि मिलती रहेगी और वैसे रचनाकार भी सामने आ सकेंगे जो सोर्स पैरवी या अन्य कूटनीति के सहारे इतिहास के पृष्ठों से वंचित रह जाते हैं! यह 10 या 20 रचनाकार अलग-अलग लोगों, अलग-अलग संस्थाओं के द्वारा आएंगे, तो सैकड़ों की संख्या में उदाहरण बन जाएंगे और लाखों पाठकों के सामने उनकी एक अलग तस्वीर बनेगी, एक अलग पहचान बनेगी।

ऐसे लघुकथाकार भीड़ से अलग अपनी पहचान बना सकेंगे और डॉ कमल किशोर गोयनका के अनुसार - 'वास्तविक लघुकथाओं को चुनकर, शेष को भूसे के समान फटककर फेंक देना होगा। उस भूसे में वास्तविक लघुकथाएं भी तो नहीं फेंक दी गई हैं, गेहूं में लगे घुन की तरह, इसे देखना परखना लघु पत्रिकाओं का काम होना चाहिए। हमारे इस दस या बीस नक्षत्र सही हो या गलत, कम से कम प्रस्तुत करने वाले निर्णायकों की यह कैसी पसंद रही है, यह तो जगजाहिर हो ही जाती है न?

कुछ ऐसा ही जोखिम भरा काम करने का मन बना लिया है मैंने, इसे आप सही समझे या गलत। अरे भाई इतने सारे गलत काम हो रहे हैं। सोर्स, पैरवी के आधार पर अखबार का न्यूज़ और चुटकुले लघुकथा के नाम पर धड़ल्ले से छपवा रहे हैं कई लोग। दो चार लघुकथा लिखकर लघुकथा का मसीहा कहलाने के चक्कर में अपना सारा श्रम, अपनी सारी ऊर्जा राजधानी दिल्ली की सड़कों और वरिष्ठ संपादकों के कक्षों में गवाँ रहे हैं, हमारे टूट रहे साहित्य आकाश के नक्षत्र।

बड़े-बड़े पुरस्कार हथियाने के चक्कर में, ऐसे रचनाकार, पुरस्कार राशि में मिलने वाले काले धन से ज्यादा धन गवाँ रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में 21वीं सदी के अवसर पर, अपनी पसंद की दस - बीस रचनाकारों का जिक्र करने की जोखिम उठा रहा हूं, तो इसमें बुराई क्या है? अभी अभी हाल में ही तो हरियाणा की एक संस्था ने देशभर के एक सौ हिंदी श्रेष्ठ लघुकथाकारों का नाम फेसबुक के पटल पर रखा था। मनमौजी, जिसका कोई आधार नहीं। अपने मित्रों को समेटने का घिनौना प्रयास। ऐसे शोध कामों के लिए कम से कम सर्वेक्षण तो करना ही चाहिए था न? आप किसी को पुरस्कार दे रहे हैं,

किसी को सम्मान दे रहे हैं, किसी को श्रेष्ठता की पदवी दे रहे हैं तो आखिर उसका कोई न कोई आधार तो होना ही चाहिए न?

21वीं सदी के 21 श्रेष्ठ लघुकथाकारों के नामों के चयन की जब बात हमारे सामने आई, तब मैंने देश भर के चुने हुए पाठकों और रचनाकारों के बीच प्रपत्र प्रेषित किया, और लिखित रूप से यह जानने की कोशिश किया कि उनकी नजर में 21 श्रेष्ठ लघुकथाकार कौन हैं? उनके द्वारा सुझाए गए नामों में जो बहुमत के आधार पर हमारे सामने अंतिम सूची आई, उन्हें हमने साहित्य के नक्षत्र में 21वीं सदी के 21 श्रेष्ठ लघुकथाकार के रूप में घोषित किया। उन 21 लघुकथाकारों की दो - दो लघुकथाएं हमने इस ऐतिहासिक लघुकथा संकलन में शामिल किया है। और अन्य चुने हुए कुछ प्राप्त लघुकथाकारों की लघुकथाएं भी। बिना किसी भेदभाव बिना किसी खेमे के।

लघुकथाकारों को हम कोई डिजिटल सम्मान पत्र नहीं बांट रहे, ना सम्मान राशि। पाठकों के बीच सिर्फ उनकी एक अलग पहचान बनाने की कोशिश करवा रहे हैं। इससे कम से कम इतना लाभ तो अवश्य होगा कि 21वीं शताब्दी की लघुकथाओं के पर जब भी काम होगा, इन लघुकथाकारों की श्रेष्ठ लघुकथाओं को उपेक्षित करना उनकी भूल समझी जाएगी तथा मेरे द्वारा बनायी गयी इस सूची में जो श्रेष्ठ लघुकथाकार शामिल नहीं हो सके हैं, वे अन्य समीक्षकों द्वारा बनाए जा रहे श्रेष्ठ लघुकथाकारों की सूची में शामिल हो जाएंगे। क्योंकि साहित्य और कला ही एक ऐसा क्षेत्र है जहां लिया गया निर्णय ऐतिहासिक तो हो सकता है, किंतु अंतिम नहीं।

21वीं शताब्दी के लघुकथाओं के पर मैंने इन दिनों गंभीरता से काम किया है। इसलिए 21वीं शताब्दी की लघुकथाओं के 21 नक्षत्र का जिक्र करते हुए, इस लेख का अंत कर रहा हूं । आप हमें बताएं जरूर कि ये 21 नक्षत्र लघुकथा आकाश का जगमग सितारा है या नहीं? (यह निर्णय हमारा व्यक्तिगत निर्णय नहीं बल्कि एक बड़े समूह द्वारा लिए गए सर्वेक्षण के आधार पर है! जिसमें 25 रचनाकार एवं 25 गंभीर पाठक शामिल हैं।) इस सर्वेक्षण में अधिकांश लोगों ने जिन 21लघुकथाकारों को श्रेष्ठ बतलाया, वे 21 नक्षत्र है – सर्वश्री डॉ कमल चोपड़ा /डॉ सतीशराज पुष्करणा/ सतीश राठी / चित्रा मुद्गल / बलराम अग्रवाल/ सिद्धेश्वर/ रामयतन यादव/ भगवती प्रसाद द्विवेदी/रामनिवास मानव/ शंकर पुणतांबेकर/ रामकुमार घोटड़/महास्वेता चतुर्वेदी/ डॉ योगेंद्रनाथ शुक्ल/ कान्ता रॉय/मधुकांत/डॉ सूर्यकांत नागर/योगराज प्रभाकर/ अशोक जैन/ज्ञानदेव मुकेश/ डॉ सतीश दुबे।

पाठकों और रचनाकारों की मिली-जुली प्रतिक्रिया के आधार पर, 21वीं शताब्दी के 21 लघुकथा नक्षत्र को सूचीबद्ध किया गया है। यह कोई अंतिम सूची (निर्णय) नहीं है। पाठकों के विचार समय-समय पर बदलते रहे हैं, और यह अंततः लघुकथाकारों की श्रेष्ठ सृजन पर ही निर्भर करता है। क्योंकि इन नामों के अतिरिक्त भी लघुकथा रूपी आकाश में ढेर सारे ऐसे नक्षत्र हैं, जिनके लेखन की रोशनी इन 21 नक्षत्रों से अधिक भी हो सकती है किंतु वे हमारी (पाठकों) की आंखों से अभी दूर है! कल वे नजदीक भी आ सकते हैं। ऐसे सैकड़ों नक्षत्रों में जिनकी लघुकथा की चमक 20 वीं एवं 21वीं शताब्दी की पत्र-पत्रिकाओं को रौशन करती रही है। उन प्रतिनिधि लघुकथाकारों में सर्वश्री रूप देवगुण, कांता राय, पूरन सिंह, डॉ उपेंद्र प्रसाद राय, भगवती प्रसाद द्विवेदी,चेतन आर्य, डॉ पुष्पा जमुआर, पूनम आनंद, ऋचा वर्मा, विजयानंद विजय, राज प्रिया रानी, पारस दासोत किशोर काबरा, मिथिलेश कुमारी मिश्रा, विक्रम सोनी,पवन शर्मा, कमल पुजाणी, अशोक जैन, बलराम, अशोक अंजुम, योगराज प्रभाकर, विभा रानी श्रीवास्तव, ध्रुव कुमार, बीएल आच्छा,रामेश्वर कांबोज हिमांशु, मार्टिन जॉन, डॉ नरेंद्र नाथ लाहा, प्रताप सिंह सोढ़ी, ज्योति जैन,कुंवर प्रेमील, जैमिनी, मोहम्मद नूरुद्दीन अतहर, राजकुमार निजात, शकुंतला किरण, कृष्णानंद क्रिश्चियन, सुभाष नीरव, मधुकांत, नंदन हितेषी, श्याम सुंदर अग्रवाल, संतोष

श्रीवास्तव, वीरेंद्र कुमार भारद्वाज, चंद्र भूषण सिंह चंद्र,सुरेश शर्मा, चेतन त्रिवेदी श्याम कुमार दीप्ति, कमलेश भारतीय, भगीरथ, उर्मिला कौर, इंदिरा खुराना, राजेंद्र परदेसी, सुरेश उजाला, आनंद बिल्थरे, श्याम सखा श्याम, प्रभात दुबे, कालीचरण प्रेमी, अशोक आनन, डॉ भारती,कुलदीप जैन, पूनम कतरियार, उबालकर, ऋषिकेश पाठक अशोक भाटिया, नरेंद्र कौर छाबड़ा, रशिद गौरी, सपना चंद्रा, मधुरेश नारायण, गीता गीत, नीलम सिंह, रमेश मनोहर, अश्वनी कुमार, डॉ शिवनारायण, रूबी भूषण, आलोक, मृदुला, अमरनाथ चौधरी अब्ज, अशोक मिश्र, शराफत अली खान, अमरीक सिंह दीपानीता रश्मि, दिनेश पाठक शशि, देवांशु पाल, धर्मपाल साहिल, जया रावत, जया नरगिस, किशोर श्रीवास्तव, महावीर रांवलता, डॉ नवनीत निरुपमा कपूर पवित्रा अग्रवाल,पूर्णिमा, उषा अग्रवाल,पारस उड़वे, उर्मि कृष्ण, उषा महाजन आदि।

इसमें दो मत नहीं कि समकालीन संदर्भ में आदमी के जिंदा रहने की आवश्यक शर्तों वाली जरूरतों की सूची में साहित्य के स्थान और इसकी उपयोगिता पर लगे प्रश्न चिह्नों का सटीक, समर्थ और विराट उत्तर है 20वीं और 21वीं सदी की लघुकथाएं। मैं यदि लघुकथा को परिभाषित करना चाहूं तो तब कहूंगा कि –' लघुकथा जीवन के किसी खास पहलू विशेष की सार्थक व्याख्या करने वाला संक्षिप्त किंतु पूर्ण कथ्य है, जिसका कद नाटा लेकिन उम्र लंबी होती है अर्थात गागर में सागर वाली कहावत को पूरी तरह चरितार्थ करती हुई प्रतीत होती है!'

लघुकथा के प्रति सोचने विचारने और कुछ नया करने की जरूरत अब और अधिक है, क्योंकि लघुकथा साहित्य की सर्वाधिक पठनीय विधा है, जिसके संबंध में कुलदीप जैन ने कहा कि है कि –' लघुकथा क्षणिक आवेश एवं भावावेग की चुस्त-दुरूस्त एक ऐसी लघु आकारी कथा सृजन है, जो समाज में व्याप्त विसंगतियों की ओर न सिर्फ ध्यान आकर्षित कराती है बल्कि पाठक के मन मस्तिष्क में उसके समाधान हेतु एक छटपटाहट उत्पन्न कर देती है।' निश्चित ही लघुकथा 21वीं शताब्दी की महानतम उपलब्धि है।

पताः 'सिद्धेश सदन', (किड्स कार्मल स्कूल के बाएं) / द्वारिकापुरी रोड नंबरः. 2, पोस्टः बीएचसी, हनुमाननगर, कंकड़बाग, पटना 800026 (बिहार) **ईमेलः** sldheshwarpoet.art@gmail.com **मो. नं. :** 92347 60365

लघुकथा विषयक बढ़ती सर्जनात्मकता: घटती पठनीयता

डॉ. पुरुषोत्तम दूबे

लघुकथा के उत्पतिकाल से आज तक यदि लघुकथा लेखन के संदर्भ में आनुपातिक ढंग से विचार करें तो यह निष्कर्ष बनता है कि इक्कीसवीं सदी के इन दो दशक में जितनी लघुकथाएँ लिखी गई हैं, उतनी लघुकथाएँ बीसवीं सदी के आरंभ से लेकर पर्यवसान काल की सीमा में लिखी हुई नहीं मिलती हैं। आज के दौर में इन बीस-बाईस वर्षों में लघुकथा लेखन विषयक सर्जनात्मकता चरम पर आ पहुँची है। लघुकथा लेखन में आई यही 'अति' लघु कथा-विधा को लेकर सोचने वाले दृष्टिसम्पन्न आलोचकों में घबराहट पैदा कर रही हैं कि लघुकथा-लेखन का निरन्तर बढ़ता 'ग्राफ' कहीं विधा को ही निगल न जाए?

साहित्य की हर विधा में कलम चलाने वाले रचनाकार भी लगने लगा है कि लेखन सन्दर्भित अपनी-अपनी पसंदीदा विधा से 'यूटर्न' लेकर लघुकथा लेखन में दृढ इच्छा शक्ति के साथ सम्मिलित हो रहे हैं। फलतः लघुकथा की सर्जनात्मकता का 'रकबा' और और बढ़ने लगा है। प्रतिक्रिया स्वरूप बरबस ही यह बात लिखने में आ रही है कि लघुकथा की सर्जनावस्था के संक्रमण काल में लघुकथा लेखन का मुहूर्त जगाने वाले जिन मुट्ठी भर लघु कथाकारों ने प्राण-प्रण से जुड़कर लघुकथा विधा का ऐतिहासिक बीजारोपण इस शाश्वत सोच के साथ किया था कि संभवतः भविष्य के सघन भौतिक सन्त्रासों से घिरे पाठकों की जीवनगत विसंगतियों का परिशोधन करने में लघुकथाएँ 'रामबाण' सिद्ध होंगी। मगर अतीत के उन दृष्टिसंपन्न लघुकथाकारों की अन्वेषी सोच इस अर्थ में कारगर सिद्ध न हो सकीं कि उन 'नामचीन' लघु कथाकारों के बाद शनैः शनैः जो भी रचनाकार लघुकथा लेखन का तमगा प्राप्त करने में लघुवर्ष लेखन के कार्य से जुड़े या जुड़ते रहे - उन्होंने विधा की गहराई और अर्थ वर्षा को नहीं समझकर बरअक्स इसके बतौर फैशन लघुकथा लिखना अपना शगल बनाया।

किसी भी विधा में लेखन कार्य सम्पादित करने के पीछे उस विधा पर मौजूद सामग्री का ठोस अध्ययन करना परम आवश्यक है। अध्ययन ज्ञात कराता है कि विधा कैसे बनीं? उसमें समाहित तत्वों का समावेशीकरण कैसे हुआ? उसमें अन्तर्वस्तु की स्थापना किस आधार से हुई? उसमें भाषा विषयक अनुशासन को लेकर किस बात पर विचार किया गया? आदि बहुतेरी बातें हैं, जिसके परिप्रेक्ष्य में अंतर्प्रवेश कर कोई रचनाकार एक पुष्ट रचना दे सकने में समर्थ सिद्ध हो सकता है। बिन गुरू ज्ञान कहाँ से आए, ऐसे शास्त्रीय विचार का परिपालन करते हुए कोई रचनाकार सर्जनात्मक कार्य में उतरता है, तो उसके पास विधा विषयक ठोस अध्ययन की पूंजी होनी चाहिये। महज चिन्दी पाकर कपड़ों का कारोबार नहीं चलाया जा सकता?

लेकिन लघुकथा लेखन का व्यापार चल पड़ा है। लघुकथा पर सग्रहों की आमद 'बागों में बहार' की तरह आई हुई हैं। चर्चा यह कि जिसका लघुकथा संग्रह नहीं गोया वह लघुकथाकार नहीं। अब लघुकथाकार कहलाने के लिए उसके नाम से संग्रह/संग्रहों का आना जरूरी हो गया। लघुकथाएँ कैसी हैं? यह सवाल बेमानी हो चला है। कैसी भी लघुकथाएँ हों, उनका संग्रह होना आवष्यक है।

एक उलटबाँसी और चल पड़ी है। आजकल पाठक के पास समय नहीं है। अतएव कम समय में ही लघुकथा पढ़ना पाठकों को रास आ रहा है। लेकिन कितने लघुकथाकार

ऐसे हैं जो 'कम समय के पाठक बनकर' कम समय घेरने वाली अन्यान्य लघुकथाकारों की लघुकथाएँ पढ़कर स्वयं को लघुकथा की सर्जना हेतु सचेत बना रहे हैं। आप खुद लघुकथाएँ नहीं पढ़ रहे हैं और अपनी लिखी लघुकथाओं के लिए पाठकों की तलाश कर रहे हैं। अतएव लघुकथा लेखन में वरीयता लाने में लघुकथाकार बनने से पहले आप के लिए लघुकथाओं का पढ़ना, लघुकथाओं की आलोचनाओं कें शब्दों को संज्ञान में लेना महत्वपूर्ण है। कतिपय निम्न बिन्दुओं को अमल में लाकर कोई लघुकथाकार लघुकथा विधा का भला और खुदको श्रेष्ठ लघुकथाकार होने के आधार पा सकता है-

लघुकथाओं की रचनात्मकता सन्दर्भित लिखे गए आलेखों की पड़ताल का कार्य करते हुए प्राप्य आलेखों को तल्लीन होकर पढ़ें।

● लघुकथाओं की समीक्षा विषयक सामग्री को जितना अधिक पढ़ा जाएगा, उतना प्रांजल रूप लघुकथा लेखन के तारतम्य में हासिल होगा।

● लघुकथा साहित्य से इतर अन्यान्य विधाओं में लिखित साहित्य को अवश्य पढ़िए जिससे भाषा के सर्जनात्मक सौष्ठव का पता चल सके। भाषा का अच्छा ज्ञान ही लघुकथाओं में प्रयुक्त होने जा रही अन्तर्वस्तु का वांछित और उपयोगी दोहन करने में सहायक सिद्ध बन जायेगा।

● किसी भी लघु कथा में विषयवस्तु सम्बन्धित यथार्थ का अभिलेखन समृद्ध भाषा ज्ञान के अभाव में सम्भव नहीं है। भाषा का परिपक्व ज्ञान लघुकथाओं में यथार्थ की जमीन तोड़ सकता है।

● लघुकथा का आकार-प्रकार बहुत कुछ भाषा विषयक यथेष्ठ जानकारी से ही तय होता है।

● विराम चिह्नों को लगाकर लघुकथाओं को संयत, पठनीय और सहृदय पाठकों के बीच तादात्म्य का आधार बनाया जा सकता है।

● मस्तिष्क में सर्जना विषयक तात्कालिक रूप में आए विचार को एकदम से लेखन का माध्यम न बनाकर आयातित विचार को अपने चिन्तन की भट्टी में तपने दें। इस प्रक्रिया में एक अवस्था ऐसी होगी जो भीतर से आपको लेखन के लिए अनुप्रेरित करेंगी। तब ऐसी दशा में आप उत्कृष्ट एवं सहृदय सामाजिकों द्वारा अच्छी लघुकथाओं के लघुकथाकार होने का 'तमगा' प्राप्त कर सकेंगे।

● किसी भी लघुकथाकार का संग्रह यदि आपके पास है तो उस संग्रह में प्रकाशित लघुकथाकार का प्राक्कथन, संग्रह पर लिखीं किसी की भूमिका एवं संग्रह में उपस्थित लघुकथाओं की अनुक्रमणिका को अवश्य पढ़िए। प्रायः संग्रह में लघुकथाकार का आत्मकथन उसकी लघुकथा लेखन विषयक की गई तैयारियों, प्रेरित होने के आधारों और निजी अनुभवों का ब्यौरा लघुकथा लेखन की दिशा में आपका मार्ग प्रशस्त करता मिलेगा। इसी तारतम्य में संग्रह में उपस्थित भूमिका को पढ़ने से लघुकथा बाबत दशा, दिशा और सम्भावनाओं के द्वार आपके मस्तिष्क में खुलते मिलेंगे। संग्रह में लघुकथाओं की अनुक्रमणिका को जोर देकर पढ़िए ताकि आप सावधानीपूर्वक अपनी लघुकथाओं पर यथोचित शीर्षक के मढ़ने के लिए तैयार मिलें। लघुकथा पर चढ़ाए गए शीर्षक ऐसी कुँजी होते हैं जो लघुकथाओं के भीतरी खजाने का पता देते हैं, जो लघुकथा की विषयवस्तु, शिल्प सौंदर्य, समसामयिक होने की पुष्टि आदि का प्राथमिक ज्ञान कराते हैं।

कई बार हैरत अंगेज कर देने वाला ऐसा सच भी पाया गया है कि लघुकथाकार अपनी ही लिखी लघुकथा को पढ़ता नहीं है। अपनी लिखी लघुकथा की रचना की श्रेष्ठता के प्रति उसका अंधविश्वास उसकी सर्जनात्मक शक्ति का एक तरह से देखा जाए तो छलावा ही है। अपनी लघुकथा को बार-बार पढ़िए, उसको शल्य की कलम थामकर पढ़िए। यदि लगे कि अभी लघुकथा सर्जन की दृष्टि से कच्ची है तो उसको अन्तिम रूप देने से पूर्व उसके साथ क्रूर व्यवहार करते हुए या तो उस अपरिपक्व लघुकथा को पटल पर मत लाइए या उसको प्रोन्नत बनाने में मानसिक व्यायाम कीजिए।

कुआँ है, तो कुएँ के साथ प्यास का रिश्ता भी जुड़ा है और थोड़ी भी असावधानी से उसमें गिर जाने का हठात् भय भी। यही दो तरफा सोच आपके पास लघुकथा लिखने के दरम्यान होनी चाहिए। सर्जना विषयक एक सघन प्यास आपकी लघुकथा को श्रेष्ठ लघुकथा बना देगीं बरअक्स इसके लघुकथा बाबत संरचनात्मकता के औचित्य का अनिर्धारण आपको और आपकी लघुकथा को लघुकथा समय से बहुत पीछे धकेल देगी।

संपर्क : 'शशीपुष्प' 74 जे/ए स्कीम नं. 71, इन्दौर (म. प्र.) मोबाइलः 9329581414

लघुकथा साहित्य में फैलता प्रदूषण

डॉ. रामकुमार घोटड़

अगर हिन्दी लघुकथा की गहराई से हम पड़ताल करें तो पायेंगे कि लघुकथा विधा, साहित्य की अन्य विधाओं के साथ लेखन में आने लगी थी। लेकिन आधुनिक हिंदी लघुकथा की बात करें तो लघुकथा उद्‌भव को पाँच दशक पूर्ण हो गये। शुरुआती दौर में लघुकथा पुरोधाओं ने इसे बहुत ही मनोयोग से सहेजा, तराशा और एक शुद्ध रूप में 'लघुकथा' शीर्षक देकर साहित्यिक विधाओं में सम्मिलित करवाया और फिर इस लघुकथा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा, बिना ठहराव लिए उत्तरोतर बढ़ती ही चली गई और परिणामतः आज किसी भी साहित्यिक विधा से कम नहीं है। इसे ऊँचाइयों तक पहुँचाने में उन लघुकथा मनीषियों का योगदान श्रमसाध्य रहा है। लेकिन जब हम वर्तमान लघुकथा साहित्य से गुजर कर देखे तो लघुकथा ने एक विधा का रूप तो ले लिया है, परन्तु लघुकथा लेखन, लघुकथा विधा के साथ न्याय करता प्रतीत नहीं हो रहा है। एक अजीबो-गरीब आपाधापी वाला-सा माहौल बनता जा रहा। लगता है लघुकथा विधा में शुद्धता नहीं आ पा रही, एक प्रदूषण-सा फैलता जा रहा है। निर्मल जल पर काई फैलती जा रही है यह काई न तो जल के भले के लिए है और न ही तट पर बैठे प्यासे जीव के हित में है।

लघुकथा विधा को वर्तमान माहौल में धकेलने के लिए हम स्वयं लघुकथाकार ही जिम्मेदार हैं। हम सभी देख रहे हैं कि लघुकथाकारों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, यह तो शुभ है कि लघुकथा के हितैषी बढ़े हैं लेकिन समर्पण भाव से साधक के रूप में कितने है, शेष में से कितने हैं, जो लघुकथा विधा के हित में कार्य कर रहे हैं और ऐसे कितने लघुकथाकार हैं जो लघुकथा की आड़ में स्वयं के हित में कार्य कर रहे हैं।

लघुकथाकारों और लघुकथाओं की उत्तरोतर बढ़ती संख्या–आठवें दशक में जब आधुनिक लघुकथा का प्रादुर्भाव हुआ तब लघुकथा रचनाकारों की संख्या अँगुलियों पर गिनती भर थी और वे एक-दूसरे से अपने लघुकथा लेखन के उद्देश्य पर गम्भीरता से विचार-विमर्श करते थे। अपने निकट दोस्ताना सम्बन्धों से परे लघुकथा सिर्फ लघुकथा की स्तरीयता को तहजीब देते थे। ज्यों-ज्यों लघुकथा प्रचार-प्रसार में सामने आई तब लघुकथाकारों की संख्या में इजाफा होना स्वाभाविक ही था। उस समय लघुकथा लेखन वही रचनाकार करता जिसे अपने पर भरोसा था कि वो एक अच्छी लघुकथा लिख पायेगा फिर वह लघुकथा लेखन की आजमाइश करता और बतौर एक पाठक अपनी रचना को पढ़कर आलोचनात्मक दृष्टि से गहन मंथन करता। अगर उसे पुनः विश्वास हो जाता कि मेरी रचना लघुकथा विधा में रखने लायक है तभी वह लघुकथा को बाहर आने देता अन्यथा स्वयं की समीक्षीय कसौटी पर खरा न उतरने पर वह सदा-सदा के लिए लघुकथा लेखन से हटकर अपनी मूल साहित्यिक विधा में लौट जाता। यानी कि वह स्वयं व लघुकथा विधा को वैचारिक प्रदूषण से अलग कर लेता।

निश्चित तौर से बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में साहित्यकारों की संख्या में भी बढ़ोतरी होगी लेकिन यह आनुपातिक बढ़ोतरी इस इक्कीसवीं शताब्दी के शुरुआत से अच्छीखासी बढ़ी है और वर्ष, प्रतिवर्ष उत्तरोतर वह संख्या बढ़ती ही जा रही है बेहिसाब, बेलगाम घुड़दौड़ की तरह।

यह सनातन सत्य है कि जहाँ मात्रा अधिक होगी, भाव (मूल्य) गिरेंगे ही। यही लघुकथा के साथ वर्तमान में हो रहा है। मात्रा, मात्रा ही दिख रही, भाव नहीं। लघुकथाकारों के साथ लघुकथाओं की संख्या भी बढना स्वाभाविक है। इतनी अधिक संख्या में रचित लघुकथाओं को पढ़ पाना भी मुश्किल हो रहा तो स्तरीयता का मूल्यांकन कैसे हो पायेगा? यह भी समस्या सम्पादकों एवं समीक्षकों के सामने आ रही है।

रचनाकारों ने लघुकथा लेखन को लेखक के जरिये स्वयं को आगे लाने को एक 'शॉर्टकट' रास्ता अपनाने की तरह लिया है, लघुकथा विधा को आगे लाने के लिए नहीं। यहाँ उनका उद्देश्य लघुकथा विधा के प्रति गौण हो जाता है, कुछ यह भी सामने आया है। बीसवीं शताब्दी की अपेक्षा समाज में नारीशिक्षा का बढ़ावा हुआ है। एक शिक्षित महिला अपने पारिवारिक कार्यों से समय मिलने पर कुछ-न-कुछ पढना पसन्द करती है और इस पठनीयता की मानसिकता से उनमें एक लेखन की सोच पनपी। जितना समय वो पारिवारिक व्यस्तताओं से निकाल पाती है उतने समय में लघुकथा लेखन के अलावा अन्य विधा में लेखन करना उनकी हिम्मत व ऊर्जा से परे है। शिक्षित महिला होने के कारण उनकी रुचि लघुकथा लिखना व पत्र-पत्रिकाओं की सदस्या बनने की ओर बढ़ी है और फिर पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक भी उनकी तरफ सहृदयता दिखाते हुए उनकी रचनाओं को अपनी पत्र-पत्रिकाओं में स्थान देते हैं जिससे वे पारिवारिक जीव के साथ-साथ एक साहित्यिक जीव की श्रेणी में अपने आपको मानने लगती है और लेखन की स्तरीयता को नजरअन्दाज कर कुछ न कुछ लिखना व कहीं न कहीं प्रकाशित होने की जुगाड़ बनाये रखने के मोहजाल में चली जाती हैं। ऐसी बढ़ती उनकी प्रवृत्ति के चक्रव्यूह में लघुकथा भी फँस गयी।

यह देखने में आया है कि नवोदित लघुकथाकार स्वयं की लघुकथा तो दूसरों को पढ़ाना चाहता है, वाही-वाही चाहता है, पर खुद अन्यों की लघुकथाएँ पढ़ने की इतनी रुचि नहीं दिखा रहा है। ऐसे लघुकथाकारों ने जिन्होंने कभी लघुकथा का सौन्दर्यशास्त्र व वरिष्ठ लघुकथाकारों के लघुकथा साहित्य को पढ़ा भी नहीं और स्वयं ही अपनी मर्जी से बेतुकी, लघुकथा के मापदण्डों से हटकर लघुकथाएँ लिखते हुए तीसमार खाँ बनने की मानसिकता पाल रखी है जो लघुकथा विधा के हित में नहीं।

इन्टरनेट मीडिया का दुरुपयोग–वास्तव में देखा जाये तो इन्टरनेट मीडिया का सही उपयोग नहीं हो पा रहा। इस समय लघुकथाकारों में एक और मानसिकता पनप रही है। किसी रचनाकार ने कोई साहित्यिक रचना की तो आप मानिये वह कहीं-न-कहीं कभी तो प्रकाशित होगी ही और प्रकाशित होना कोई बड़ी बात भी नहीं। लेकिन रचना प्रकाशन के बाद फेसबुक, व्हाट्सऐप आदि पर डालकर न जाने लघुकथाकार क्या चाहता है? अगर कोई पाठक इस लघुकथा को पढ़कर समीक्षात्मक टिप्पणी इन्टरनेट मीडिया पर देता है तो लघुकथा की महत्ता का आकलन होता। लेकिन जब स्वयं लघुकथाकार ऐसा कर रहा है तो ऐसा लगता है कि लघुकथा नहीं लघुकथाकार सामने आ रहा है जो न लघुकथा के लिए शुभ है और न ही लघुकथाकार के लिए। यानी लघुकथा को गौण किया जा रहा है।

इन्टरनेट मीडिया पर एक प्रचलन बन गया कि व्हाटसऐप/फेसबुक ग्रूप के साथी प्रकाशित लघुकथा विषयक सामग्री पर वाहवाही देना चाहता है उसकी कमजोरियाँ या औचित्य बताने में अपने विचार प्रकट नहीं कर रहा है और यह तो हम सभी जानते हैं कि सभी लघुकथाएँ वाहवाही के लायक नहीं हुआ करती। यानी

साथियों द्वारा उस लघुकथाकार को गुमराह किया जाना, उसके मनोबल बढ़ाये जाने की कामनाओं के साथ अनजानेपन में उसकी रचनाधर्मिता की हत्या करने का षड़यंत्र जैसा है।

यह भी देखने में आया है कि अगर कोई वरिष्ठ लघुकथाकार किसी नवोदित लघुकथाकार को मीडिया के माध्यम से उसकी लघुकथा में कुछ विसंगतियाँ, कमियाँ बताकर उसे संशोधन हेतु मार्गदर्शित करता है तो वह नवोदित नाराजगी भरे शब्दों में कटाक्ष करता है, वह ही नहीं दो चार उसके समूह के साथी भी उस लघुकथा को सही ठहराने का तर्क देते हुए उस वरिष्ठ लघुकथाकार को अप्रत्यक्ष रूप से लज्जित करने जैसा माहौल पैदा कर देते हैं।

इस संक्रमित समय में दो प्रकार की लघुकथाएँ सामने आ रही है-(1) लघुकथा साहित्य की लघुकथाएँ, ये लघुकथा विधा की धरोहर हैं, उन्हें पढ़ा जाता है और पढ़ा जाता रहेगा। (2) फेसबुकिया लघुकथाएँ जो पढ़ी तो जाती हैं पर 'डिलीट' कर दी जाती हैं। भविष्य में उन्हें पढ़ पाना तो दूर उन्हें ढूँढ पाना भी मुश्किल हो जाता है। जहाँ तक मैं सोचता हूँ, इस फेसबुकिया साहित्य ने साहित्यिक विधाओं की गरिमा को ठेस पहुँचाया है।

पुस्तक प्रकाशन की भूमिका–वर्तमान में पुस्तक प्रकाशन व्यवसाय भी एक अनवरत गति से पनप रहा है जिन्हें संशोधन, सम्पादन, प्रकाशन जैसी जानकारी नहीं, ऐसे प्रकाशक, बाजार में बहुत आ गये। उन्हें पुस्तकीय सामग्री से कोई लेना-देना नहीं। वे तो एक अच्छी-खासी मोटी रकम लेकर लेखक को पुस्तक की प्रतियाँ सौंप देते हैं और लेखक यह भी जानता है कि पुस्तक की मार्केट में बिक्री नहीं हो पायेगी, फिर भी अंधाधुंध, धड़ाधड़ पुस्तक प्रकाशन हो रहा है जिसमें विधा की स्तरीयता, गुणवत्ता व साहित्यिक साख गिरी है।

पिछले वर्ष 2019 में ही लघुकथा विमर्श, लघुकथा विधा पर समालोचना विषयक दर्जनभर पुस्तकें प्रकाशित होकर आई हैं जो पुस्तकीय शीर्षक की गरिमा के अनुरूप सामग्री दे पाने में सफल नहीं रही।

सहयोगी आधार पर भागीदारी-सहयोगी आधार पर पुस्तक प्रकाशन हो या आयोजित गोष्ठियों में वितरित सम्मान एवं पुरस्कार, इनकी स्तरीयता में पारदर्शिता का अभाव खटकता है जिससे लेखन पर काले बादल मण्डराने जैसा माहौल पनपने लगता है।

खेमेबाजी एवं मठाधीशीय परम्परा–इन वर्षों में यह देखने में आ रहा है कि लघुकथाकारों की खेमेबाजी बढ़ी है जो अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग अलापने में मस्त एवं संतुष्ट है और अनजानेपन में अपनी प्रतिभा का अवमूल्यन कर रहे हैं तथा मठाधीश बन अपने समूह के चेले-चपाटियों द्वारा अपना ही महिमा मण्डन करवाने की मानसिकता पाले एक सीमित दायरे में कूपमण्डुक जैसी सोच लिए लघुकथाकारों के सामने लघुकथा गौण हो जाती है, पिछड़ जाती है।

हम लघुकथाकार ही लघुकथा साहित्य में संक्रमण फैला रहे हैं। अगर लघुकथाकारों ने अपनी मानसिकता में बदलाव न लाकर, सामान्य विवेक से काम नहीं लिया तो लघुकथा विधा एक दोराहे स्थान पर फिसलती चली जायेगी कि उसे वापस उसी स्थान पर लाने के लिए बहुत मशक्कत करनी पड़ेगी।

संपर्क : निराला अस्पताल, सादुलपुर (चूरू), राजस्थान-331023
मो.-9414086800, ई-मेलः rakug@gmail.com

लघुकथा: अर्थ और अवधारणा

डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा

लघुकथा शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है, लघु और कथा। अर्थात लघुकथा गद्य की एक ऐसी विधा है जो आकार में लघु है और उसमें कथा का तत्व विद्यमान है। लघुकथा की मूल पहचान ही इसकी लघुता है।

लघुकथा भारतीय साहित्य और उसकी परंपरा से जुड़ी है। इसके विकास में जातक कथाओं, बोध कथाओं, दृष्टांत आदि का योगदान है। लघुकथा के लिए बंग्ला में अनुगल्पों शब्द प्रचलित है।

अंग्रेजी की शॉर्ट स्टोरी से हिन्दी लघुकथा का कोई मेल नहीं है। कारण आप सब जानते हैं।

लघुकथा आकार में लघु, अर्थात संक्षिप्त होती है।यह लघुता लघुकथा की एक प्रमुख विशेषता है।

लघुकथाकार की दृष्टि अपने उद्देश्य पर टिकी होती है और वह तीव्र गति से अंत की ओर बढ़ता है।

लघुकथाकार सीधे-सीधे उपदेश तो नहीं देता पर व्यंग्य का सहारा लेकर अपनी बात को दूसरे ढंग से कहता है।

जिस प्रकार उपन्यास खुली आंखों से देखी गई घटनाओं का, परिस्थितियों का संग्रह होता है, उसी प्रकार कहानी दूरबीन दृष्टि से देखी गई किसी घटना का वर्णन होती है। लघुकथा में इसके ठीक विपरीत माइक्रोस्कोपिक दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है।इस क्रम में किसी घटना या किसी परिस्थिति के एक विशेष और महीन से विलक्षण को शिल्प तथा कथ्य के लेंसों से कई गुना बड़ा कर उभार दिया जाता है।

किसी बहुत बड़े घटनाक्रम में से किसी विशेष क्षण को चुनकर उसे हाईलाइट करने का नाम लघुकथा है।

लघुकथा विसंगतियों की कोख से उत्पन्न होती है।हर घटना या हर समाचार लघुकथा का रूप धारण नहीं कर सकता। किसी विशेष परिस्थिति या घटना को जब लेखक अपनी रचनाशीलता और कल्पना से पुनः सर्जन करता है तब एक लघुकथा तैयार होती है।

लघुकथा की संरचना संवेदनशील होती है।एक भी अतिरिक्त वाक्य या शब्द इसकी सुंदरता पर कुठाराघात कर सकता है। उसी तरह ही किसी एक किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण शब्द की कमी इसे विकलांग भी बना सकता है। अतः लघुकथा में केवल वही कहा जाता है, जितने की आवश्यक होती है। लघुकथा न तो कोई समाचार है, न ही सूचना का विस्फोट।

लघुकथा के तत्व के महत्व के संबंध में अपना विचार रखते हुए श्री सुदर्शन वशिष्ठ कहते हैं–जब हम कहानी की बात करते हैं तो दादी,नानी द्वारा सुनाई जाने वाली लोककथाओं का समरण हो आता है। लोककथा में सरल भाषा में एक कथा तत्व रहता है जो बच्चे और बूढ़े को बराबर बांधे रखता है। यही कथा तत्व कहानी में अपेक्षित है। कहानी में यदि कथा तत्व नहीं है तो वह कहनी छोड़कर कुछ भी हो सकता है-संस्मरण, रिपोर्ताज, निबंध आदि।

लघुकथा में कथानक और शैली दोनों ही बहुत महत्वपूर्ण है। लघुकथा की भाषा जितनी सरल और सौम्य होगी, शब्दों का चुनाव जितना सटीक होगा, रचना उतना ही प्रभावशाली बनेगी।

लघुकथा वर्णनात्मक, वार्तालाप शैली अथवा मिश्रित शैली में लिखी जाती है। यदि कथानक की आवश्यकता हो तो मोनोंलॉग शैली (स्वयं से बात) में भी लघुकथा कहीं जा सकती है। शीर्षक भी लघुकथा का महत्वपूर्ण अंग है अतः शीर्षक चयन करते समय सावधानी अपेक्षित है। एक लघुकथा अधिकतम 300 शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

लघुकथा में जो कहा जाता है वह तो महत्वपूर्ण होता ही है, किंतु उससे भी महत्वपूर्ण वह होता है जो नहीं कहा जाता। जो नहीं कहा गया - अर्थात वह इशारा जिसके माध्यम से एक संदेश दिया गया हो या वह बात जो छुपे ढंग या वक्रोक्ति के माध्यम से कहीं गयी हो।

लघुकथा के प्रकार -

लघुकथा की तीन प्रचलित शैलियां हैं।

1) विवरणात्मक (बिना किसी संवाद से लिखी गई लघुकथा। 2) संवादात्मक (केवल संवादों में लिखी गई लघु कथा) 3) मिश्रित (विवरण एवं संवाद युक्त लघुकथा)

लघुकथा चूंकि एक विशेष क्षण को उजागर करने वाली एकांगी रचना होती है अतः रचना में विभिन्न कालखंडों अथवा अध्यायों हेतु कोई स्थान नहीं है।

लघुकथा-दंश (रवि प्रभाकर)

"बहन! आज मुझे काम से लौटने में देर हो जायेगी, तब तक तुम मुन्नी को अपने पास ही रखना।"

उस विधवा ने हाथ जोड़ते हुए अपनी पड़ोसन से आग्रह किया।

"पर अब तो तेरा देवर भी गांव आया हुआ है,तो फिर?"

"इसलिए तो तुम्हारे पास छोड़ रही हूं।"

लघुकथा–घड़ियाल के आँसू (डॉ. पंकज साहा)

एक आदमी की पत्नी बीमार पड़ी। झाड़-फूंक करवाया, डाक्टरों से इलाज करवाया। ठीक नहीं हुई। किसी ने उसे एक महात्मा के बारे में बताया।वह महात्मा से मिलने जंगल गया।

महात्मा ने सारी बातें सुनकर कहा, एक चम्मच घड़ियाल के आँसू उसे पिला दो, ठीक हो जाएगी।

वह दिल्ली जानेवाली एक ट्रेन पर सवार होने को था, तभी उसके एक मित्र ने पूछा, घड़ियाल तो नदी में मिलेंगे। तुम दिल्ली क्यों जा रहे हो?

उसने कहा, "कल ही टी.वी. पर मैंने दिल्ली के एक नेता को घड़ियाली आंसू बहाते देखा था, उनसे आग्रह करूँगा, तो जरूर एक चम्मच आंसू दे देंगे।

लघुकथा-पत्तल

पीपल ने कहा कि उसके बर्तनों में देवों को भोग लगाया जाता है,कुलीनजनों के पास उसका स्थान है जबकि ऐल्युमिनियम के बर्तनों में झुग्गी -झोपड़ी के लोग खाते हैं और तो और इसका कटोरा भिखमंगे लेकर घूमते रहते हैं। एल्यूमिनियम अपने पक्ष में कोई विशेष दलील नहीं दे सका। चांदी महाराज ने अपने निर्णय में कहा कि पीतल भरे हुए को भरता है जबकि ऐल्युमिनियम भूखे को खिलाता है, अतः भूखे को खिलाने वाला ही सदैव श्रेष्ठ होता है।

यह निर्णय सुनकर एक कोने में पड़ी पत्तल मुस्कुरा उठी।

हिन्दी साहित्य में लघुकथा नवीनतम विधा है। इसका श्रीगणेश छत्तीसगढ़ के प्रथम पत्रकार और कथाकार माधवराव सप्रे के एक टोकरी भर मिट्टी से होता है।

हिन्दी के अन्य सभी विधाओं की तुलना में अधिक लघुआकार होने के कारण यह समकालीन पाठकों के ज्यादा करीब है।

वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य की तमाम बड़ी एवं छोटी, एवं लघु पत्रिकाओं ने लघुकथा हेतु स्थान निर्धारित किया है।

लघुकथा को लेकर पाठक और लेखक भी काफी सक्रिय हैं।इस विधा को स्थापित करने में जितना हाथ

रमेश बतरा, जगदीश कश्यप, कृष्ण कमलेश, भगीरथ, सतीश दुबे, बलराम अग्रवाल, विक्रम सोनी, सुकेश साहनी, विष्णु प्रभाकर, हरिशंकर परसाई, पंकज साहा आदि समकालीन लघुकथाकारों का रहा है, उतना ही कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, बलराम,कमल चोपड़ा,सतीशराज पुष्करणा, आदि संपादकों का भी है।

संपर्क : सहायक प्राध्यापक, अध्यक्ष, हिन्दी -विभाग
मिदनापुर कॉलेज (ऑटोनोमस), मिदनापुर 721101, पश्चिम बंगाल, मोबाइल नं -9434153501

समाज के हाशिये में वृद्ध-जीवन

श्वेता शर्मा

(विशेष संदर्भ : अंतिम अरण्य, दौड़, कंबख्त इस मोड़ पर, रेहन पर रग्घू)

वृद्धावस्था मनुष्य के जीवन का वह क्षण है जिसमें पूरा जीवन जीने,तमाम तरह के दुःख-सुख से गुजरने और विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त करने के बाद भी वह पुनः बचपन में लौट आता है ।बुढ़ापा जीवन का अंतिम पड़ाव होता है जिसमें जीवन आसक्त हो जाता है। इस अवस्था में कार्य करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। अपने भरण-पोषण के लिए उन्हें दूसरों पर निर्भर होना पड़ता है और यही निर्भरता उनके लिए समस्या का मूल कारण बन जाती है। यही वजह है कि उन्हें शारीरिक एवं आर्थिक दृष्टि से घुटन भरी ज़िन्दगी जीने को मजबूर होना पड़ता है। चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित, इस मोड़ पर उनके जीवन का पहिया कमजोर होने लगता है। व युवा वर्ग के साथ तालमेल नहीं स्थापित कर पाते, जो उनके लिए तमाम तरह की समस्याओं को ला खड़ा कर देता है। आज के समाज का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जहाँ बुजुर्ग वर्ग अपने बुढ़ापे में सामाजिक एवं आर्थिक असुरक्षा का शिकार हो रहें हैं और युवा समाज उन्हें कोई महत्व नहीं दे रहा।

आज के आधुनिक समाज में बुजुर्ग हाशिए पर जाता दिखाई पड़ रहा है। इनके हाशिए पर जाने के कारण इस विषय से संबंधित अनेक चिंतन होते दिखाई पड़ रहे हैं । रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से इस बिंदु पर पाठकों का ध्यान केंद्रित करने की भरसक कोशिश कर रहे हैं। इस विषय से संबंधित हिंदी साहित्य में अनेक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं और निरंतर प्रकशित हो रही हैं। जैसे- निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य' (2000) , ममता कालिया का 'दौड़' (2000), रमेशचंद्र शाह का 'कम्बख्त इस मोड़ पर' (2007), काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घू' (2008) इत्यादि अनेक उपन्यास प्रकशित हैं। प्रकाशित उपन्यासों से गुजरकर बुजुर्ग पीढ़ी की तमाम उलझनों, पीड़ाओं, मनोदशाओं, उनके मन में उपजते सवालों इत्यादि तमाम तरह की पहलुओं से परिचित हुआ जा सकता है।

आज का दौर वैश्वीकरण, बाजारवादी संस्कृति का है। आज का युवा वर्ग इस संस्कृति को पूरी तरह ओढ़ा हुआ है। भूमंडलीकरण, औद्योगिकीकरण, बाजारवादी संस्कृति ने पूरी तरह से युवाओं को उपभोक्ता बना दिया है। इस संस्कृति ने भारतीय जीवन मूल्यों, रिश्ते-नातों को पूरी तरह तहस-नहस कर डाला है। जिसका सबसे बड़ा उदहारण संयुक्त परिवार के विघटन और एकल परिवार के संघटन में देखा जा सकता है। संयुक्त परिवार की अवधारणा के समाप्त होने का सबसे बुरा असर वृद्ध पीढ़ी को भुगतना पर रहा है। पहले संयुक्त परिवार में लोग सपरिवार रहते थे, जहाँ बुजुर्गों का सम्मान होता था, उनके साथ समय व्यतीत किया जाता था, लोग उन्हें समझते थे, उनके अनुभव से ज्ञान प्राप्त करते थे, किंतु आज का युवा वर्ग उनके साथ समय व्यतीत करने से ज्यादा कंप्यूटर तथा आधुनिक यंत्रों के साथ समय व्यतीत करने लग गया है। जिस कारण बुजुर्ग वर्ग खुद को अकेला

महसूस करता है। आज के युवा वर्ग को उनके बुजुर्ग माता-पिता तभी तक प्रिय हैं जब तक वह उनकी संपत्ति अपने नाम न करवा लें। संपत्ति के अलावा उनका ज्ञान, तजुर्बा, अनुभव नई पीढ़ी के लिए दकियानूसी व फिजूल बात से अधिक कुछ नहीं हैं। आज के समय में यदि ध्यान दें तो वृद्ध समाज को जिस समस्या का सबसे अधिक सामना करना पड़ रहा है, वह है–दो पीढ़ियों की मानसिक टकराहट । यूं तो समाज में बुजुर्गों के आश्रय हेतु वृद्धाश्रम खोलें जा चुके हैं, पर वह आश्रम वृद्ध की मदद करने से अधिक रूचि अपने व्यवसाय को बढ़ाने में रखतें हैं।

पिछले कुछ वर्षों से वृद्ध विमर्श पर आधारित कथा-साहित्य का सृजन हो रहा है। 'दौड़' शीर्षक से ऐसा ही एक उपन्यास ममता कालिया ने रचा है। जिसका वस्तु क्षेत्र गुजरात और हिंदी प्रदेश है। 95 पृष्ठों के इस लघु उपन्यास में औद्योगिकीकरण, बाजारवादी संस्कृति ने युवा समाज को किस कदर भ्रमित कर दिया है कि वह पद की लालसा में अपने वृद्ध माता-पिता तक की परवाह नहीं करता, इसको बखूबी उद्घाटित किया गया है। माता-पिता अपने बच्चों की खुशी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं, पर वही बच्चे पैसे की लालच में अपने बुजुर्ग होते माँ-बाप को अकेला छोड़ चले जाते हैं। लेखिका अपने इस उपन्यास में इन बिन्दुओं को भली प्रकार दर्शाती हैं। स्वयं लेखिका के शब्दों में इस उपन्यास की केन्द्रीय विषय-वस्तु है–'आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय बाजार को शक्तिशाली बनाया। इसने व्यापार प्रबन्धन की शिक्षा के द्वार खोले और छात्र वर्ग को व्यापार प्रबन्धन में विशेषता हासिल करने के अवसर दिये। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोजगार के नए अवसर प्रदान किये। युवा-वर्ग ने पूरे लगन के साथ इस सिमसिम द्वार को खोला और वह इसमें प्रविष्ट हो गया। वर्तमान सदी में समस्त अन्य वाद के साथ एक नया वाद आरम्भ हो गया, बाजारवाद और उपभोक्तावाद। इसके अंतर्गत, बीसवीं सदी का सीधा-सादा खरीददार एक चतुर उपभोक्ता बन गया। जिन युवा-प्रतिभाओं ने यह कमान संभाली उन्होंने कार्यक्षेत्र में तो खूब कामयाबी पाई, पर मानवीय सम्बन्धों के समीकरण उनसे कहीं ज्यादा खिंच गये, तो कहीं ढीले पड़ गए। 'दौड़' इन प्रभावों तनावों की पहचान कराता है।'

इस उपन्यास के केंद्रीय पात्र रेखा और राकेश हैं। वे अपने दोनों पुत्रों पवन और सघन के मस्तिष्क पर सवार बाजारवाद में अपनी पहचान बनाने को लेकर परेशान हैं। पवन अपने माँ-बाप की सहमति-असहमति की परवाह न कर अपनी पसंद की लड़की स्टैला से विवाह कर लेता है तो वही उनका छोटा बेटा सॉफ्टवेयर कंपनी में नियुक्ति पाकर अपने माता-पिता को असहाय छोड़ चला जाता है।

बाजारवादी संस्कृति केवल मानवीय मस्तिष्क पर ही नहीं अपितु आज के संबंधों पर भी हावी हो चली है। रेखा जब अपने बेटे पवन से मिलने सौराष्ट्र जाती है तो पवन और स्टैला उसे खुश करने के लिए महंगे तोहफे लाते हैं तथा उसे भेंट करते हैं। रेखा द्वारा मना करने पर पवन कहता है– 'आपको पता है हमारे तीन हजार रूपए इस गिफ्ट पर खर्च हुए हैं। इतनी कीमती चीज की कोई कद्र नहीं आपको।" आज के बच्चों को अपनी माँ-बाप की पसंद से अधिक अपने पैसों से मोह है।

नौकरी व पैसे-प्राप्ति की होड़ में आज का युवा वर्ग इतना अंधा हो चला है कि वह जीते जी तो अपने बूढ़े माँ-बाप की कद्र करता नहीं उनके मरणोपरांत भी उसे उनकी कोई कद्र नहीं होती। इसी उपन्यास के एक पात्र सोनी साहब की मृत्यु हो जाती है। उनकी मृत्यु पर जब उनकी पत्नी अपने बेटे सिद्धार्थ को पिता के दाह-संस्कार के लिए बुलाती है तो वह कहता है- 'आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह-संस्कार करवाइए। मेरे लिए तेरह दिन रूकना मुश्किल है।" यह आज की पीढ़ी की संवेदनहीनता ही कही जा सकती है जो अपने बुजुर्ग माँ-बाप के अंतिम क्षणों में भी उनका साथ नहीं निभाते।

वैश्वीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति के विकास-रथ पर सवार आज का युवा वर्ग खुद को अत्याधुनिक बनाने के लिए तेजी से दौड़ते हुए किस प्रकार अपने भारतीय जीवन मूल्यों को त्यागता जा रहा है इसका

निरूपण काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' में किया है। अपने इस उपन्यास में लेखक ने बुजुर्ग माता-पिता की करुण स्थिति के साथ पूंजीवादी सोच में खुद को डुबोए हुए युवा पीढ़ी का भी चित्रण किया है। इस अत्याधुनिक समाज में मूल्यों का विघटन किस प्रकार हो रहा है इसका विशद चित्रण भी इस उपन्यास में देखा जा सकता है। वर्तमान समाज का युवा वर्ग पाश्चात्य विचारों की चकाचौंध में इस प्रकार घुल-मिल गया है कि उसे इसके अलावा अन्य कोई चीज जंचती ही नहीं। भारतीय जीवन मूल्य, मानवीयता, रिश्ते-नाते, संवेदना यह सब उसके लिए फिजूल की बात हो चली है। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास का केंद्रीय पात्र प्रो. रघुनाथ भी अपने बच्चों की इसी मानसिकता का शिकार होता है। रघुनाथ और उनकी पत्नी शीला को अपने तीनों बच्चों से हताशा ही प्राप्त होती है। प्रोफेसर रघुनाथ के बच्चे एक सफल मुकाम तक तो पहुंच जाते हैं पर एक संवेदनशील मानवीय गुण नहीं अपना पाते। उनका बड़ा बेटा संजय विदेशी कैरियर के लोभ में अपने माता-पिता की रजामंदी की परवाह न कर अपने प्रोफ़ेसर की बेटी सोनल से कोर्ट में विवाह में कर लेता है। वह विवाह में अपने माँ-बाप को न पूछ उन्हें प्रतिभोज के लिए न्योता देता है। अपने बड़े बेटे के इस बर्ताव के लिए रघुनाथ और शीला को काफी बुरा लगता है। लेखक उनके दर्द को इन वाक्यों के माध्यम से उजागर करता है- 'इस दिन के लिए उन्होंने पाल-पोस कर बड़ा किया था; पढ़ाया लिखाया था, पेट काटे थे, कर्ज लिए थे, खेत रेहन पर रखे थे और दुनिया भर की तावालातें सही थीं।'

'रेहन पर रग्घू' में प्रो. रघुनाथ का छोटा बेटा धनंजय उनकी भावनाओं को तार-तार करने से पीछे नहीं हटता। धनंजय पूंजी की चकाचौंध में जीने वाला व्यक्ति है। वह अपने माँ-बाप से छुपा कर पैसों की लालच में एक विधवा स्त्री के साथ रहने लगता है जिसका पहले से ही दो साल का एक बच्चा था। उनके बच्चों के लिए उनके देखे गए सारे सपने धरे के धरे रह जाते हैं। इतनी परेशानियां उनके लिए कम न होगी कि उसपर से गावं में भाई भतीजे उनकी जमीन को हथियाने के लिए दुशमन बन बैठे। रघुनाथ के एकाकीपन और बेबसी को उनके इस कथन के माध्यम से समझा जा सकता है- 'शीला हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों, कभी-कभी- मेरे भीतर हूक उठती है जैसे लगता है' मेरी औरत बाँझ है और मैं निःसंतान पिता हूँ ! माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने ! हमने न बेटे की शादी देखी, न बेटी की! न बहु देखी, न होने वाला दामाद देखा। हम ऐसे अभागे माँ-बाप हैं जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सूचना नहीं देता और बेटी धौंस देती है कि इजाजत नहीं दोगे तो न्योता नहीं दूंगी।'

इस उपन्यास में केवल रघुनाथ ही नहीं बल्कि अन्य कई ऐसे पात्रों का भी जिक्र किया गया है जो नौकरी से सेवानिवृत्ति हो उम्र के ऐसे पड़ाव पर पहुँच चुके हैं जहाँ उनके द्वारा देखे गए सपने कि अपने बच्चों के साथ वह अपना बुढ़ापा जिएंगे, सब धरे रह जाते हैं। उपन्यास में अशोक विहार नामक ऐसी ही एक कॉलोनी का जिक्र किया गया है- 'जब कॉलोनी तैयार हुई तो पाया गया कि यह बूढों की कॉलोनी है! ऐसे बूढ़े-बूढ़ियों की जिनके बेटे-बेटी अपनी बीवी और बच्चों के साथ परदेश में नौकरी कर रहे हैं 'कोई कलकत्ता है, तो कोई दिल्ली, कोई मुंबई तो कोई बंगलौर और कइयों के तो विदेश में।'

कहना गलत न होगा कि आज का युग बुजुर्गों के प्रति संवेदनहीनता का है। आए दिन वृद्धों के प्रति कई हिंसक घटनाओं का जिक्र होता रहता है। कभी उनकी हत्या, तो कभी लूट-पाट का। उपन्यास के अंत में रघुनाथ, से जबरन जमीन के कागजात पर हस्ताक्षर के लिए नरेश कुछ गुंडों को भेजता है, तब रघुनाथ कहता है-'कितना दिया नरेश ने? अस्सी हजार? एक लाख?... लेकिन मैं दो लाख दिला दूँ तो?' रघुनाथ गुंडों को दो लाख रुपये का लालच दे खुद का ही अपहरण करवाता है ताकि वह यह जान सके कि उसके लिए उसके बच्चे इतनी रकम खर्च कर भी सकते हैं या नहीं।

निर्मल वर्मा का उपन्यास 'अंतिम अरण्य' में भी वृद्ध मनोदशा को भली प्रकार देखा जा सकता है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र बुजुर्ग मेहरा साहब है। जिस

प्रकार सभी की अपनी कुछ न कुछ इच्छाएं और उम्मीदें होती हैं ठीक उसी प्रकार वृद्धजनों की भी अपनी कुछ मनोकामनाएं होती हैं और यह मनोकामना वह अपनी अगली पीढ़ी से ही रखते हैं, परंतु जब यह मनोकामना पूरी होती नहीं दिखलाई पड़ती तो बुजुर्ग मानसिक रूप से उलझ व बिखरकर रह जाता है। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद मेहरा साहब अकेले पड़ जाते हैं। लेखक कहता है- 'मेहरा साहब मुझे सबसे बदले हुए दिखाई देते थे। मेरी आँखें उनके चेहरे पर पड़ जाती, तो मुझे वे दिन याद आ जाते, जब मैंने पहली बार उन्हें देखा था, जब मैं यहाँ शुरू में आया था....हँसमुख, हलके आत्मविश्वास से भरे हुए।'

यह हमारे समाज की विडंबना ही कही जा सकती है कि बुजुर्ग की देखभाल परिवार के सदस्य खुद न कर किसी नौकर को रखकर उनकी देखभाल का जिम्मा उन्हें सौंप देतें हैं। मेहरा साहब की दूसरी पत्नी अपनी असाध्य बीमारी के कारण मेहरा साहब की देखभाल के लिए किसी को नियुक्त करने का सोचकर विज्ञापन दे देती है, जिसे पढ़कर लेखक वहां आता है, वह मेहरा साहब के साथ समय व्यतीत करता है तथा उनके जीवन में बीते पलों को ब्योराबद्ध करता जाता है।

पत्नी की मृत्यु के बाद यह जिम्मेदारी उनकी बेटी तिया को सौंप दिया जाता है कि मेहरा साहब अब कहाँ रहेंगे? हालांकि भारतीय परिवार में उदारीकरण, बाजारवादी संस्कृति के बाद विशेष तौर पर देखा जा रहा है कि बच्चे अपने वृद्ध माँ-बाप को अपनी सुविधानुसार अपने पास रखते हैं। बुजुर्ग भी अपने मन से समझौता करके कभी अपने एक बेटे के घर तो कभी दूसरे बेटे के घर उनकी सुविधानुसार रहने को मान जाते हैं। मेहरा साहब की बेटी तिया भी उनके साथ न रहकर बाहर रहती है। वह चाहते हैं कि उनके बचे हुए शेष जीवन में उनकी बेटी उनके साथ रहे। पर यह संभव नहीं हो पाता। तिया के साथ न रहने पर मेहरा साहब खुद को अकेला पाकर बिल्कुल शांत हो जाते हैं। लेखक मेहरा साहब की दशा का चित्रण इन शब्दों में करता है "मुझे कभी-कभी लगता है कि जहाँ वह रहते हैं, वह कोई दूसरी जगह है, वहां मेरी पहुँच नहीं है।' अपनी इसी अधूरी इच्छा को लिए एक दिनमेहरा साहब भी इस दुनिया से विदा ले लेते हैं।

'कम्बख्त इस मोड़ पर' रमेशचंद्र शाह का लघु उपन्यास है। इस उपन्यास का शीर्षक यह सोचने पर विवश जरूर करता है कि आखिर रचनाकार इसके माध्यम से जीवन के किस मोड़ या पड़ाव की बात कर रहा है। जो इस उपन्यास से गुजरने के बाद साफ परिलक्षित हो जाता है कि वह पड़ाव मानव जीवन का वह पक्ष है जिस समय व्यक्ति के जीवन में तमाम तरह के अनुभव संग्रहित हो जाते हैं, जो अपने अब तक के जीवन में उसने प्राप्त किया होता है अर्थात् वृद्धावस्था या वार्धक्य।

यह उपन्यास अपने छोटे पुत्र के नाम लिखा गया बुजुर्ग पिता का पत्राचार है जिसके माध्यम से 61 वर्षीय पिता अपने भोगे हुए जीवन के कष्टों, प्रताड़ना, उपजे सवालों, आपबीती को निकाल फेंकना चाहता है या यूं कहें उढ़ेल देना चाहता है। आज के समाज में यह भली प्रकार देखा जा रहा है कि पुरानी पीढ़ी अर्थात् हमारे बुजुर्ग तथा युवा पीढ़ी के विचारों में तालमेल की कमी है। पुरानी पीढ़ी और युवा पीढ़ी के विचारों में शायद ही कभी सामंजस्य स्थापित हो सके। यह विचारों का अंतर वृद्ध के लिए तमाम तरह की समस्याओं को ला खड़ा करता है, जिसे उपर्युक्त उपन्यास में अच्छी प्रकार देखा जा सकता है। हमारा बुजुर्ग समाज अपने समय के उसूलों, जीवन में प्राप्त अनुभवों को आधार बनाकर जीना पसंद करता है, शायद यही कारण है कि वह युवा पीढ़ी के विचारों में खुद को मिसफिट अनुभव करता है। वही युवा पीढ़ी तकनीकी साधन, सुख-सुविधाओं में जीने का आदि होता जा रहा है, जिसके लिए पुरानी पीढ़ी के अनुभव कोई मायने नहीं रख रहें हैं।

'कम्बख्त इस मोड़ पर' उपन्यास का बुजुर्ग पिता इन बातों से भली-भांति परिचित है। वह अपनी तरफ से भरसक कोशिश करता है कि वह अपने बच्चों की सोच से अपनी सोच का तालमेल बैठा सके। उनकी सोच को अपना पाए। उनकी आंखें किस प्रकार इस बदलती

दुनिया को देख समझ रही है, वह भी उसी प्रकार दुनिया को देखे समझे ताकि वह इन तमाम कोशिशों के माध्यम से अपने बच्चों को समझ सके। पिता के शब्दों में–'तभी तो मैं जी-जान से कोशिश करता रहता हूँ' तुम लोगों की बातों और क्रिया-कलापों में दिलचस्पी लेने की। जबकि...लाख चाहते हुए भी मैं तुम्हारी कई कारगुज़ारियों में साझा नहीं कर पाता सचमुच। सिर्फ़ साझेदारी का अभिनय भर कर पाता हूँ। कभी-कभी तो मुझे यह कोशिश ही दयनीय और हास्यास्पद लगने लगती है" पर लाख कोशिश पर भी वह ऐसा नहीं कर पाता क्योंकि अभी तक के जीवन में प्राप्त अनुभव, उसके उसूल, अनुशासन उसे ऐसा करने में बाधित करते हैं- इसीलिए वह कहता है- 'हाँ, बेटू, मैं बारंबार तुम्हारी नई ताजी दुनिया से टकराकर अपनी उसी बासी और अर्थहीन होती दुनिया में फिंका जाता हूँ और इस तरह फिंका जाने में एक मुसीबत यह भी होती है कि मुझे लगता है, जैसे अपनी युवावस्था तो मैंने भोगी ही नहीं, जानी ही नहीं' मैं तो मानो सीधे एक ही झटके में अपने लड़कपन से अपने इस बुढ़ापे में फेंक दिया गया हूँ।'

मनुष्य का मानसिक पीड़ा से ग्रस्त होने पर उसका चिढ़ जाना, खुद पर काबू न होना स्वाभाविक सी बात है। उसका कभी भी किसी बात पर कुहराम मचा देना आम बात लगती है। ऐसे समय में बुजुर्ग को अपने परिवार की खास तौर पर जरूरत होती है और परिवार के सदस्य का यह कर्तव्य बनता है कि वह ऐसी अवस्था में अपने वृद्ध होती पीढ़ी का ध्यान रखें। उल्लेखित उपन्यास में वार्धक्य की ऐसी दशा से गुजरता हुआ पिता भी कभी कभार ऐसी हरकत कर देता है। वह स्वयं इस बात को स्वीकारता हुआ कहता है–'जाने कहा बिला जाता है सेकेंडों में मेरा ज्ञान-ध्यान, मेरा आत्म-संयम और आत्मानुशासन...! कब किस बात पर मैं बौखला उठूँगा, अपना होशो-हवास खो दूँगा' इसका कोई ठिकना नहीं। कब किस जरा-सी बात से मेरे भीतर कैसा कुहराम मच जाएगा-मुझे पता नहीं चलता और यह अकेले में ही नहीं, किसी के भी सामने हो सकता है।'

एक पिता की हमेशा यह कोशिश होती है कि वह आने वाले समय से जूझने के लिए अपनी संतान को इस कदर तैयार कर दे कि उसे तकलीफों का सामना न करना पड़े पर जब वही संतान अपने पिता द्वारा किए गए सारे जत्नों का मोल करना भूल जाती है तो पिता का इससे आहत होना स्वाभाविक ही है। पिता लाख दुःख तकलीफों को झेलता हुआ अपनी संतान को बड़ा करता है, उसे सफल मुकाम हासिल करने में मदद करता है। वह लाख कष्टों को सहता है केवल इसलिए कि उसके बच्चे खुशहाल जीवन व्यतीत कर पाएँ। किंतु संतान को अपनी खुशी के आगे अपने पिता द्वारा किये गए त्याग का मोल नहीं हो पाता। उसे केवल खुद से मतलब रह जाता है। उपन्यास में बुजुर्ग पिता अपने बड़े बेटे के क्रूर रवैया से परेशान है। पिता अपनी अधूरी इच्छाओं को अपनी संतान चाहे वह पुत्र हो या पुत्री उनके माध्यम से पूरा होता देखना चाहता है। इस उपन्यास के बुजुर्ग पिता ने भी अपने बचपन में कुछ सपने देखे थे जो वह किसी कारण पूरा न कर पाया। वह अपने उस सपने को खुद के बड़े पुत्र के माध्यम से पूरा होता देखना चाहता था, पर दुःख की बात है कि वह भी न हो सका। पिता को अपने बड़े बेटे के संबंध में यह भरसक विश्वास था कि वह उनकी परछाई है, जो उनके आदर्शों तथा विचारों को अपनाए चल रहा है। पर पिता का यह भ्रम भी चकनाचूर होते देर नहीं लगता। उपन्यास में आहात पिता कहता है कि- 'उफ़ ! क्या यह वही गुड्डू हैं, जिन्हें बाक़ायदा ट्रेन करने के लिए, दुनिया की ऊँच-नीच समझाने के लिए मैंने आकाश-पाताल एक कर दिया था', जिन्हें मैं रोज़ सुबह-शाम अपने साथ टहलाने ले जाता था, ताकि उनके अनजाने ही, यूँ ही खेल ही खेल में मैं उनके भेजे और कलेजे में वह सब ऊँड़ेल दूँ, जो मैंने इतने बरस अपनी काल-कोठरी की चक्की पीस-पीसकर कमाया है।'

उपन्यास में बड़ा बेटा अपनी पसंद से विवाह करना चाहता है। यह कोई गलत बात नहीं है। वह इस बात की जानकारी अपनी मां को देता है कि उसने अपने

जीवन साथी के रूप में शकुंतला को पसंद किया है जो कि एक मद्रासन है। पर वह अपने पिता को यह बात बताना जरूरी नहीं समझता। पिता को अपनी पत्नी से इस बात की जानकारी प्राप्त होती है, जिससे उन्हें गहरा आघात पहुंचता है। एक पुत्र का अपने पिता पर इस अविश्वास का होना उन्हें बर्दाश्त नहीं होता। उपन्यास का बुजुर्ग पिता अपने बड़े बेटे के ऐसे रवैये पर, उसमें आए बदलाव को देख खुद के बारे में सोचने लगता है कि उसने क्या गलती कर दी, जो उसे उसके ही बेटे से दूर कर रहा है। वह कहता है– 'कम्बख्त? इस मोड़ पर, मुझे भी ठिठक कर सोचना पड़ रहा है कि कहीं मैं ही तो ग़लत नहीं ?'

उल्लिखित उपन्यासों से गुजरकर यह एहसास होता है कि युवा पीढ़ी कहीं-न-कहीं अपने मूल्य को खोती जा रही है। उनमें संवेदनाएं नष्ट होती जा रही हैं। मां-बाप के त्याग से ही बच्चों का जीवन सफलता की ओर बढ़ता है, पर जब वही बच्चे सफलता हासिल कर अपने मां-बाप के त्याग को बिसरा दें तो इससे शर्मनाक भला क्या बात हो सकती है। जिनके कंधों के सहारे बच्चे एक सफल मुकाम पर पहुँचते हैं, जब बुढ़ापे में उन्हें अपने बच्चों के कंधे की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, तब वही बच्चे उन्हें बेसहारा कर देतें हैं। बुढ़ापे में उन्हें एकाकीपन में जीवन जीने को विवश होना पड़ता है। जीवन-संध्या में वृद्ध के लिए आत्मनिर्भर होना उसके लिए किसी वरदान से कम नहीं पर यह प्रत्येक बुजुर्ग के लिए संभव नहीं होता। हालांकि बुजुर्गों को उनके जीवन निर्वाह के लिए कई प्रकार की सहायता मुहैया तो करवाई जाती है, पर उसके सहारे वह किसी प्रकार अपना जीवन काट सकतें हैं, पर जी नहीं सकतें। जीवन तो वह केवल अपने परिवार, बच्चों के साथ ही रहकर जी सकतें हैं। वृद्धावस्था जहाँ काम से मुक्त हो अपने परिवार के साथ सुकून की ज़िन्दगी बिताने वाली अवस्था होनी चाहिए, वही आज के समाज में अकेलेपन और अजनबीपन का पर्याय बनकर रह गई है।

संदर्भित पुस्तकें :

1.कालिया, ममता, दौड़, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, छठा संस्करण : 2014, पृष्ठ 5-6

2. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, पहला संस्करण : 2014, पृष्ठ - 24

3. वर्मा, निर्मल, अंतिम अरण्य, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2017, पृष्ठ - 99

4. शाह, रमेशचन्द्र, कम्बख्त। इस मोड़ पर, वाणी प्रकाशन,दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करणः 2007, पृष्ठ 15

शोधार्थी : श्वेता शर्मा, पश्चिम बंगाल राज्य विश्वविद्यालय, बारासात,
कोलकाता 700126, **मोबाइलः** 9804389127

चित्रा मुद्गल की लघुकथाओं में मानवीय संवेदनाओं का यथार्थ

प्रीति सिंह

हिंदी साहित्य के वैविध्य में लघुकथा का विशिष्ट स्थान है। एक नवीन साहित्यिक विधा के रूप में लघुकथा गागर में सागर की तरह अपनी उपयोगिता प्रस्तुत करती है। यदि लघुकथा को उसके महत्त्व की दृष्टि से विश्लेषित करें तो यह रामसेतु के निर्माण में गिलहरी के योगदान की तरह प्रशंसित होगा। चित्रा मुद्गल के विपुल साहित्य लेखन में उनकी लघुकथाओं का भी उतना ही महत्त्व है जितना उनकी कहानियों का है। लघुकथाओं के महत्व पर चित्रा जी के विचार द्रष्टव्य है, 'पत्र-पत्रिकाएं लघुकथाओं को निरंतर प्रकाशित करती रहती हैं और उनकी अनिवार्यता और महत्वपूर्ण भूमिका से भी वे अनभिज्ञ नहीं हैं। यानी कि समय की नब्ज पर उनका हाथ है। वे जानती हैं, साहित्य का एक विशाल पाठक वर्ग अपनी रोजमर्रा की अति व्यस्तता के चलते पढने की इच्छा रखते हुए भी साहित्य से नाता जोड़ने में स्वयं को असमर्थ पाता है। ऐसे साहित्य-पिपासु पाठकों को सीमित समय में रचना जगत से जोड़ने का दायित्व लघुकथाएँ बखूबी निभा सकती हैं और निभा रही हैं।

चित्रा मुद्गल का लघुकथा संग्रह 'बयान' प्रमुख है. इस संग्रह में संकलित लघुकथाओं का रेंज विस्तृत है। 'मर्द' लघुकथा में पुरुषवादी वर्चस्व का विद्रूप चेहरा उपस्थित है। एक नकारा पुरुष जो शराब के नशे में धुत पत्नी को यौन सुख देने में नाकाम है, पत्नी के परपुरुष गमन पर उसे अपने मर्द होने का एहसास होता है। यह नपुंसक मर्द, मर्द न होकर पुरुष होने के आत्मबल पर पत्नी को गालियाँ देता है और उसके सिर पर लोटे से वार कर देता है। यह विडम्बना ही है कि कर्म से हीन, काम से हीन पुरुष पति होने के नाते पत्नी पर शासन करना अपना अधिकार समझता है। पुरुष सत्तात्मक समाज आज भी अपने केंचुल का परित्याग करने से परहेज करता है।

'बयान' लघुकथा मर्मस्पर्शी वाकया पर आधारित है जो पाठकों को झकझोरती है। सड़ी-गली सामाजिक एवं न्यायिक व्यवस्था में पुलिस प्रशासन को लेखिका कटघड़े में खड़ा करती है। बयान के माध्यम से दिखाया गया है कि गरीब-गुरबों की इज्जत-आबरू से खिलवाड़ करना आसान होता है। दंगाई-बलवाई घर के दरवाजे तोड़कर पति की हत्या करता है। स्त्री को यातना देता है और उसकी खूबसूरत बेटी के साथ बलात्कार और अपहरण कर लेता है. बलात्कार महज एक दुर्घटना मात्र नहीं होता अपितु वह एक जिंदगी, एक परिवार और एक स्त्री अस्मिता को रोड रोलर की तरह से कुचल डालने का वीभत्स अपराध भी होता है। लेखिका की चिंता में सिर्फ एक बलात्कार और अपहरण की घटना नहीं होती बल्कि वह सामाजिक चेतना के बंद दरवाजे पर दस्तक देती है कि जिस समाज में बेटी, रोटी, पेड़-पहाड़, जंगल, नदियाँ, हवा, जल कुछ भी सुरक्षित न हो उस समाज का पतन अवश्यम्भावी है. लघुकथा की निम्न पंक्तियाँ स्वयं व्यवस्था के विरुद्ध आवाज है, 'वाह ! तुम तो बोल सकती हो ! हम समझे बैठे थे कि तुम गूँगी हो। बहरहाल, मुँह में जुबान है तो बिना समय नष्ट किये जल्दी से बताओ- तुम्हारी बेटी आखिर कहाँ होगी ?'

'आपके घर में दरोगा साहब!'

'तेरा दिमाग तो नहीं चल गया औरत?'

औरत गरजी, 'क्यों, आपके घर में बेटी नहीं है ?'

'मेरे घर में मेरी बेटी है...'

'न, वो मेरी बेटी है...मेरी बेटी की चलती फिरती लाश ! घर जाइए दरोगा साहब और उस बच्ची को गौर से देखिये। मेरी बेटी बरामद हो जायेगी...'

शिविर में सन्नाटा छा गया..."

यहाँ लेखिका की चिंता में एक बेटी नहीं अपितु दुनिया भर की बेटियाँ हैं। यदि समाज सभी बहन-बेटियों में अपनी बहन-बेटी की छवि महसूस करे तो बलात्कार और अपहरण जैसी घटनाओं पर लगाम लग सकती है। हाल-फ़िलहाल में दिल्ली के शाहाबाद में घटित घटना को ही हम देख सकते हैं जहाँ बहुत ही बेरहमी से सोलह वर्षीय साक्षी की बीस वर्षीय साहिल द्वारा हत्या कर दी जाती है। आस-पास गुजर रहे लोग मौन होकर भारत की एक बेटी की हत्या होते हुए देखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी संवेदनाएँ मर चुकी है। अगर ये लोग साक्षी को अपनी बेटी के समान समझते हुए उसे बचाने हेतु कोई भी कदम उठाते तो आज वो भारत की बेटी जिंदा होती। समाज को यह समझना होगा कि एक बेटी चाहे वह किसी भी घर में जन्मी हो, पूरे भारतवर्ष की बेटी है और अगर एक बेटी सुरक्षित होगी तो पूरे भारतवर्ष की बेटी सुरक्षित होगी।

लघुकथा 'भूखे-नंगे' के माध्यम से लेखिका ने समाज सेवा के नाम पर अपना उल्लू सीधा करने वाले एन.जी.ओ. का काला सच सामने लाया है। देश के भीतर अनगिनत ऐसे सामाजिक संस्था है, जो फर्जी सेवा के नाम पर देश-विदेश की संस्थाओं और सरकार से मोटी रकम अर्जित करते हैं। ये छद्म संस्थाएँ राजधानी से लेकर बड़े-बड़े शहरों में अपनी स्थायी-अस्थायी संस्था खोलकर, जुगत से पंजीकरण करवा कर खूब धन बटोरते हैं। वास्तव में ऐसी, संस्थाओं को समाज सेवा और मानव कल्याण से कोई लेना-देना नहीं होता है।

'दूध' लघुकथा के बहाने लेखिका परंपरा से चली आ रही बेटे-बेटियों (स्त्री-पुरुषों) में भेद-भाव को व्यक्त किया है। आज भी परिवार में पुरुषों की प्रतिष्ठा और स्त्रियों का अपमान कायम है। दूध पर अधिकांश घरों में पुरुष जाति का अधिकार है। स्त्रियाँ सिर्फ दूध गर्म करने और पुरुषों के आगे परोसने में फक्र महसूस करती है। यह भेद-भाव अपने ही कोखजाया के साथ स्वयं स्त्रियाँ करती हैं। भूल से भी बेटियों द्वारा अच्छा खाना-पीने, पहनने-ओढने, खेलने-कूदने की इच्छा प्रकट करने पर उसके हिस्से फटकार और अपमान ही आते हैं। लघुकथा की इन पंक्तियों पर ज़रा गौर फरमाते हैं, 'दूध पी रही थी कमीनी?'

'हाँअ..'

'माँग नहीं सकती थी ?'

'माँगा था, तुमने कभी दिया नहीं...'

'नहीं दिया तो कौन तुझे लठैत बनना है जो लाठी को तेल पिलाऊं ?'

'एक बात पूछूँ माँ ?' आसूँ-भीगी उसकी आवाज़ अचानक ढीठ हो आयी।

'पूछ !'

'मैं जनमी तो दूध उतरा था तुम्हारी छातियों में ?'

'हाँ...खूब. पर...पर तू कहना क्या चाहती है ?'

'तो मेरे हिस्से का छातियों का दूध भी क्या तुमने घर के मर्दों को पिला दिया था?'

'मिट्टी' लघुकथा में रिश्ते-नाते और उनके बीच समन्वय में कमी का बोध है। बीमार-मरणासन्न अम्मा की घर के लोगों को परवाह नहीं होती. बेटा-बहू, पोता-पोती सभी को अम्मा के धन की चिंता सताये रहती है। आखिर वे सब अम्मा से जानना चाहते हैं कि उन्होंने चाँदी के सिक्के से भरे कलसे और जेवरों वाला लोटा कहाँ दबा कर रखा है। धन की आस में परिवार वाले जाता, ओखली के नीचे खुदाई कर चुके किन्तु कुछ नहीं मिला।

लघुकथा में स्पष्ट संकेत है कि घर-परिवार में बुजुर्गों के लिए तभी सम्मान है जब वे धन बाँटने में सक्षम हैं। धन के आगे रिश्ते-नाते की कोई अहमियत नहीं है।

'पाठ' शीर्षक लघुकथा में राजनीतिक व्यवस्था और समाज के निम्न वर्गीय लोगों के आम जीवन का रेखांकन है। प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री अपनी कुर्सी सलामत

रखने और सरकार बचाने की खातिर स्कूलों का दौरा करते हैं। वे बच्चों के माध्यम से अपना राजनीतिक हित साधना चाहते थे। उन्होंने विद्यालय का दौरा कर बच्चों को सफाई, स्वच्छता और स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान के साथ उपहार में नहाने, धोने के साबुन के साथ अंगोछा बाँटा. अगले दौरे पर उन्होंने जब बच्चों से साबुन के इस्तेमाल की बात पूछा तो बच्चे सकपका गये। सतीश ने हिम्मत जुटाकर कहा कि अम्मा ने साबुन और अंगोछा बेचकर राशन खरीदी। क्योंकि स्नान करने से पेट भरना ज्यादा ज़रूरी था।

चित्रा जी की कुछ सीमाएँ भी हैं। लघुकथा पाठ कई बिन्दुओं पर खरा नहीं उतरती। मसलन एक साथ सारे बच्चों के परिजन साबुन और अंगोछा नहीं बेच सकते। एक दिन साबुन, अंगोछा बेचने से किसी का घर-परिवार नहीं चल सकता। अतएव, लघुकथा की कथावस्तु दिग्भ्रमित करती है। दूसरी ओर 'घर', धर्म, गली, राक्षस, पाठ, मिट्टी आदि लघुकथाएँ अनावश्यक विस्तार लिए है। कई लघुकथाएँ समय, समाज और जीवन की कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं। मसलन 'बोहनी' लघुकथा में भिक्षावृति में बोहनी शब्द अटपटा लगता है। दूसरी ओर नैरेटर के बोहनी न करने की स्थिति में भिखारी को तीन दिनों तक भीख में कोई पैसे न मिलना, उसका भूखा रहना भी भ्रम उत्पन्न करता है। लघुकथा 'एब' में परस्पर कई विरोधाभास हैं। सुधीर पेशे से प्रोफेसर हैं और बगैर दहेज़ के विवाह करते हैं। बहू की मुँहदिखाई के लिए जुटी पड़ोसनें जब दान-दहेज़ की चर्चा करती है तो सुधीर की माँ स्पष्ट शब्दों में इसकी खिलाफत करती है। इस पर पड़ोसन महिलाओं को विश्वास नहीं होता और यदि यह सच है तो उन्हें सुधीर में ही खोट लगता है। आपस में पड़ोसियों के बीच समन्वय ही समाज की संरचना है। दहेज़ में भौतिक वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती है। लोगों का स्वभाव, सिद्धांत, संस्कार आदि भी एक-दूसरे पर जाहिर रहता है। ऐसे में अविश्वास का कोई कारण नहीं दीखता।

बहरहाल चित्रा मुद्गल की लघुकथाएँ वर्षों पहले लिखी गई हैं। लघुकथाओं ने बदलते समय के साथ कथन, शैली, शिल्प आदि के स्तर पर काफी तरक्की की है। ऐसे में चित्रा जी की लघुकथाएँ संभावनाशील और प्रेरक हैं, इसमें कोई दो राय नहीं है।

यथार्थतः लघुकथा मानव जीवन के विभिन्न सामाजिक सरोकारों का त्वरित बखान है। यह अर्थ एवं सार की तरह संरक्षित और संशोधित होता है। इसमें कहानी का रस तो होता है किन्तु ऊब नहीं होती। शैली, कथानक, कथ्य और शिल्प से सज-संवरकर लघुकथा अपनी पठनीयता, उपादेयता एवं पाठकों की संतुष्टि की बेजोड़ साहित्यिक विधा है. अस्तु, साहित्य वांग्मय में चित्रा मुद्गल की लघुकथाएँ अपना सामाजिक, सांस्कृतिक एवं रचनात्मक मूल्यों का निर्वहन करती है।

1. चित्रा मुद्गल, लघुकथा संग्रह 'बयान', प्रकाशन वर्ष- 2005, अभिनव प्रकाशन, पुस्तक की भूमिका से।

संपर्क :- 8 नम्बर बस्ती, (माँझी मोटर्स के नजदीक) आसनसोल, **डाक :** सन्ता, **जिलाः** पश्चिम वर्द्धमान, **पिन :** 713325 (प. बं.) **मोः** 9563030374

समय

राजनारायण बोहरा

मैं तिलिस्म से दीखते मढ़ा के भीतर था और तिलिस्म के दारोगा की तरह अम्माँ लगभग मेरे सिर पर खड़ी हो पूछ रहीं थीं कि मैं क्या खोज रहा हूँ?

उन्हें भला कहाँ सुहाता कि उनके एकल संसार में कोई इस तरह दिन दहाड़े सेंध लगाकर खोजा-खखोरी करे। दरअसल अम्माँ ने मढ़ा में बसा रखा था तिलिस्मी सा अपना एक निजी संसार, जिसमें किसी का भी प्रवेश वर्जित था।

दादाजी के जमाने की खपरैल अटारी के नीचे वाले कमरे को हम मढ़ा कहते हैं, जिसकी ऊंचाई मुश्किल से सात फिट है। कमरे में इस ऊंचाई पर खजूर की मोटी शहतीरों को कुल्हाड़ी से काट कर बिछाये गये पटरे ही इस मढ़ा की भीतरी छत है, जिसकी दरारों में अम्माँ की प्रजा के रूप में जाने कितने झींगुर, तिलचट्टे, चींटे और चूहे अपना निवास तय करके रह रहे हैं। एक अंधेरा और ठण्डा कमरा है यह, जिसमें ग्रीष्म ऋतु में गर्मी नही लगती और ठण्ड में सर्दी। मढ़ा ज्यादातर बंद ही रहता था। इसे बंद करते वक्त अम्माँ पुराने किवाड़ खींचते हुए आपस में भिड़ाकर जतन से दो सांकल खींच कुंन्दे में उलझा देती हैं-एक ऊपर, एक नीचे। दरसवां (चौखट) में ऊपर नीचे दो कुंदे लगे थे और दोनों में दो ताले। किसी पुराने राजा के खजाने की गुफा की तरह था अम्माँ का मढ़ा । इसी मढ़ा के ऊपरी मंजिल का कमरा ही अटारी है ; अम्माँ की अटारी! मोहल्ले में सबसे बड़ी,सबसे पुरानी। लोग कहते हैं एक जमाने में इसमें यहां के जमींदार रहते थे, मेरे पिता के ब्याह के समय जमींदार साहब ने मेरे दादा को भेंट की थी यह अटारी।

कोई घण्टा भर पहले सुबह नौ बजे जब मैं यहां पहुंचा तो देखा कि उस वक्त अम्माँ का आंगन सूना पड़ा है और अम्माँ एक कोने में बैठी सूखे हुए चने के झांड़ों को कपड़ा धोने की मुंगेरी से कूट रही है।

चने के झाड़ों पर मेरी सवालिया निगाहों को भांपते हुए उन्होंने हंस के बताया 'मईना भर पैले गांव से हरे बूट आये उनमें से एक मुट्ठी पौधे धरे रह गये, तो सूखई गये , अगर इने नई निकारेंगे तो इते-उते डरे रयेंगे और भीतर के चना बिसूरते रयेंगे कै हमाये भाग जा कैसी डुकरिया लिखी ती, जा ने न हमें दुनिया देखन दई और न हमें चखो । हमको अकारण घेंटियों के भीतरई सुखा डारो जा हत्यारी ने और अब जों ई घुन जावे के लाने छोड़ दओ ।'

मैं मुस्कराया। दुनिया की सारी बेजान चीजों के बारे में अम्माँ यों ही सोचती है। इन्सान तो उनके बेटे बहुऐं ठहरे। चौरासी साल की अम्माँ का कुल वजन मुश्किल से तीस किलोग्राम होगा । उनकी सारी ज्ञानेन्द्रियां प्रबल है, बस कान खराब हो गये हैं, इसलिये आप कुछ भी बोलते रहिये, वे सुनती नहीं, अपनी बातें ही कहती रहती है। बेटा कहता है कि उनसे वार्तालाप केवल आउटगोइंग है , इनकमिंग बिलकुल नहीं। मैंने इशारे से समझाया कि मुझे मढ़ा के सामान में से अपने कुछ कागज ढूढ़ना है तो अम्माँ ने अनुमति दे दी थी और मैं इस अंधियारे मढ़ा में आ घुसा था।

सदा से घर के बाहर रहने के कारण मुझे कुछ ज्यादा प्रिविलेज हैं अम्माँ के मन में, अन्यथा अम्माँ किसी को मढ़ा के पास नहीं फटकने देतीं। इसी प्रिविलेज का लाभ उठा कर मैंने मढ़ा में प्रवेश पाया था।

बाहर की धूप से अचानक भीतर पहुंचने पर कुछ सूझ नही रहा था, मेरी आंखों को घना अंधेरा ही लग रहा था । पांचेक मिनट में चीजों के आकार प्रकट होने लगे। मैंने पाया कि सदा की तरह उधर बायें कोने में मिट्टी से चिनी हुई दो मिट्टी की कनारी जमीन में गढ़ी हुई खड़ी थी और इनसे लग के रखी थी जाने कितने दिन पुरानी एक नीले रंग की टंकी। जिसके बाद दरवाजा और दरवाजे के दांयी ओर रखा था पुराना बड़ा बक्सा, उसके पीछे दीवार से सटी हुयी चार टंकियों के ऊपर रखे थे टीन के दस बारह छोटे-छोटे अलग-अलग आकार के बक्से। दीवार में बनी अलमारियों में ढेर सारी पोटलियां बंधी रखी थी। कमरे में प्रवेश की भी जगह मुश्किल से बनती थी।

मुझे इतने कबाड़े के बीच से अपना कागज खोजना था। इसके लिए भी मेरे पास दोपहर के तीसरे पहर तक का समय था।

मढ़ा में इतनी सारी चीजें गसी पड़ी थीं, कि फर्शपर केवल तीन वाई छह फिट खाली जगह थी जिसमें अम्माँ अपना बिस्तर लगा के सोती थी और कहती थी कि अपने मढ़ा और अपने मजोटे में जैसी नींद आती है, वैसी इंदर को अपने बिस्तरे पर न आती होगी। इस मजोटे (कच्चे मिटटी के फर्श) को हर दिवाली के पहले, दीवारों की सफेदी होते समय अम्माँ मिट्टी का लेप कर उसके ऊपर ईंट और कबेलू के बारीक कपड़छन किये पावडर को बुरकते हुए चिकनी लुड़िया से घिसती थी और चकाचक कर देती थी।

सामान से अटे मढ़ा में मैं ठीक से बैठा ही था कि अम्माँ हाथ में लोटा लिये पानी देने के बहाने भीतर आयी। मैने मुस्काते हुए अम्माँ से पूछा कि इन बक्सों, टंकियों और पोटलियों में क्या रखा है ?

मेरा सवाल सुन कर एक पल को अचानक गंभीर हो आयी अम्माँ कुछ न बोली थी।

उनकी आंखे पनियल हो आयी थी और वे बिना कुछ कहे अचानक उठी और मढ़ा से बाहर चली गयी थी। महिलाएँ पता नहीं किस बेजान चीज से क्या नेह लगा लेती हैं और तमाम बेकार चीजों से जाने क्या-क्या यादें जोड़े रहती हैं।

हम सब भाई-बहन मानते हैं कि अम्माँ का मढ़ा तिलिस्मी है। इसमें भले ही अम्माँ की यादों से जुड़ी व्यर्थ की चीजें रखी हों लेकिन बहुत सारी कीमती चीजें भी होंगी-कुछ जमीन के ऊपर कुछ जमीन के अन्दर। हां दफीना होने की पूरी संभावना है हम सबको। किसी ओझा-गुनिया ने अम्माँ को बताया था कि इसमें सोने से भरे सात घड़े रखे हैं, इजाजत दो तो किसी रात खुदाई कर लेते हैं, बस रखवाले की इतनी सी शर्त है कि उसे गले में डाल के चारों धाम कराना होगा। अम्माँ समझ गयीं ...गले में डाल के यानि कि इस दफीने का रखवाला सांप है, सांप ही तो लपेटा जायेगा गले में। न बाबा न, मेरे बच्चे सांप को गले में डाल के तीरथ नहीं जाएंगे, न मिले तो न मिले ये खजाना, हम क्या इसी के भरोसे जीते-मरते हैं। जो भी रखवाला हो वो धर राखे अपना दफीना। हमे नहीं चहिये सोने के वे सात घड़े। हम भले, हमारी रूखी-सूखी दो बखत की रोटी भली।

सांझ ढलते-ढलते मोहल्ले भर की औरतें अम्माँ की खुली बैठक में बाल- बच्चों समेत हाजिर हो जाती थीं, जिनके बीच सरपंच बनी बैठी अम्माँ सारे मोहल्ले के न्याय निबेरती थी। इन पलों में अम्माँ का मढ़ा बाकायदा बंद रहता था।

कागज खोजना इतना जरूरी न होता तो मैं अम्माँ के इस रहस्यमय मढ़ा में कभी न आता, दरअसल अपना पासपोर्ट बनवाने के लिए मेरे लिए यह कागज जरूरी थी। मुझे पासपोर्ट बनवाने वाले एजेंन्ट ने बताया था कि सन उन्नीस सौ पैंसठ के पहले जन्मे लोगों के लिए हायर सेकेण्डी परीक्षा का उत्तीर्ण प्रमाणपत्र ही जन्मतिथि का सबसे बड़ा आधार माना जाता है। ऐजेंट के मुताबिक पासपोर्ट के लिए अंकसूची से काम नही चलना था, केवल प्रमाणपत्र ही जरूरी था, जिसकी वजह से काम अटका था। जब हायर सेकेण्ड्री पास करी तब हम सब इसी मढ़ा में अपनी सारी जरूरी चीजें अम्माँ के इन बक्सों में रख लिया करते थे, सो वह प्रमाणपत्र भी यहीं

कहीं रखा होगा। हालांकि बाद में मैंने बी. ए. करके एलएलबी और तीन विषय में एम ए तक के परीक्षा फॉर्म भरे लेकिन किसी भी फॉर्म में इस प्रमाणपत्र की जरूरत नहीं थी सो कभी नहीं खोजा इसे। आज जरूरत पड़ी तो भागा आया हूं शहर से।

पुराने बक्से, और मिटटी के विशाल घड़ों-कनारियां से अटा पड़ा था यह मढ़ा, जहां मुझे अपना प्रमाणपत्र मिलने की गुंजायश थी। लेकिन अम्मां के सामान के प्रति अपने कौतूहल को रोक न सका सो बक्सों और फाइलों के अलावा भी दीगर सामान को खंगालना शुरू कर दिया। मैंने माचिस की डिबियों, पुराने कपड़ों, कंघी-दर्पण, रिबन, फाइलों, पुरानी डायरियां वगैरह से भरे थैले और पोटलियां और उनके ऊपर से दो छोटे बक्से उठा कर अपने सामने पटक लिए थे और एक-एक कर उनमें से चीजें निकालता और देखता जा रहा था।

अब अम्माँ कातर निगाहों से देख रही थी।

एक-एक पोटली में कितनी कितनी यादें थी अम्माँ की, हमारी भी।

अम्मां ने मेरे सामने रखी सात पोटलियां उठा कर एक तरफ रखके कहा था कि इनमें तुम सातों बच्चों की यादें हैं मेरे पास, इसलिये इन्हें न छेड़ना। अम्मां के जाने के बाद मैंने ताका झांकी कर उन पोटलियों को देखा तो पाया कि हरेक पोटली हम भाई बहनों की यादों से भरी पड़ी थी। हमारे खिलौने, बचपन की किताबें, स्लेट-बरती, बचपन के कपड़े और भी जाने क्या- क्या। मैंने सुना है कि पिछले कुछ दिनों से अम्मां खाली वक्त में इनमें से कोई पोटली खोल कर हमारे बचपन की यादों मे विचरती रहती है।

पोटली क्या हर सामान में समय दफन था मढ़ा में।

समय दफन था और सुरक्षित भी अपनी पूरी लह-दह के साथ। मुझे हर चीज छूते हुये लगता था कि रूका हुआ समय, अपने विस्तार को कम्प्रेस्ड कर चीजों में घुसके धकधक धड़क रहा था इस सामान में।

कितने रूप थे इस समय के ! बेधक भी था समय का कुछ हिस्सा, जो अम्माँ को रूला देता होगा और कुछ चपल भी जो गुदगुदा देता होगा, तभी तो मढ़ा के इस तिलिस्मी संसार में वे अकेली विचरती रहती थीं और जब कोई घुसपैठिया पातीं थीं तो तिलिस्म के दारोगा की तरह सख्त सवाल-जबाव करती।

मैं खोज कुछ रहा था, लेकिन निकल कुछ और रहा था।

पुराने बक्से में हाथ डाला तो एक खोवा भर के माचिस की डिबिया निकली। एक माचिस को मैंने कौतूहल से खोला तो झटके से सिर पीछे हट गया-उसमें एक बिच्छू था। मरा हुआ कौड़ी के आकार का सुर्ख लाल बिच्छू। आंख बन्द कर सोचा तो मुझे याद आया कि बचपन की बात है, एक दिन हम सब दोस्त माता मंदिर के बाहर के हरे मैदान में खेल रहे थे, तब अचानक ऐसे सुर्ख लाल रंग के बहुत सारे बिच्छू एक पंक्ति में चलते हुए दिखे थे तो हरि महाराज का बेटा पप्पू बोला था "जे देखो खजानो सरक रहो है कोई को।" खजानो? हम सब समझ नही पाये थे तब। "हमरे दादा बता रये थे कै जमीन के भीतर गढ़ो कोई खजानो जब एक जगह से दूसरी जगह को जाथै तो सारी मोहरें बिच्छू बन जाथैं और एक के पीछे एक चलके दूसरी जगह चली जाथैं। खजानो केवल बिच्छु बनके जमीन के बाहर निकलथै।"

निम्न मध्यवर्ग के हम सब लोग बड़े लालच से उन बिच्छुओं को ताकने लगे थे, जो थीं तो मोहरें लेकिन इस वक्त विषैले बिच्छू का रूप धारण कर लिया था उन्होंने। एकाएक पप्पू ने ही कहा कि अगर अपन को खजाने में से कुछ परसाद चाहिये तो एक एक बिच्छू को जिन्दा पकड़ के माचिस में रख लेनो चाहिये और साबर मंत्र से इन्हें कील देना चहिये।

मेरे दोस्तों ने पतले धागे से फंदे बनाये और उनमें बिच्छू के डंक फंसा कर खींचने लगे। इस तरह हम सब दोस्तों ने एक-एक बिच्छू को पकड़कर माचिस में बंद कर लिया था कि हरि महाराज का लड़का उन बिच्छुओं पर फूंक मारते हुए बोल रहा था "गोरा पारवती की आन जो अब नये बिच्छू मुझे दिखें। सत्त के सांचे हुइयो तो सब बिच्छू मोहरें बन जइयो।"

कितने बरस बीत गये बिच्छू वाली माचिस हमारे घर में ज्यों की त्यों धरी रह गयी , खजाना तो क्या, फूटी कौड़ी तक नही मिली किसी को। वो जमाना भी क्या था कि एक बच्चे ने कहा और सब विश्वास कर लेते थे और आज अदालत में भी शपथ लेके बयान देने वाले की सचाई का कोई ठिकाना नहीं।

माचिस एक न थी कई थी। किसी में हमारे पर्ची वाले खेल राजा, कोतवाल चोर और वजीर की पर्चियां। किसी में कौड़ियाँ थी। तो किसी में इमली के बीज की फटी हुई चीपें, जिन्हें चंगा-अष्टा या चैंसठ गोटी खेलते हुए हम पांसे की तरह उपयोग करते थे। किसी में दिवाली पर बिकने वाली रंगीन रोशनी की काड़ी रखी थी याद आया कि रोशनी की काड़ियां मामा लाये थे, अपने बच्चों की आतिशबाजी की चीज में उन्हीं में कुछ माचिस दी थीं हमें खेलने के वास्ते। हमारे घर बरसों कोई आतिशबाजी नहीं हुई हमारे पिता की असमय हुई मृत्यु की वजह से, क्योंकि कच्चा कुड़वारा छोड़ गये थे पिता जिनके बाद न नियमित आमदनी थी घर में, न उसकी हाल फिलहाल कोई संभावना ।

अब मेरे हाथ मे एक पोटली थी जिसमें ढेर सारे मुसे-तुसे कपड़े रखे थे। उसमें सबसे पहले निकला था, रेशमी कपड़े का एक पीला-गोटेदार अंगरखा, जो रामलीला में बड़े भैया को राम के रूप में अभिनय करते समय पहनने के वास्ते अम्माँ ने अपनी तरफ से अजुद्धी कक्का से सिलवाया था। पूरी घटना याद आयी मुझे। रामलीला समिति के राजसी सामान में पुराने धुराने अंगरखा फट गये थे और रामजी का कोट तो सबसे ज्यादा बुरी हालत में था। अम्माँ ने बड़े भैया से सुना तो उन्होंने अपने मायके से आये सलमा-सितारे जड़े एक रेशमीसुनहरी लूंगरे को निकाल कर भैया को दिया था, जिससे उन्होंने राम जी का अंगरखा सिलवाया था। इस कोट को पहन रामलीला के मंच पर जब भैया राम के रूप में अपने संवाद बोलते तो हिलते-मटकते हाथों की हरकत से इस कोट से वो सुनहरी लश्कारियां छूटती थीं कि लोगों की नजर न टिक पाती थीं रामजी पर।

पोटली में से फिर निकला मेरा गहरे नीले रंग का मखमल का छोटा सा कोट। याद आया यह मेरे जीवन का पहला कोट था। हुआ यूं कि मेरा और मंझले का जब नवें दर्जे में दाखिला हुआ, सारे बच्चे ब्लेजर के बने कोट पहन कर स्कूल आते जबकि मैं और मंझले भैया बड़ी जिज्जी की बुनी हाफ स्वेटर पहन कर तेज तेज चलते हुए अपनी कांखों में हाथ घुसाये कक्षा आरंभ होने के पहले मैदान में होने वाली प्रार्थना सभा में पहुंच सावधानी की मुद्रा में जा खड़े होते थे। तमाम बच्चे सर्दी में ठिठुरते हम लोगों को अजीब सी निगाहों से घूरते थे, और बहुत से अध्यापक भी। कितनी ही बार घर आकर कई बार हमने अपनी दयनीय दशा का वर्णन किया तो अम्माँ ने अपने बक्से मे रखे मायके से आये मखमल के पुराने चादर में से यह कोट सिलवाया था मुझे जबकि मंझले ने अपने लिए अल्टर कराया था, पिताजी का रखा एक पुराना कोट। इन दोनों कोट ने हमारी लाज जैसे तैसे बचाई थी।

पोटली में से अबकी निकली थी, एक सेंण्डो बनियान ! जो यू तो अब भी झक सफेद थी, लेकिन उसमें आगे की तरफ नाभि के ठीक ऊपर खून का बड़ा सा धब्बा लगा था जो अब सूख कर काला हो चुका था। याद आया कि उस बरस की बरसात में अटारी के छप्पर की की गयी मरम्मत की निशानी है यह। दरअसल पहले पानी में ही पता लगा था कि बाहर की बजाय भीतर पानी की झल्ल-झल्ल धार बहाते अटारी के टूटे छप्पर को सुधारने या मरम्मत कराने की जरूरत है, और इस मरम्मत के लिए जहां दीवार के किनारे पर इमारती मिटटी के गांदा रखना जरूरी है वहीं इससे ज्यादा जरूरी बल्ली, सियारी, बांस और लकड़ी के चिरैया-कान थे। लेकिन अम्मां के पास इस सब के लिए जब ज्यादा पैसे न दिखे तो हमने सोचा था कि छप्पर का सामान नहीं बदलते सिर्फ मरम्मत करा लेते हैं, बस कबेलू के ओंधेला और तरेला की पांत बांधना जाने वाले मजूदर की जरूरत होगी, तय किया गया कि कोई कम पैसे लेने वाले कोई दो मजदूर लगा लेते हैं, जो सुतली-रस्सी कस के छप्पर की बंसोटियों की बांधाबूधी करके छप्पर को काम चलाने लायक कर देंगे। कम मजदूरी में काम करने वाले मजदूर हमने खोजे तो बहुत खोजबीन के बाद केवल एक ही मजूदर मिल सका था, अब एक की कमी रह गयी थी। हमने तय किया कि दूसरे मजदूर की जगह मैं और मंझले भैया मजदूर के साथ काम करने में जुट गये थे और हम लोग खपरैल की पांत उधेड़ने लगे। आठ दस कबेलू के ढकना ओंधेला हटा कर पानी बहाने वाली केवल दो पांत ही हटी थी कि लगा, लगभग चालीस साल से जमा अंधेरा उस अटारी में से जाने किस रास्ते निकल भागा था और यकायक ही अम्माँ की अंधेरी अटारी में ट्राली भर रोशनी भरभरा के घुस आयी थी।

छप्पर की जीर्णशीर्ण और खिसकती बंसवारी पर जान हथेली पर रख के बैठे मजदूर और हमने भी देखा कि अटारी में अब तक उजाले से आंख चुराता अम्माँ की गृहस्थी का सारा सामान मानो आंख मूंदे अपनी जगह पड़ा रह गया था-जिज्जी के ब्याह में रात को तैयार करायी गयी पूड़ियों को दबा के रखने के वास्ते लाये गये बड़े बड़े डला, मिटटी के जे बड़े भारी भारी मटका, पूड़ी बेलनहारिनों के पास से हलवाई तक पूड़ी लाने के लिए वास्ते लाये गये दर्जन भर सूप, मण्डप के नीचे गाड़ा गया लकड़ी का बना दुछत्ती का बना लम्बी म्यानों वाला खम्भ, रगवारे का लोटा, बेई की डुबलियां, कितने सारे उरसा-बेलन, कितनी सारी होलियों पर जलाई गयी गोबर की बनी मलरियां, पुराने से पुराने मक्का के भुट्टे और भी जाने क्या-क्या।

बनियान के बहाने से अटारी का छप्पर याद आया तो मुझे हमारी अटारी के छप्पर की बनावट याद आयी। जब छप्पर डाला गया तब हमारे दादाजी के चौदह सौ बीघा के खेतों पर जाने कितनी खजूरें रहीं होंगी, कि जब मढ़ा की पांच हाथ की दीवार के ऊपर फर्श और उसके साड़े चार हाथ ऊंची दीवार के ऊपर अटारी का छप्पर डालना शुरू हुआ तो मढ़ा से लेकर ऊपर अटारी के छप्पर तक और कोई लकड़ी नहीं ली गयी केवल खजूर ही खजूर उपयोग की गयी थी। लगता है कि खजूरों का पूरा जंगल काट के लाया गया होगा। आज मुझे छप्पर डालने की प्रक्रिया याद हो आई, तब सबसे नीचे कच्चे मकान की मिट्टी की एक दीवार से दूसरे तक जाती हुयी खजूर की लम्बी म्यारें लगती थी, जिनमें कमरे के बीच में बड़े और दीवार तक घटते हुऐ छोटे होते जाते के आकार में चतुर बढ़ई के बनाये ठुके क्रिकेट के तीन स्टम्प और ऊपर रखी गिल्ली से दिखते लकड़ी के छोटे छोटे चौखटे के आकार के कान-चिरैया बांधे जाते थे। इन पर रखे जाते थे कुल्हाड़ियों से चिरे नीम की लकड़ी के बेरतरतीब से टुकड़े, जो कमरे के बीचोंबीच मगरा कहलाने वाले हिस्से पर सबसे ऊंचे होते थे और क्रमशः दीवार की तरफ आते समय झुकते चले जाते थे। मुझे याद आया कि इन लकड़ियों पर बिछी होती थी, सुतली से बंधी हुई स्यारी की झाड़ी की पतली डंडिया या बांस को चीर के बनाई गई बंसोटियां। स्यारी के ऊपर देशी कबेलू जमाये जाते थे। दो हथेलियों से चौड़े से फैले हुए देशी कबेलू हमारे गांव के कुम्हार बिना किसी सांचे और कलाकारी के एक मिट्टी के लौंदे से बना लेते थे जिन्हें सुखा कर लकड़ी-कण्डे के अवाँ में पकाया जाता था। देशी कबेलू का आकार और उसके जमाने का तरीका मुझे आज भी याद है। अटारी का पचास साल पुराना छप्पर अपने बनने के दिन से आज तक न कभी बदला गया, न बांस बदले और न बल्लियां। उस साल एक मजदूर की एवजी में मैं और मंझले भैया काम करते हुए काम चला रहे थे कि अचानक अटारी में लगी पुरानी वह घुनी हुई बल्ली चर्रर होती हुयी टूट गयी थी जिस पर मैं खड़ा था और बल्ली के साथ ही धप्प से नीचे आन गिरा था । नीचे पड़े कबेलू के टुकड़ों और अम्माँ के प्रिय कबाड़े पर घिसट जाने से मेरे पेट की खाल छिल गयी थी। उस वक्त मैंने यही बनियान पहनी थी, जो नाभि के पास पेट में से छलछलाते खून से सन गयी थी। यह घटना अम्माँ देखती तो बहुत गुस्सा होती, इस कारण हम दोनों भाइयों ने यह बनियान अम्माँ की नजरों से ऐसी छिपाई कि फिर कभी हमको भी खोजने पर मिली नही, तब की खोयी आज निकल रही थी। बनियान निकली तो उससे जुड़े कितने सारे दर्द उभर आये। मढ़ा की ऊपर की अटारी पर आज भी ज्यों का त्यों वही कमजोर, तार-तार होता अटारी के भीतर बरसात की उरवाती बहाता छप्पर है, जिसकी मरम्मत करते वक्त मैं गिरा था।

पोटली में बहुतेरे कपड़े बंधे रखे थे हमारे। अम्माँ जाने क्यूं सम्हाले रखे थीं वे कपड़े।

एक दूसरी पोटली खोली तो सबसे ऊपर रखी मिली लैदर के कबर में फंसी एक कटार। याद आया कि उन दिनों हर दूल्हा अपने ब्याह के दस दिनों में तमाम अला-बला से सुरक्षित रहने के वास्ते ऐसी कटार अपने दांये कंधे से बांये कूल्हे तक लटकते बेल्ट के साथ कमर में बांधता था। हमारे घर में जानें कैसे आ गयी थी यह कटार, जिसकी वजह से हमारे घर की पूछ-परख पूरे मोहल्ले में थी, जिसे भी जरूरत होती अम्माँ से यह कटार मांग कर ले जाता। कई दावत-पंगतियों के न्यौते तो इसी कटार की वजह से मिलते थे हमे। यही कटार हवेली वाले ठाकुर कक्का के बेटे रामप्रसाद सिंह ने बांधी

थी। रामप्रसाद सिंह की शादी भी क्या आलीशान शादी थी ! गिनके एक सौ पच्चीस टेक्टर में बैठकर बारात गयी थी। जिनमें से दो टेक्टरों में बैठी थी नाचने वाली बाई जरीना के साथ उसकी सहायक चार बाइयें और उनके साजिन्दे, जो उरई से आये थे। जनवासे में उस रात पांच-पांच महफिलें जमी थीं। मैं भी उस बारात में गया था। मैं अलग महफिल में बैठा था तो बड़े भैया अलग में और चाचा अलग महफिल में। दूल्हा की महफिल में था मैं और सारे दोस्त, जहां कि जरीना ने अपनी सबसे कमसिन नर्तकी हसीना को नाचने भेजा था। जिसका गाया गाना आज भी कानों में गूंजता है-

हाय अल्ला ये लड़का कैसा है दीवाना,
कैसा मुश्किल है तोबा इसको समझाना,
धीरे धीरे दिल बेकरार होता है,
होते-होते-होते प्यार होता है।

प्यार होने की इत्ती मुकम्मल और धीमी प्रक्रिया सुनते हुए उस रात हम सबको पहली बार अहसास हुआ था कि अब हम जवान होने लगे हैं।

कटार वाली इसी पोटली में कागज में बंधी एक पुड़िया मिली थी जिसे खोला तो उसमें से तिल के लड्डू निकले थे। तिल के लड्डू को देखा तो संक्रांति के बहाने सारे त्यौहार याद आये। जब दूसरों के यहां अनेक व्यंजन बनते थे और हमारे यहां मिटटी के कल्ले-तवा की रोटी और पानीदार आलू की तरकारी। यदि किसी त्यौहार में मिटी का कल्ला रखने का निषेध होता था तो अम्माँ एक चम्मच तेल के दसवें हिस्से का तेल इस अंदाज में रोटी पर चुपड़कर उसे परांठे का नाम देती थी कि कच्ची रोटी की जगह तेल में पका भोजन समझते हुए भोग पारही मूर्तियां भी धोखा खा जायें। अम्माँ हर त्यौहार पर बने पकवान्न बचा कर रखती थी, जो गर्मी की छुटिटयों मे आने वाले हमारी मंझली बहनजी के लिए रखी जाती थी। इस पोटली में वे तमाम व्यंजन निकले, उन्हें व्यंजन भी कहाँ कह सकते थे, बस ऐसी चीजें थी जो रोज के खाने से हट कर होती थी जैसे होली की आग में भूने गये आटे के टिक्कर और गेंहूं की अधभुनी बालियां, तिल के लड्डू, सेंवइयां, किसी के यहां से बच्चे के जन्म पर भेजे गये गुड़-अजबाइन के लड्डू, मैदा की खिकरियां(पपड़ियां) और सत्तू वगैरह।

एक अलग पोटली में हम लोगों के बस्ते निकले थे, जिनमें से कुछ में तो अब तक हमारी पुरानी रफकापी और किताबें सुरक्षित थीं। वे किताबें जिनमें रसखान के पद थे, रहीम के दोहे और प्रेमचंद की पंच परमेश्वर जैसी कहानी। ऐसे पाठ इस दिनों किसी भी सरकारी गैर सरकारी विद्यालयों के पाठ्यक्रम से बाहर जा चुके हैं।

एक बस्ते में से अनेक फाइलें और छोटी सी डायरी निकली थी। इस डायरी में घर खर्च के कुछ हिसाब लिखे थे- दूध का, राशन का। मैंने पाया कि हरेक पन्ने पर देनदारी बाकी रही थीं जिसे अम्माँ ने हम सबके नौकरी पा जाने के बाद पाई-पाई करके चुका दिया था। इसके पहले लेनदार कितने दिनों तक मांगते रहे।

अब एक और बक्सा खोला था मैंने जिसमें ढेर सारी फाइलें थीं। एक फाइल में ढेर सारे अंतर्देशीय पत्र और बंद लिफाफे में रखी चिट्ठियाँ थीं जो प्रायः मेरी मंझली बहन हमें लिखती थी। किसी में लिखा था कि इसी पत्र के साथ दो सौ रूपया भेजे हैं, जिनसे तुम दोनों अपनी फीस भर देना। किसी पत्र के साथ पांच सौ रूपये थे, जिनसे दिवाली पर घर की कच्ची दीवारों की मरम्तत और पुताई कराई गयी थी। याद आया दिवाली तक पूरे घर की दीवारों पर बरसात की धारों से बन गयी पतली लम्बे सूराखों वाली नालियों की हर दिवाली पर मिटटी से भराई की जाकर, गोबर से लिपाई और सफेद मिट्टी यानी छुई से पुताई होती थी, जिसकी ऊपरी परत हम हम कलई चूना से पोतते थे। बाहर की दीवारों पर मजदूर लगता अन्यथा भीतर वाली सारी दीवारें, संडास और मजोटे (फर्श) हम ही ठीक करते थे।

एक दूसरी फाइल खोली तो सारे कागज पलट लेने के बाद सिवाय जमीन की तकाबी के नोटिस और जमा की रसीदों के साथ एक मात्र हमारे हाईस्कूल का एक प्रमाणपत्र मिला था, जिसमें पितृविहीन होने से मेरे और मंझले फीस माफी की स्वीकृति का जिक्र था। याद आया कि हमारे पास फीस भरने को पैसे न होते थे और नाम कट जाने से हम कई दिनों तक स्कूल भी न जा पाते थे।

एक फाइल में हमारी प्रतिष्ठा और सम्मान के कागजात जतन से रखे मिले मुझे। गहरे लाल रंग का एक निमंत्रण पत्र था जो महाराज जीवाजीराव सिंधिया ने

मेरे दादाजी को भेजा था, जिसका कारण था उनके बेटे चिरंजीव माधव राव का विवाहोत्सव। उस जमाने के निमंत्रण पत्र की भाषा समझने के लिए मैंने यह निमंत्रण पत्र पूरा पढ़ा। अंग्रेजी में छपे इस न्यौते में बहुत आजिजी के अंदाज में सिंधिया परिवार के ब्याह में पधारने का निहोरा किया गया था। यह निमंत्रण पत्र देख कर एक अनूठी समृद्धि से भर गया मैं। यानि कि हमारे दादा इस लायक थे कि उन्हें सिंधिया परिवार से शादी-ब्याह में न्यौता मिलता था। इसी निमंत्रण पत्र के ठीक नीचे उसी बक्से में वह महत्वपूर्ण राजनैतिक पत्र मिला जो राजमाता विजया राजे सिंधिया ने काँग्रेस पार्टी छोड़ते समय अपनी पूर्व रियासत के सारे मनसबदारों को लिखा था।

काठ के एक बड़े से बक्से को खोला तो उसमें से निकले थे हल-बक्खर के दांते और पांसे जो खालिस लोहे से बने थे। जिनसे लिपटी पड़ी थी घोड़े के मुंह में लगने वाली लोहे की लगाम और सवान के पांव रखने की रकाबें। सुना था किसी जमाने में घर में तीन घोड़े थे। खेती के काम काज के लिए दस हल चलते थे घर में-यानी बीस बैल। घर में दर्जन भर दुधारू गायें थीं। जिनके स्मृति चिह्न के रूप में सिर्फ ढोरों के गले में बंधने वाली घंटियां मिली थी, इसी काठ के बक्से में। जाने कितने दिनों से रखे होंगे ढोरों के यह साजोसामान? हमने जब होश सम्हाला न गाय बैल रहे, न घोड़े, बस घंटी और रकाबें थीं।

फिर मिला बंदूक का पट्टा, सफेद झलकता हुआ सूती पट्टा, जिसमें लगे कुंदा बंदूक के कुंदों में ऊपर और नीचे उलझा के कंधे पर बंदूक टांग के अकड़ के साथ निकलते थे दादा। बंदूक याद आयी तो बहुत से किस्से याद आये, दादा की बतायी वो मुठभेड़ भी याद आयी, जिसमें हमारी जागीर में आतंक मचने की वजह से पुलिस बल की मदद करते हुए दादा और दूसरे ग्रामीणों ने डाकुओं से मुकाबिला किया था।

मुकमा भी याद आया और उसकी जीत भी याद आई जो दादा से सुनते रहते थे। पुरखों का चौदह सौ बीघा का चक रियासत के राजा ने लगान न चुकाने की वजह से जप्त कर के सुपुर्दगी में दादा के एक दूसरे रिश्तेदार को सौंप दिया था जिसके लिए दादा ने तब के उच्च न्यायालय कहे जाने वाले महाराज सिंधिया आलीजाह के दरबार में अपील की थी, जिसकी लम्बी सुनवाई के बाद आये फैसले में चक वापस दादाजी को मिला था- एकल नाम से, न कि शामलात में चारों भाइयों को। दादा ने दरबार में हाजिर होकर खुद गुज़ारिश कर पट्टे में अपने साथ अपने अनुजों का नाम जुड़वाया था।...फिर याद आया अनुजों के नाम जुड़वाने का दुष्परिणाम यानि दादा का वो हरामखोर छोटा भाई जिसने मुकद्दमे के फैसले के पालन में सौंपने के सिलसिले में तहसीलदार द्वारा खेत नपती कराते वक्त ही अपने हिस्से की साढ़े तीन सौ बीघा जमीन पंजाब से आये बाहुबली सिखों को बेच दी थी, जिन्होंने धीरे-धीरे करके बाकी तीन भाइयों को तंग करना आरंभ कर दिया था। सच तो यह है कि मुश्किल से वापस मिले चक में से वो चवन्नी का हिस्सा क्या बिका...सब बिखर गये। सब कमजोर हो गये। खैर, ये किस्सा हमारा देखा हुआ न था, बस सुना हुआ था।

फाइलों के बीच निकला ग्राम हापाखेड़ी के स्कूल का हाजिरी रजिस्टर। याद आये पिता, पेशे से स्कूल टीचर थे मेरे पिता, जिन्होंने अपने स्वतंत्रता संग्राम सेनानी पिता की राजनैतिक विरासत और दुश्मनियाँ त्याग कर स्कूल की मास्टरी पकड़ ली थी। पिता से जुड़ी घटनायें याद आयीं। पांच साल की उमर से मुझे सिखाये गये एक हजार इंगलिस वर्ड और उनके मीनिंग याद आए। इतिहास की जानी अनजानी कई शख्सियतें, जैसे- वीर शिवाजी, महाराणा प्रताप, महारानी लक्ष्मीबाई, चंद्रशेखर आजाद जैसे कई इतिहास पुरुष याद आए और याद आया हाथी की तरह भोजन करने वाला महमूद बघर्रा, जिनके किस्से पिता अपने निराले अंदाज में सुनाते थे।

पिता का असामयिक निधन हुआ तो घर पर परेशानी के हालात बने। दरअसल, वे अपने पिता के इकलौते बेटे थे, पिता यानी हमारे दादा की उम्र थी सत्तर साल,सो घर में खाने - पहनने के लाले पड़ गये थे। इसके इलाज में दादाजी ने वही तरीका अपनाया जो हर भारतीय किसान अपनाता है, वे हर साल अपने कस्बे के खेत में से किसी का एक टुकड़ा बेच देते और घर का राशन, दादाजी की दवाइयां, हमारी किताबें एकमुश्त खरीद ली जाती। बस कपड़े नही बनते थे हमारे, जाने क्यों दादाजी को कपड़ा के प्रति जबदस्त नफरत थी

बल्कि यह कहें कि थी, शायद भारतीय किसान की आम प्रवृत्ति उनमें से गयी न थी, कि मोटा पहनो मोटा खाओ, पहनने खाने में ज्यादा खर्च न करो। सो कपड़े दिलाने की याद दादाजी को कभी नहीं आती थी। डर और हिचक के मारे हम उनसे फरमाइस भी नही करते थे। अपने बड़े जीजाजी के पुराने कपड़ों को मुहल्ले के अजुद्धी दाज्जू से अल्टर और फिटिंग कराके पहनते हम। बड़ी और मंझली बहन बड़ा आसरा थी हमारा। वे साल में एक बार अपनी ससुराल से हमारे घर आती। बहन के आने पर हमारे दिन बहुरते कुछ दिनों के लिए, मनमर्जी का खाना बनता,घी लगी रोटी के साथ ठीकठाक सब्जी मिलती, मिठाई खाने को मिलती और गोली-बिस्कुट भी जिनके लिए साल भर तरसते थे हम लोग। दूसरों के कपड़े देख ललचाते हम लोगों को दो-दो जोड़ी कपड़े नये कपड़े सिलाये जाते ।

फाइल में रखा हमारा स्कूल का ग्रुप फोटो निकला एक-ब्लैक एंड व्हाइट। याद आया कि मैं और मंझले एक ही कक्षा में पढ़े थे, पहली से बी.ए. तक। उस समय कक्षा का ग्रुप फोटो निकालने फोटोग्राफर आया और उस दिन हम लोग अपने सबसे अच्छे कपड़े पहन गये थे, लेकिन बिना प्रिंट के सादा कपड़े फोटो में यूं उभर के आये-मुसे तुसे और बेरंगत। हालांकि ब्लैक-एंड-व्हाइट में रंगत क्या आती। लेकिन घर में प्रेस यानी आयरन न होने से कटोरी में अंगारे भर के कपड़े पर रगड़ते थे। यह फोटो धुलकर आया तो उसकी कीमत थी पच्चीस रूपया। सबने ले ली, हम नहीं ले पाये, इस ग्रुप फोटो की कॉपी। फिर जब बहनजी आयीं तो चार महीने बाद फोटोग्राफर के तमाम निहोरे करके हम एक कॉपी हासिल कर सके थे।

रेशमी कपड़े की एक पोटली देख मेरा मन पुलकित हो गया। कस्बे के माता मंदिर के महंत जी द्वारा प्रसाद रूप में दिये गये कपड़े थे इसमें, जो कि वहां की राम लक्ष्मण की मूर्तियों को श्रद्धालुओं द्वारा चढ़ाये जाते थे और साल भर तक मूर्तियों को पहनाने के बाद हमको प्रसाद दे दिया जाता था, हम कपड़े को पहनते हुए भी डरते थे, क्योंकि मूर्ति के पहने हुए कपड़े भी पवित्र। मातामंदिर की याद आयी तो उसके पीछे बना साधु आश्रम यानि अस्थान याद आया । पिताजी की असामयिक मौत के बाद हम दो भाइयों का बचपन तो इसी आश्रम में बीता था, आज भी ताज्जुब है मुझे कि जिन घड़ियों में लोग नास्तिक हो जाते है उस क्षणों में हम आस्तिक हो उठे थे। उसी आस्तिकता का नतीजा था उस अस्थान से हमारा लगाव होना, साधु सम्प्रदाय, अखाड़ों और टकसाली परम्परा का ज्ञान। सिद्वांत पटल का मुखाग्र हो जाना। अस्थान से जुड़ी कितनी सारी कहानियां याद आयीं। कितने साधु याद आये... सबसे ज्यादा बूढ़े बाबा। किसी रजवाड़े में रसोइया रहे थे बूढ़े बाबा, जिन्हें सोने और चांदी की मोहरे गर्म कर दाल में तड़का लगाने का हुनर आता था, उन्हें दर्जन नस्ल के घोड़ों की पहचान थी, दो फिट लम्बाई से लेकर चार फिट तक लम्बी तलवार चलाने में भी जो खासे पटु थे। लेकिन जाने क्या राज था कि वे अपना नाम किसी को नही बताते थे, मन्दिर की आरती हो या कोई यज्ञ, वे अपनी रसोई छोड़ के कभी मन्दिर में परनाम करने झांकते तक न थे-कैसे अजीब साधु थे।

पता ही न चला कि पूरी दोपहर बीत चली थी। हर सामान के साथ मैं उससे जुड़े समय में खोता रहा। उस समय में जाता रहा। लौट कर वर्तमान में आता रहा।मेरे साथ अम्माँ भी बीते हुए समय में जाती रही, आती रही।

पता नही कब उन्होंने खाना बना लिया था और मेरे लिए थाली परस लायी थी। बहुत पतली पापड़ सी रोटी और मूंग की सादा दाल में जो स्वाद था वह किसी कुक के बनाए खाने में क्या होता! बहुत चाव से खाना खाया मैंने।

हम तो पढ़लिख कर अपनी अपनी नौकरियों पर बाहर गांव चले गये, इस खानदानी घर में सिर्फ अम्माँ रहती है, जिन्होंने किसी के साथ जाना नहीं स्वीकारा। जिद से कभीकभार हम ले भी जाते हैं तो महीना पंद्रह दिन में घर लौटने के लिए बखेड़ा शुरू कर देती हैं, बखेड़ा यानी कभी खाना छोड़ देंगी तो कभी बोलना। हम इस बाल हठ पर हंसते हैं तो और ज्यादा कुपित होती हैं। फिर अन्ततः वापस अपनी इस दुनिया में लौट कर भर भर भुजा भेंटती है- मढ़ा के अपने सामान से, नीम के पेड़ से, तुलसाने से और खम्भों व कनारियां तक से। गांव की खेती वे ही सम्हालती हैं और इस हुनर से सम्हालती हैं कि अच्छे किसान भी उनके सामने कहीं नही लगते।

सारा सामान निबेर लिया लेकिन मुझे हायर सेकेण्ड्री स्कूल का वह प्रमाणपत्र नही मिला जिसके लिए इतनी खुद्दा-बखेरी की।

अम्माँ की सारी पोटलियाँ और बक्से अपनी जगह ज्यों के त्यों रख मैं मढ़ा से बाहर आया और पसीना पोंछ रहा था कि अचानक अम्माँ ने याद दिलाया कि बैठक में बड़े भैया का हायर सेकेण्ड्री वाला प्रमाणपत्र एक तस्वीर के कांच में मढ़ा हुआ टंगा है, कहीं उसी के पीछे तुम लोगों के कागज तो नहीं लगे।

क्षीण से उत्साह में भर के मैंने भैया का वह प्रमाणपत्र उतारा और पीछे का प्लाय का टुकड़ा खोलने लगा।

वाह री अम्माँ की याददाश्त ! हम सबके प्रमाणपत्र वहीं थे। एक के पीछे एक सुरक्षित रखे हुये, मढ़े हुये।

कुछ देर बाद मैं अपनी चीज मिल जाने पर खुश हो कर अम्मां के तिलिस्मी संसार को ज्यों को त्यों छोड़ कर घर से बाहर निकल रहा था।

अम्मां निस्पृह भाव से मुझे पांव छूता हुआ देख रही थी। जिनकी दूसरी आंख अपने मढ़ा के बिखरे सामान पर थी जिसे उन्होंने मुझे यथावत जमाने नहीं दिया था कि मैं जमा लूंगी जुगत से। जुगत यानी युक्ति भी और धीमे-धीमे भी।

घर के बाहर निकलने पर मेरा मन अपने आस पास दौड़ते वाहनों और शोरगुल के असर से वर्तमान समय के अपने जीवन की निश्चिंतता और आनंद में आहिस्ता-आहिस्ता लौटने लगा जो दिन भर से पचास साल पुराने समय में फंसा हुआ एक अजीब सी कैद और तकलीफ से भरा हुआ घुटन महसूस कर रहा था।

संपर्क- राजनारायण बोहरा, MIG 89, ओल्ड हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी, बस स्टैण्ड दतिया
MP DATIA- 475661 मोबाइलः 98266–89939, E-mail: raj.bohare@gmail.com

बीस रुपये का नोट

श्रीनारायण पाण्डेय

यह नोट मीठू का है। यह नोट उन नोटों में नहीं है, जिनका रातोंरात अवमूल्यन किया गया था। यह नोट प्रेम की सुरक्षा का कवच है। प्यार की निशानी है। मानव मूल्यों की संवाहक है। आज के सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक जीवन को देखते हुये, यह मान लेने में कठिनाई होती है कि मानव-मूल्यों को हम बचा पायेंगे? मगर कहीं से जब उसकी एक किरण झलक-झलक उठती है, तब लगता है, नहीं इन्सानियत जिन्दा है।

बड़ों की बात माननी चाहिये–रवीन्द्रनाथ ने कहा है -

"गहन रात में, जलता है ध्रुवतारा
ओ, रे! मेरे मन के पंछी, होओ मत दिशिहारा"
(निबिड़ अँधारे ज्वलेछे ध्रुव तारा
मन मारे परवी होश नि दिशाहारा")

मेरे लिए मीठू का नोट ध्रुवतारा है। हमारे जैसे बहुतेरों के लिये/जो लम्बी उम्र काटकर जी रहे हैं। जो कभी केन्द्र में थे मगर आज हाशिये में हैं। सब समय की मार के शिकार हैं। सभी कहते हैं –

"मेरे डूब जाने का कारण न पूछो।
अफीना (नौका) किनारे से टकरा गया है।"
जीवन के आखिरी पड़ाव पर मुसीबत आई है।

आखिर यह असहायता बोध क्यों? मैं भी बानबे वर्ष की देहली पर दस्तक लगा चुका हूँ। जब कभी मन दिशाहारा होता है, मीठू की इस ललछौरी की नोट को निकाल कर देख लेता हूँ। यह नोट हमारी प्रपौत्री मीठू ने तब दिये हैं, जब मैं, कुछ दिन उनके साथ रह कर वापस आ रहा था। दो बहनें हैं, बड़ी अब समझदार हो गई है। आते समय हमने पूछा, मीठू कैसी नोट लोगी। मीठू ने कहा, बाबा बड़ी नोट दो। बदस्तूर दोनों बहनों को पाँच-पाँच सौ के नोट थमा दिया।

जब मैं कार में बैठ गया, तब मीठू अपनी माँ के साथ आयी, और उसने एक ललछौर नोट हमारे हाथ में रख दिया। हमने समझा हमारी नोट वापस कर रही है। कहा, मीठू। हमने तुम्हें और दीदी को नोट दिया है, इसे अपने पास रखो। वह मान नहीं रही थी। उसकी माँ ने कहा, दादा जी! यह नोट उसे मिली थी। वह आपको बहुत प्यार करती है। प्यार के नाते आपको दे रही है। हमने रख लिया। मीठू खुश हो गयी। मैने उसे सँजोकर रखा है। जब जब मिला हूँ, तब तब ललछौरी नोट का रंग प्यार से और गहरा जाता है।

मुझे भीष्म साहनी की चीफ़ की दावत' याद आयी, साथ ही प्रेमचन्द की 'बूढ़ी काकी'। मीठू को देखकर लगा, नहीं, बच्चों के दिल में बुजुर्गों के लिये जगह है। करीब सौ साल का नकशा हमारे सामने है। इधर पचास वर्षों में नोटों का अवमूल्ययन जितना हुआ है, हमारे, सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक जीवन में मनुष्य का अवमूल्यन कहीं

ज्यादा हुआ है। जिसे केन्द्र में होना चाहिये था, वह हाशिये में है। पारिवारिक विघटन में जिसके/शिकार पहले माँ-बाप हुए हैं। वृद्ध मीठू ने अपने नोट वृद्ध बाबा को दिये हैं। मैं घनी मानी वृद्धों की बात नहीं कर रहा हूँ। यों वे भी इस विघटन के शिकार हैं। बुढ़ापा कारण नहीं है। आदमी बुढ़ापे से निजात चाहता है। निजात चाहता है क्योंकि बुढ़ापे की शारीरिक और मानसिक यन्त्रणा असह्य होती है। प्रतापनारायण मिश्र ने स्वानुभूति को लिखा है–

हाय बुढ़ापा। तुमरे मारे, अब तो,
हैं नकुआय गयन।
करत धरत कछू बनते नाहीं,
कहाँ जाऊँ और कइस करन।।

बुढापे में 'नकुआ' जाने के कई कारण होते हैं एक तो शारिरिक अक्षमता, एवं दूसरा परनिर्भरता (दूसरे इस असमर्थता के कारण वह जितनी गलतियाँ करता है, उससे अधिक अपमानित किया जाता है। जैसे, बिस्तर पर चाय गिरा देना, पानी गिरा देना अर्मद और कुछ। उसके खाने-पीने के बर्तन तक अलग होते हैं। खाने पीने की कोई चीज़ माँगना गुनाह है। उसकी जिन्दगी पिंजड़े के उस तोते जैसी होती है, जिसे पिंजड़े में खाने-पीने की चीज़ें आदर-प्रेम से दी जाती हैं, मगर बूढ़े को जो दिया जाता है, उसमें फर्ज अदायगी ज्यादा प्यार सम्मान कम होता है। वह निस्सहाय एकाकी जीवन जीता है।

दरो दीबार हो जिसमें,
वही ज़िन्दा (जलखाना) नहीं होता।।

एक ओर उम्र की कैद दूसरी ओर परिवार की उपेक्षा की कैद में जीवन बिताता है। तनहाई आज के वुजुर्गों की नियति बन गई है। इस तनहाई में अगर "भार्या वियोग" (पत्नी मर गई हो) और हों तो, बिना आग के ही जलता रहता है।

भार्या वियोगा, स्वजनो पवादो,
ऋणास्य शेषे, कृपणस्य सेवा,
विपत्ति काले प्रिय दर्शनं च,
विनाग्निनं पंच दहन्ति काया।।

अभी तक हमने पत्नी-विहीन, स्वजनों द्वारा निन्दित परिवार द्वारा अवहेलित, वृद्ध की मनोदशा का उल्लेख किया। वृद्धा का नहीं। क्योंकि उनकी मनोदशा का वर्णन मुक्त-भोगी महिलाएँ ही कर सकती हैं।

उन वृद्धों की विपत्ति कुछ और है। जिन की भार्या (पत्नी) जीवित हैं। आज जमाना ऐसा है कि लड़के बँटवारे के समय माँ, बाप को भी बाँट लेते हैं। कहीं-कहीं दोपहर शाम तक की पारी बाँध देते हैं। सोचिये ऐसे बूढ़ों की क्या हालत होती होगी। मैं फिसाना नहीं कह रहा हूँ, हकीकत है। सुना नहीं आँखों देखा है। यह जानते हुए भी कि मुझे भी बूढ़ा होना है, उनके साथ यह व्यवहार किया जाता है।

एक दन्त कथा है। एक बहू अपनी सास के लिए 'परई' (मिट्टी का बर्तन) में खाना रख कर बेटे के हाथ भेज दिया करती थी। कह देती थी, परई फैंकवा देना। मगर बेटा दादी के खाने के बाद परई सँजोकर रख़ता गया, कि माँ को काम आयेगी बहू ने एक दिन देखा, बहुत सी परई एक जगह रखी है। बेटे पर बिगड़ने लगी। बेटे ने कहा, माँ मैंने इसे इसलिए रखा है कि तुम्हें इसी में खाना दूँगा। नाहक पैसा खर्च कर बाजार से परई नहीं लानी होगी।

मुद्दत से चली आ रही – इस दंत-कथा की प्रति-ध्वनि आज भी सुनायी पड़ रही है। मगर बड़े सुनते कहाँ हैं। कथा कह रही है, हतास न होओ, बड़े नहीं, ये बच्चे बूढ़ों की नैया के खेवैया है। वही सुरक्षा कवच हैं। वे दर्द जानते हैं।

मगर यह न समझिये कि सारा दोष बेटे - बहुओं का ही है। इसके लिए जिम्मेदार बदलता समय और वृद्धों का स्वभाव भी है। हमारी अवहेलना हो रही है, यह मनोग्रन्थि उनपर हावी हो जाती है। वे, हाट-बाजार मंदिर-मेला, पार्क, सभा-सोसाइटी जहाँ भी कहीं जाते हैं, दस-पाँच और बूढ़े मिल ही जाते हैं, सभी शिकायत का पुलिन्दा खाले कर बाँचना शुरू कर देते हैं। जैसे सितार के एक तार के बजते और भी झन-झनाने लगते हैं, वैसे ये भी सुर में सुर मिलाने लगते हैं। इसका कारण है। ये

समय के बदलाव की अनदेखी करते हैं। आज वद्धों की जो पीढ़ी जिन्दा है, वह ज्यादातर 60 से 100 साल के भीतर है। वे अपने पुराने खयालों, मनसूबों को प्रसिद्धियों के बच्चे की तरह चिपकाये हैं। जैसे सँड़ाध आ जाने पर भी बँदरिया उसे फेंकना नहीं चाहती, उसी तरह ये भी, अपने खयाल चिपकाये रहते हैं।

राम की कितनी भी ऊँची प्रतिमा क्यों न स्थापित की जाय, अब न राम जैसा बेटा मिलेगा, न लक्ष्मण जैसा भाई न सीता जैसी बहू। जो सुबह माँ बाप को प्रणाम करे, भाई का पैर दबाय और सास-ससुर की सेवा न कर पाने पर पछताने वाली बहू।

राम-प्रात काल उठि के रघुनाथा।
मातु पिता गुरु निर्वाह माथा।।
सीत-सेवा समय दैअ बन दीन्हा।
मोर नोरथ सफल न कीन्हा।। 2/68/4
लक्ष्मण-तेइ दुइ बन्धु प्रेम जनु जीति।
गुरु पद कमल पलोटन प्रीति।।
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता।
पौढ़े धरि पद जल जाता।। 1/225/5/6

कैसे मिले। आज तो रोटी-रोजी के चक्कर में बेटा, भाई, देश, विदेश का चक्कर काट रहा है। हालत यह है कि मरते समय चाहकर भी मुँह-नहीं देख पाता। बाप भी जानता है कि "माना कि तगाफुल (देर) न करोगे, लेकिन खाक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक।" 13 दिन का काम तीन दिन में निपटा कर, वापसी। जमाने की मार वृद्ध और परिवार दोनों पर पड़ रही है। घर बैठे तो पेट भरता नहीं। इस बदलते परिवेश में भी माँ-बाप को संभाल कर रखना हमारा, सामाजिक और नैतिक दायित्व है।

सर सूखे पंछी उड़े, और सरन सँमाहि।
दीन-मनि विनु पंख के, कहु रहीम कहँ जाहिं
आखिर ये दीन मनि जायें कहाँ?

हमें सीखना चाहिए चीफ़ की दावत की माँ से, बूढ़ी काकी की भीतजी से और हमारी मीठू से। बूढे-माँ बाप केवल सद्व्यवहार और प्यार चाहते हैं।

जिस तरह काबुली वाला (रवीन्द्रनाथ) अपनी बेटी की हँथेली की छाप, सँजोकर रखे हैं, देख लेता है, रोशनी आ जाती है। उसी तरह मैं भी अपनी मीठू की ललछोरी नोट निकाल कर देख लेता हूँ। बड़ों का आदर मीठू पूरी कर देती है।

एकदिन मैंने कुहू से कहा, छुही हो गई है, दोनों चली आओ। कुहू ने मीठू से कहा, मीठू, बाबा के यहाँ चलोगी। मीठू बोली, हूँ। चलूँगी। मैं उनके आने का इन्तजार कर रहा हूँ।

संपर्क : श्रीनारायण पाण्डेय, 212/3F बक्सी खुर्द, देवगंज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश : 211006
मो. 8004040576

कबीर का जादुई यथार्थ

राणा प्रताप

कहते हैं, जब कबीर शरीर त्यागे तो भारी झगड़ा हो गया। हिन्दू कहते, हम जलायेंगे। मुसलाम कहते, हम दफनायेंगे। सोचने की बात है, कबीर जैसे व्यक्ति के पास रहकर भी लोग कैसे चुक जाते हैं। अंधेपन की एक सीमा होती है, अंधेपन की सीमा तोड़कर भी कुछ लोग अंधे बने रहते हैं। जिंदगी भर कबीर के संगम में नहाया और कुछ भी मैल न धुला। लाश पड़ी है लोग लड़ रहे हैं। और जब चादर उठाकर देखा तो पाया कि कबीर वहाँ है ही नहीं! बस, कुछ फूल पड़े हैं।

यह जो फूलों के प्रतीक की कथा है, बड़ा सिंबालिक है। इसे चमत्कार कथा कहें तो कह सकते हैं। इससे कोई फर्क नही पड़ता। मगर, इस चमत्कार कथा में जो निगूढ़ता है, वही प्रधान है। जादुई यथार्थ! कबीर एक नई राह बनाने की कोशिश कर रहे थे। यह राह थी, प्रेम की राह। उस राह में हजारों किस्म के झाड़, झंखाड़ उगे थे। काँटे-ही-काँटे बिछे थे। कबीर इन झाड़, झांखाड़ों में आग लगा कर बाड़ी को साफ-सुथरा बनाना चाहते थे। इसलिए कि उस साफ सुथरी जगह में प्रेम का पौधा रोप सके।

प्रेम का पौधा कोई साधारण पौधा तो होता नहीं, वह हमेशा खिलखिलाता रहता है। दुःख की घड़ी में भी वह मुरझाता नहीं, खिलखिलाता रहता है और बेवकूफों को मुँह चिढ़ाता रहता है।

..... तो भाई जान! यह जो कबीर के पार्थिव शरीर का फूलों में बदलना है, मनुष्यता को बचा ले जाने की पॉवरफूल प्रतीक कथा है। आज के समय में इसे बचा लेने की भारी चुनौती हम सबों के सामने है।

संपर्क - राणा प्रताप, बेंगोली कॉलोनी, बेगमपुर, पटना सिटी, **पिन :** 800009 बिहार, **मो:** 9234763168,

भैंस

इब्ने इंशा

यह बहुत मशहूर जानवर है। कद में अक्ल से बड़ा होता है। चौपायों में यह अकेला जानवर है, जो संगीत में रुचि रखता है। इसीलिए लोग इसके आगे बीन बजाते हैं, किसी और जानवर के आगे नहीं बजाते।

भैंस वैसे काफी दूध देती है, लेकिन वह काफी नहीं होता। बाकी दूध ग्वाला देता है और दोनों के आपसी सहयोग से हम शहरियों का काम चलता है। लेकिन दूध को छान लेना चाहिए, ताकि मेढक निकल जायें।

('उर्दू की आखिरी किताब' से)

अफसर कवि

हरिशंकर परसाई

एक कवि थे। वे राज्य सरकार के अफसर भी थे। अफसर जब छुट्टी पर चला जाता, तब वे कवि हो जाते और कवि जब छुट्टी पर चला जाता, तब अफसर हो जाते।

एक बार पुलिस की गोली चली और दस-बारह मारे गये। उनके भीतर का अफसर तब छुट्टी पर चला गया, और कवि इस कांड से क्षुब्ध हुआ। उन्होंने एक कविता लिखी और छपवायी। कविता में इस कांड की और मुख्यमंत्री की निन्दा की।

किसी ने मुख्यमंत्री को यह कविता पढ़ा दी। अफसर तब तक छुट्टी से लौटकर आ गया। उसे मालूम हुआ तो वह घबड़ाया और उसने कवि को छुट्टी पर भेज दिया।

अफसर कवि ने एक प्रभावशाली नेता को पकड़ा। कहा, 'मुझे मुख्यमंत्री जी के पास ले चलिए। उनसे क्षमा दिला दीजिए।'

नेता उन्हें मुख्यमंत्री के पास ले गये। उन्होंने परिचय दिया ही था कि कवि ने मुख्यमंत्री के चरणों पर सिर रख दिया।

मुख्यमंत्री ने कहा, 'यह वह कवि नहीं हो सकते, जिन्होंने वह कविता लिखी है।'

('परसाई रचनावली' खंड-2 से)

प्यार

डॉ. रूपसिंह चंदेल

रात के आठ बजने वाले थे। लेकिन दोनों का मन अभी घर जाने का नहीं हो रहा था। अतः सेण्ट्रल पार्क के एक ओर घास पर बैठकर बातें करने लगे।

"कल तुम्हारा क्या कार्यक्रम रहेगा?" लड़के ने लड़की का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाते हुए पूछा।

"अभी कुछ कह नहीं सकती।"

"प्लाजा में बहुत अच्छी पिक्चर लगी है। चलोगी?"

"नहीं।"

"देखो, रंजना मुझे तुम से यही एक शिकायत है। जब भी पिक्चर के लिए कहता हूं, तुम मना कर देती हो। जब हम दोनों एक दूसरे को प्यार करते हैं तब—अच्छा वोल्गा चलोगी?"

"नहीं।" रंजना कुछ गंभीर हो गयी.

"क्यों?"

काफी देर तक खामोश रहने के बाद वह बोली, "रंजन, मैं आज तुमसे एक बात कहना चाहती हूं।"

"हां—हां—कहो।"

"तुमने मुझसे—तो अब हमें शादी कर लेना चाहिए। तभी कहीं आना-जाना अच्छा लगेगा।"

"हां—हां—क्या—?" रंजन का स्वर लड़खड़ा रहा था। रंजना उसके चेहरे की ओर गंभीरता से देख रही थी।

रंजन चुपचाप उठ खड़ा हुआ और लड़लखड़ाते स्वर में बोला, "म—म—माफ करना, रंजना। एक जरूरी काम याद आ गया है—अच्छा मैं चलता हूँ।"

और वह सड़क की ओर लंबे-लंबे डग भरता हुआ बढ़ गया। रंजना हत्प्रभ उसे जाता देखती रही।

डॉ. रूपसिंह चंदेल मो. : 8059948233

नई नौकरानी

डॉ. नीरज दइया

अभी दो महीने ही पूरे नहीं हुए मुझे इस घर में काम करते हुए और अचानक आज मां सा ने कह दिया- 'सुनो! कल से काम पर नहीं आना।' इस दिनोदिन बढ़ती मंहगाई में हम जैसी को जब तक दो-चार घरों में काम नहीं मिले तो गुजर-बसर कैसे हो... चारों तरफ हाय तौबा मची हुई है। मुझे रहा नहीं गया, मैं बोल पड़ी- 'क्यों मां सा क्या हुआ? मुझ से कोई गलती हो गई क्या?'

मां सा नरम पड़ गई और बोली- 'नहीं री... गलती कैसी। ऐसा है मुझ से इस उमर में घर का कामकाज होता नहीं। वैसे हमारे घर में काम है भी कितना सा... चार जनों की रोटी बनाना और साफ-सफाई।'

-'तो मैं आप जब कहो आ जाती ना.... बताओ जल्दी आना है या फिर लेट...?'

-'अरे नहीं तू बहुत भोली है री। देख इत्ते दिन बहू अपने पीहर गई हुई थी। अब वो कल आ रही है। वही करती थी पहले और अब भी कर लेगी...।'

मैं मन मसोस कर रह गई। क्या कहती? पर मन ही मन में तो अपने आप बोल फूट ही गए- 'अच्छा कल तुम्हारी वाली नई नौकरानी आ रही है।'

संपर्क- सी-107, वल्लभगार्डन, पवनपुरी, बीकानेर- 334003 राज मो. 9461375668 drneerajdaiya@gmail.com

सहानुभूति

शशि कांडपाल

मोहल्ले की दुकान गर्मियों के दिनों में शाम पाँच बजे से पहले न खुलती। इस दुकान पर निर्भर लोगों के घर में अगर कुछ सामान खतम हो जाए तो एकाध चक्कर यूं ही लगा कर देख लेते कि दुकान खुल तो नहीं गई? लेकिन दुकानदार मोहल्ले के लोगों की आदतें न खराब हो जाये इसलिए ज़्यादातर समय होने पर ही खोलता। दोपहर बाद ढाई बजे किसी तरह बंद कर पाता सो सुबह से खड़े खड़े उसे भी कुछ समय के लिए आराम की दरकार होती। हालांकि दुकान में पत्नी भी हाथ बंटाती और छोटा भाई भी लेकिन भीड़ बनी ही रहती और कई ग्राहक एकसाथ निपटाने होते। दिल्ली जैसे शहरों में लोग हवा के घोड़े पर सवार होकर आते हैं और जिन दुकानों पर सामान देने में ज्यादा समय लगता उनके अन्य विकल्प ढूंढ डालते। ये बात दुकानदार के परिवार भर को फुरतीला बनाए रखती। उनकी तरफ से एक सुविधा हमेशा थी कि यदि किसी घर में अकस्मात मेहमान आ जाएँ दूध या नाश्ते की जरूरत हो तो ग्राहक एमेरजेंसी में समान पा सकते हैं लेकिन यह सुविधा का बेजा इस्तेमाल न हो इसके लिए गलत कारण बता कर लिए गए समान के लिए बाकायदा बेइज्जती भी कर दी जाती।

कड़ी दोपहर में करीब साढ़े चार बजे कमजोर हाथों से डरते हुए दुकानदार का पिछला दरवाजा थपथपाया गया,तीसरी बार में आराम करते लोगों ने भीतर आवाज सुनी। दरवाजे की जाली से देखा तो त्रिखा आंटी छड़ी के सहारे खड़ी थीं। चट बरामदे में आराम करती दुकानदार बहू उठ आई।

आज आप आंटी जी?सुबह नौकरानी से कुछ मंगाना भूल गईं थी क्या?

नहीं बेटा, अभी घर पर कुछ लोग आने वाले हैं,शायद बेटे ने कुछ सामान भिजवाया है सो उन्हें कुछ नाश्ता तो कराऊँ न? पाँच बजे आती तो काफी देर हो जाती,तुम्हें तो पाता है मैं कितना धीरे चल पाती हूँ। हाँ आंटी, कोई बात नहीं, थोड़ी देर में खोलने ही वाली थी तो थोड़ा जल्दी ही सही। सामने से आकर बताएँ कि क्या क्या सामान देना है? बहू बताया गया सामान देती जा रही थी और आंटी, की बहू-बेटे के व्यवहार पर अफसोस तथा टीका टिप्पणी भी करती जा रही थी। सारे सामान का मिलान करने के बाद आंटी के काँपते हाथों से बटुए से रुपये निकालने में भी मदद की। उनके बुढ़ापे पर सहानुभूति जताकर अपने बुढ़ापे के प्रति आशंका भी जताई कि न जाने मेरा क्या हाल होगा? आंटी का हिसाब होने के बाद दुकान की दो सीढ़ियाँ ठीक से उतरने की हिदायत देती बहू काउंटर पर तब तक खड़ी रही जब तक आंटी सुरक्षित उसकी आँखों से ओझल नहीं हो गई।

एक गहरी सांस लेकर पलटी ही थी कि अपनी सास को ठीक पीछे खड़ा पाया। पल में ठंडी सांस फुफकार में बदल गई और बोली आप यहाँ क्या कर रही हैं?आपसे कितनी बार कहा है कि अपने काम से काम रखिए और दुकान में मत आइये और एक तरह से घसीटती-सी रसोई की तरफ धकेलती बोली, 'जाइए और जाकर सबके लिए चाय बनाइये।" सास धकेले जाने से अपमान और अशक्त पैर के दर्द से कराह उठी ओर बेहद धीमी आवाज में इतना ही बोल पाई "मैं दुकान में दूध की थैली लेने ही आई थी" और फ्रीजर का दरवाजा खोलकर दूध की थैली पहचानने की कोशिश करने लगी, डबडबाई आँखों से सब कुछ धुंधला दिख रहा था।

संपर्क : 14/1005, इंदिरा नगर, **लखनऊ** - 226016
मो. 7860290146

भरोसा

डॉ. रंजना जायसवाल

इन दिनों घर में कुछ माहौल ठीक नहीं चल रहा था। अभय ने सोचा माँ-पिताजी से इस संदर्भ में बात कर ले, पर वे सुनने को तैयार नहीं थे। सुधा की गलती इतनी बड़ी भी नहीं थी जिसे माफ न किया जा सके। सुधा और अभय का प्रेम विवाह हुआ था। माता-पिता को सुधा बिल्कुल पसन्द नहीं थी, इसलिए आए दिन कोई न कोई मसला खडा हो ही जाता था। अभय ने साइकायट्रिस्ट दोस्त से बात की और चुपचाप अपने माता-पिता को उससे मिलवाने चल पड़ा। सूरज की रौशनी छन कर कमरे में आ रही थी। थोडी औपचारिक बातचीत के बाद डॉक्टर मित्र ने पूछा,

"अंकल! अगर विश्वास करने की बात आए तब आप किस पर विश्वास करेंगे बेटे पर या दामाद पर...?

सिन्हा दम्पति ने तपाक से कहा

"स्वाभाविक सी बात है बेटे पर..''

डॉक्टर साहब ने एक गहरी सांस ली और कहा,

"एक और सवाल विश्वास करने की बात आए तो आप किस पर विश्वास करेंगे बेटी पर या बहू पर...'

कमरें में सन्नाटा छा गया और सूरज की रौशनी मद्धिम पड़ चुकी थी। अचानक अंधेरा भर गया शायद कमरे में नहीं रिश्तों में...

संपर्क : लालबाग कॉलोनी, छोटी, मिर्जापुर - 231001 (उ. प्र.) **मो.** 9415479796

लौटता बचपन

वीना सिंह

नव्या के दादा-दादी गांव छोड़कर शहर आ तो गये, लेकिन उनका मन यहां नहीं लग रहा रहा था। जबतक नव्या घर में रहती, वे दोनों नव्या से चिपके रहते। नव्या की प्यारी-प्यारी बातों से उनका मन बहला रहता लेकिन जब नव्या स्कूल चली जाती तब दोनों खाली हो जाते। समय काटे नहीं कटता, कभी बालकनी में बैठते, कभी कमरे में। बार-बार घड़ी देखते और नव्या की स्कूल बस आने का बेसब्री से इतंजार करते। नव्या के आते ही दादा-दादी के चेहरे खिल जाते, वे उसे गले से लगाकर कहते, तेरे बिना घर बहुत सूना लगता है, कुछ अच्छा नहीं लगता।

छोटी नव्या समझ गई कि मेरे स्कूल जाने के बाद दादा-दादी परेशान रहते हैं, बहुत अकेलापन महसूस करते हैं। आज नव्या की छुट्टी थी, उसने स्टोर रूम से अपने ढ़ेर सारे खिलौने निकाले और कहा, आओ दादाजी हम तीनों खिलौनों से खेलें। दादा-दादी ठहाका मारकर हंस पड़े, "इस उम्र में खिलौने?" नव्या जिद कर बैठी, "प्लीज, दादाजी, दादीजी, मेरे साथ खिलौने खेलिए ना, मैने बहुत दिनों से खिलौने नहीं खेले, आज मेरा बहुत मन है।"

दादी बोली, खेलने का मन तो हमारा भी है, लेकिन हमें यह खिलौने खेलने आते ही नहीं। नव्या चहक उठी, "उसकी आप चिंता न करिये, हम सारे खिलौने खेलना अपको सिखा देंगे, बस शर्त यह है कि आप लोग मेरे स्कूल जाने के बाद परेशान नहीं होंगे, मेरे खिलौने खेलेंगे। दादा-दादी ने हांमी भर दी, फिर क्या, दिन भर में नव्या ने सारे खिलौने खेलने के रूल दादा-दादी को समझा दिये।

दादा-दादी का तो खिलौनों में इतना मन लगा कि वे नव्या के स्कूल जाते ही खिलौने खेलने बैठ जाते। कभी लूड़ो, कभी सांप-सीढ़ी, कभी शतरंज और कभी कैरम की गोटियां खिसकाकर खूब मजे करते। अब नव्या जब स्कूल से आती, तो दादा-दादी को गेम खेलते देखकर बहुत खुश हो जाती। दादा-दादी भी नव्या को गले से लगा लेते और कहते, सच में, " मेरी दुलारी नव्या ने तो हम दोनों का बचपन लौटा दिया।"

संपर्क : 83, महाराजा अंग्रसेन नगर, एल डोरेडे मांटेसरी स्कूल के सामने, सीतापुर रोड,
लखनऊ - 226021 (उ. प्र.) **मो.** 8005419950

एहसास

रमेश मनोहरा

'क्यों साहब आप किराने का सामान महीने भर का इकट्ठा क्यों नहीं ले जाते हो ?' जब दुकानदार ने प्राचार्य बसंत कुमार से पूछा तब बसंत कुमार ने कोई जवाब न देते हुए केवल मुस्करा दिये, तब दुकानदार आगे बोला - साब, आप महीने भर का सामान खरीदने के लिए सक्षम हैं। फिर भी दो तीन दिन में कभी एक किलो दो किलों सामान आप लेने आ जाते हो तो कभी लड़के को भेज देते हो। एक साथ महीने भर का सामान क्यों नहीं खरीद लेते हो ताकि बार - बार आने की झंझट से मुक्ति मिले" – कहकर दुकानदार ने अपनी बात समाप्त की। फिर भी प्राचार्य बसन्त कुमार ने कोई जवाब नहीं दिया। फिर आगे दुकानदार बोला, "साहब आपने जवाब नहीं दिया, जबकि अन्य कर्मचारी आपसे कम पगार लेते होंगे। वे महीने भर का राशन ले जाते हैं,"कहकर दुकानदार ने एक किलो शक्कर तोलकर उन्हें दे दीया। शक्कर का पैकेट अपने थेले में रखते हुए बोले - आप ठीक कहते - महीने भर का क्या? साल भर तक का भी खरीदकर रख सकता हूँ।"

"फिर आप किलो, दो किलो क्यों ले जाते है?"

"अपने खुद के बच्चों को शिक्षा देने के लिए।"

"बच्चों को शिक्षा देने" – मैं समझा नहीं" दुकानदार ने कहा।

"बच्चों को ये एहसास हो कि गरीबी क्या होती है?– गरीब किस तरह से पेट काटकर सामान खरीदता है।"

"मगर इससे बच्चों को कैसे एहसास होगा?" दुकानदार ने फिर पूछा.

"होगा न, यदि महीने भर का सामान खरीदकर रख दूँ, तब उन्हें कैसे एहसास होगा" समझाते हुए बसंत कुमार बोले - इसलिए बच्चों को एक - दो किलो सामान लेने भेजता हूँ, ताकि उन्हें एहसास हो कि गरीबी क्या होती है ?

"समझ गया साहब" दुकानदार यह कहकर दूसरे ग्राहक में लग गया. प्राचार्य बसंत कुमार दुकान से बाहर निकल गये।

संपर्क : शीतला माता गली, जावरा (म.प्र.)
पिन : 457226, **जिला :** रतलाम **मो.** 9479662215

अस्तित्व रक्षक

आशीष दशोत्तर

ईश्वर और पत्थर एक-दूसरे से मुखातिब थे। पत्थर ने कहा, मैं आपका किन शब्दों मे शुक्रिया अदा करूँ, समझ नहीं आ रहा है। आपके नाम ने मेरी तक़रीर बदल दी। आपका मेरे साथ जुड़ना मेरा तो कायाकल्प ही कर गया। आपकी कृपा नहीं होती तो क्या होता। मैं तो ठोकरों में ही पड़ा रहता।

पत्थर की बात सुन ईश्वर मुस्कुराया। शांत भाव से बोला, ऐसा नहीं है मित्र। जिसे जो मिलना है वह मिलता है। तुम्हें यह सम्मान हमारे निमित्त मिलना था, सो मिला। मगर जहां तक शुक्रिया अदा करनेवाली बात है तो यह तुम मत करो। क्योंकि शुक्रिया तो मुझे अदा करना चाहिए तुम्हारा। तुम नहीं होते तो मुझे मानता ही कौन? मैंने कई लोगों को देखा है, जो ईश्वर को नहीं मानते मगर तुम्हारे सामने आते ही अपने दोनो हाथ जोड़ कर शीश झुका लेते हैं। इसलिए तुम मेरे अस्तित्व रक्षक हुए। तुम्हारा यह अहसान है मुझ पर।

ईश्वर और पत्थर की बात इनसान भी सुन रहा था। वह मन ही मन बोला, आप दोनों नहीं होते तो मेरा क्या होता। ईश्वर, आप तो मुझे बनाकर भूल गए, मगर मैं आपको नही भूला। जब कभी संकट में होता हूं आपका ही सहारा लेता हूँ। आपके नाम की आड़ में तो दुनिया को दहला सकता हूँ। और पत्थर नहीं होता तो मैं ईश्वर बनाता किसे?

अब ईश्वर सोच रहा था, मैं तो इनसान को अपनी श्रेष्ठ कृति मानकर खुश हो रहा था। परन्तु इनसान तो मुझ से भी बड़ा रचयिता है। वह जब चाहे ईश्वर को पत्थर और पत्थर को ईश्वर बना सकता है।

पत्थर के साथ ईश्वर भी अब इनसान का शुक्रिया अदा कर रहा था।

सम्पर्क : 12/2, कोमल नगर, बरबड़ रोड़, रतलाम **पिन:**457001(म.प्र.), **मो:** 9827084966

स्लीपर क्लास

चाहत अन्वी

जी ये जेनरल डिब्बा नहीं है। आप सब महिला मंडली अगले स्टेशन पर उतर कर जेनरल बोगी में चली जाइएगा।' ये सुनकर भी महिला मंडली में कोई हलचल नहीं हुई। ठिसुआ कर सज्जन पुरुष फिर बोले- 'टिटिया आएगा तो फाइन लगा देना, एक तो छठ का समय है..... स्लीपर भी साला जेनरल बोगी ही बन गया है। 'मध्यवर्ग में इतनी नैतिकता तो बची हुई है कि अपनी बेटी, बहू, के सामने औरतों को गाली नहीं देते। बेचारों के कंठ में टॉन्सिल तक आकर कहीं रुक जाती है। इस ट्रेन में एक सज्जन पुरुष जिनकी पैतीस वर्ष के आसपास की उम्र रही होगी अपनी गर्भवती पत्नी के साथ छठ के बाद वापस घर लौट रहे थे। साथ में अन्य पारिवारिक मित्र भी थे जिनमें किशोर लड़कियाँ, बच्चे सम्मिलित थे। सब सामान्य था, ट्रेन की रफ्तार भी.... स्लीपर क्लास की मध्यवर्गीय नैतिकताएं भी। छठ का समय, वो भी बिहार में। ये वो कठिन समय होता है जब घाट में जगह नहीं मिलती और ट्रेन में सीट। लोग किसी तरह जुगाड़ करते हुए बिहार आते हैं। ट्रेन झाझा स्टेशन पर रुकी और 8-10 महिलाओं का एक झुंड बोगी में घुस आया । सहमी-सहमी औरतें इधर-उधर देखती हुए बोगी में आगे बढ़ने लगी। यहाँ तक तो सब के लिए सहनीय था लेकिन ये महिलाएँ पैखाने के पास बैठने की जगह के बीच से बोगी में घुस आई .... और उन्ही भद्र पुरुष और उनकी गर्भवती पत्नी की सीट के सामने ही झुंड बना कर नीचे बैठ गई। झुंड की स्त्रियाँ अपने थर्ड क्लास को छोड़ कर आज स्लीपर क्लास के वर्चस्व को चुनौती दे रही थी, फिर क्या शुरू हो गया उन्हें बाहर निकालने का उपक्रम। कुछ यात्रियों को वे चोर गिरोह वाली लगीं और वे अपने सर-सामान के प्रति सतर्क हो गए .... कुछ ने अपने बच्चों को पास बैठा लिया। मिडिल क्लास वालों ने इस डिब्बे से उन्हें निकालने की पूरी कोशिश कर ली.... पर वे भी चुप्पी के साथ मोर्चे पर डटी रही। अंततः सब खा-पीकर सो गए कि अचानक से रात के दो बजे साहब की गर्भवती पत्नी अचानक चिल्ला उठी। आसपास के यात्री अपने सामान के प्रति सतर्क हो गए.... सामान सही सलामत पा कर राहत की साँस ली। भद्र स्लीपर क्लास सज्जन ने देखा जहाँ वो महिलाएँ बैठी थी वहाँ खून ही खून फैला था .... उनमें से एक स्त्री का शायद गर्भपात हुआ था और वो इस पूरी यात्रा में अपनी पीड़ा को चुपचाप सह रही थी। एक बार भी इस मध्यवर्ग की नींद उसने टूटने न दी । उनकी सहूलियत का पूरा खयाल रखा। थोड़ी देर बाद साहब उठे और उस जगह को अखबार से ढँक दिया..... मध्यवर्ग की नैतिकताएं, गर्भस्राव के रक्त के साथ अखबार ने नीचे कहीं छुप गई।

संपर्क : शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, **मो.** 9110909419

पिताजी

छगनलाल सोनी

साहब के बड़े बाबू फोटो फ्रेम के दुकान में व्यस्त थे, वाकया था बड़े साहब के पिताजी नहीं रहे। पूरे दफ्तर के हलचल में दिवंगत पिताजी सुर्खी बनकर छाये रहे। वातावरण में गहन चुप्पी थी, सिर्फ मोबाइल बज रहे थे। पन्द्रह दिन बाद पता चला कि साहब दिवंगत पिता पर पूरे पचास हजार खर्च कर दिये। साहब के गंवड़हे चाचा के मुताबिक पिताजी महिनों से बीमार थे, और इलाज के अभाव मे बेचारे चल बसे। फ्रेमिंग के लिये फोटो का जुगाड़ भी हो गया।

साहब के ड्राइंग हाल में सुनहरे से फ्रेम में पिताजी का निश्छल चेहरा आगंतुकों के आकर्षण का केन्द्र था। साहब अपने बच्चों को अब पिताजी के बारे में बताने लगे, तभी मेम साहिबा आई और टी.वी. ऑन कर दी। बच्चे कलर टी.वी. पर विदेशी फिल्म देखने में व्यस्त हो गये।

संपर्क : सुभाष चौक, भिलाई-3, **मो :** 09826458461

समय-समय की बात

रविशंकर सिंह

बात उन दिनों की है, जब नेताजी सत्ता में थे। उनका जलवा था। वे जहां जाते, वहां लोगों की भीड़ लग जाती। लोगों को उनसे काफी उम्मीदें थीं। लोग उनके दरबार में गुहार लगाने के लिए आते, "हुजूर माय बाप ! हमारे इलाके में सूखा पड़ गया है। भुखमरी है।"

नेताजी के आदेश पर सिपाही लोगों की भीड़ पर डंडे बरसाते, फिर भी भीड़ छंटने का नाम नहीं लेती। लोगों की भीड़ से आजिज़ आकर नेताजी कहते, "कितने जंगली हो गए हैं लोग ! किसी को अक्ल ही नहीं है।"

समय ने पलटा खाया। नेताजी की कुर्सी चली गई। अब उनके आस-पास आदमी तो क्या मक्खियां भी नहीं भिनभिनाती थीं। अपने प्रति लोगों की बेरूखी को देखकर नेता जी कहते, "कितने जंगली हो गए हैं लोग ! किसी को अक्ल ही नहीं है।"

संपर्क : सालडांगा, बरदही रोड, **पोस्ट :** रानीगंज, **जिला :** पश्चिम बर्धमान, पश्चिम बंगाल, 713347. **मो :** 9434390419/7908569540.

लघुकथा

कैलेंडर

रंगनाथ द्विवेदी

ऐसा नहीं कि प्रीति ने कभी अपनें कमरे में कोई नए साल का कैलेंडर न टांगा हो, लेकिन वह हमेशा कमरे में टंगे हुए कैलेंडर को महज़ चंद पन्नों का एक ऐसा मामूली सा दस्तावेज समझती रही जो केवल दीवाल की कील पर टंगा ही इसलिए था कि वे हर महीने में पड़ने वाले दिन और तारीख के बारे में बता सके।

लेकिन शायद जिंदगी का उतार-चढ़ाव इसी को कहते हैं कि आज वही प्रीति है, और उसके कमरे की कील पर टंगा हुआ वही कैलेंडर है, लेकिन इस साल के कैलेंडर के दिसंबर महीने को जब पलटने के लिए प्रीति आगे बढ़ी तो उसकी खूबसूरत आंखें भीगी हुई थी। प्रीति भी कैलेंडर के इस दिसंबर महीने की तरह बिल्कुल तन्हा, अकेली और उदास सी होकर रह गई थी।

यह तनहाई और यह उदासी अब उसके जीवन से कभी दूर नहीं होगी, क्योंकि इस बीते हुए साल ने उससे उसका वह सब कुछ छीन लिया जिसे शायद यह दुनिया खुशी कहती है, क्योंकि इस साल कोरोना की महामारी ने उससे उसका प्यार करने वाला रमेश जैसा पति, हमेशा हमेशा के लिए छीन लिया। अतः इस साल के कैलेंडर को प्रीति दीवाल से तो उतार सकती है। लेकिन अपने दिल से कभी नहीं।

संपर्क : जज कॉलोनी, मियापुर, **जौनपुर** - 222002 (उ.प्र.), मोः 7800824758

वफादारी का इनाम

डॉ. संजय कुमार सिंह

"बड़ी बी मेरी वफादारी का यही इनाम है?" दामोदर सिंह ने कहा," आज मुझे छोटे बाबू ने काम पर से हटा दिया?"

"दामोदर अब कितना काम करोगे?" बड़ी बीबी ने कहा," बूढ़े तो हो गए। पाँच साल से तो मैं मना कर रक्खी थी, अब क्या करूँ? तुम्हें दीखता भी नहीं,। आँखें कमजोर हो गयी हैं... गुदाम का ताला खुला छोड़ देते हो.... कितनी चोरी हो गयी?'

"मैं फिर कहता हूँ बड़ी बी" उसने जोर देकर कहा," ताला खोला गया था। चोर खिड़की से कुछ छींट गये थे, फिर भी मैं जग गया। बिजली रहती तो मैं पकड़ भी लेता।"

"लोग तो कहते हैं तुम मिले हुए थे?"

"बड़ी बी जब बाबू जी असमय रोड एक्सीडेंट में गुजर गए, तब बड़े बाबू और छोटे बाबू बच्चे थे..." दामोदर ने अतीत को कुरेदते हुए कहा," तब मैंने चोरी नहीं की। आज चोर कैसे हो गया?"

बड़ी बी कुछ देर असमंजस में पड़ी रही फिर बोली,'दामोदर कब तक काम करोगे? बोलो?'

"एक साल और?" वह बोला," फिर गाँव लौट जाऊँगा।"

बड़ी बी अंदर गयी और तिजौरी खोल कर एक लाख रू. ले आयी और बोली," लो एक साल का वेतन और जाओ गाँव। छोटे को समझाना कठिन है..."

"बड़ी बी?" दामोदर ने कहा," सवाल पैसे का नहीं है, इज्जत का है..."

"मतलब?" वह चौंकी।

"अभी हटूँगा, तो लोग चोर कहेंगे।" उसने गमछा से आँखें पोंछ कर कहा," एक साल बाद खुद रिटायर हो जाऊँगा..."

बड़ी बी की आँखें फटी रह गयीं। दामोदर नहीं होता, तो सचमुच उसका कारोबार बिखर गया होता, पर वह इस मसले पर छोटे को समझाने में नाकाम रही थी। उससे अब कुछ भी कहना मुमकिन नहीं था।

उसके होंठ काँप कर रह गए।

संपर्क : प्रिंसिपल पूर्णिया महिला कॉलेज, **पूर्णिया** - 854301

मोः 9431867283/6207582597

विभाजन रेखा

डॉ. प्रेमकुमार पांडेय

रविवार का दिन, सुबह-सुबह कॉलबेल घिघनाई तो मैंने हडबडी में दरवाजा खोला। अरे! मिनोहर बाबू। बहुत दिनों बाद घर आए थे। एक वो दिन थे कि मनोहर के बिना मैं अपने आपको अधूरा महसूस करता था। अभी ड्राईंगरूम में हालचाल चल ही रहा था कि अंदर की ओर जाने वाला परदा हिला। पत्नी से नज़र मिली तो उसने आंखों से बुलाया। अन्दर जाते ही वह मुझे किचन में ले गई और हिदायत दी- "देखो,। मैं सब जानती हूं ये तुम्हारे मित्र पैसों के लिए आए होंगे, तुम बड़े भोले हो, जाल में मत फँसना। बाकी जैसी तुम्हारी मर्जी। सुबह सबुह आए हैं चाय पिलाकर टरकाओ।" मनोहर बुरे दौर से गुजर रहा है। जवान बेटा रोड एक्सीडेंट में चला गया। ग़म में उसे लकवा मार गया। मानसिक स्थिति ठीक न होने के कारण नौकरी जाती रही। एक बेटी है जिसने घर बाहर एक कर रखा है। मेरे मन में अपराध बोध है कि दुर्दिन में मुझे अपने प्रिय मित्र की जितनी मदद चाहिए थी नहीं कर सका। शुरुआत में कुछ दिन हालचाल लिया फिर अपने में व्यस्त हो गया। घरेलू झमेले में मानवता विलीन हो जाती है। मैं चाय लेकर निकला तो उन्होंने कहा, "अरे! तू चाय लेकर आ रहा है भाभी जी नहीं हैं क्या?" मैंने जवाब नहीं दिया और हम चाय सुड़कने लगे। औपचारिकता के बाद उसने कहा - "अच्छा रमेश मैं चलता हूं, जरा भाभी जी को तो बुलाओ। मैंने आवाज़ दी तो आंखों से करुणा छलकाती वो आ खडी हुईं। मनोहर ने प्रणाम कर मिठाई का डिब्बा उसके हाथों पर रखते हुए कहा-"भाभी जी आज गुड़िया की सरकारी नौकरी लग गई है। उसने ही कहा था कि आंटी का मुंह मीठा करा कर आइए। बिटिया का आपसे बहुत लगाव है।" मेरी ओर मुखातिब होकर छलछाई नज़रों से कहा-"रमेश बुरे वक्त में ही आदमी की पहचान होती है। सबने साथ छोड दिया पर तुमने मित्रता निभाई। जब खून के रिश्ते पानी हो गए तब तुम खड़े रहे, मुझे गुड़िया ने सब कुछ बता दिया था। वे दाहिने पैर की हवाई चप्पल को जमीन पर घसीटते एक लाइन खींचते चले जा रहे थे। ऐसा लग रहा था कि वे मानवता और दुर्दिन के बीच विवाजन रेखा खींच रहे हों। उनके ओझल होने पर जब मैं मुड़ा तो तो पत्नी आग्नेय नेत्रों से मुझे घूर रही थी।

संपर्क : केंद्रीय विद्यालय, बेंकटगिरी (आ. प्र.) **मो:** 9826561819

तमगा

महेश कुमार केशरी

स्वंतत्रता दिवस का सांस्कृतिक कार्यक्रम अपने पूरे शबाब पर था। स्टेज से कार चालक रफीक मियाँ को आवाज देकर पुकारा गया। रफीक मिंयाँ भीड़ के बीच से धीरे-धीरे चलते हुए स्टेज पर पहुँचे। राष्ट्राध्यक्ष मुदित मन से तमगे की थाली से तमगा लेकर रफीक मिंयाँ के सीने पर टाँगते हुए बोले - "मुझे बहुत फक्र है तुम पर। तुमने कार को आतंकवादियों से बचाकर दसियों लोगों की जान बचाई थी । तुम उस दिन कार में न होते तो पता नहीं उन निर्दोष लोगों की जान कैसे बचती । इस मिट्टी का हक बखूबी अदा किया है तुमने। मुझे गर्व है तुम पर रफीक मिंयाँ।"

तभी राष्ट्राध्यक्ष की नजर रफीक मिंयाँ के आस्तीन पर गई। जहाँ से एक हाथ गायब था। राष्ट्राध्यक्ष ने कौतूहल से पूछा - "ये कब हुआ, और कैसे हुआ?"

रफीक मिंयाँ थोड़ा संभलते हुए बोले - "उस घटना में मेरा एक हाथ चला गया था। एक गोली हाथ में लगी थी। जहर पूरे शरीर में न फैल जाये इसलिये एक हाथ काटना पड़ा। शुक्र है पैसेंजर को कुछ नहीं हुआ, नहीं तो लोग कहते कि मुसलमान था, इसलिए आतंकवादियों से मिलकर हिंदुओं को मरवा दिया! दुःख इस बात का है कि हमारी कौम को बार - बार अपनी देशभक्ति का सबूत देना पड़ता है । लोग हमें शक की नजर से देखते हैं। पता नहीं ये लोग कब तक इस नफरत को सींचते रहेंगें । रही बात मिट्टी की तो सबको इसी मिट्टी में मिलना है। हाँ, एक जहर देश में जरूर फैल रहा है। इस नफरती जहर को अगर ना रोका गया तो जरूर ये मुल्क बरबाद हो जायेगा।" इसके बाद स्टेज पर जैसे सबको साँप सूँघ गया था। और माईक बहुत देर तक खामोश रहा।

संपर्क : श्री बालाजी स्पोर्ट्स सेंटर,
मेघदूत मार्केट, **फूसरो** - 829114 (झारखंड), **मो :** 9031991875

डर

परजन्या सिंह

दोपहर का समय था। धूप चिलचिला रही थी। चौराहे पर सिर्फ कुछ दुकानें खुली हुई थीं। चारों तरफ वीरानी सी पसरी थी। उस दिन स्मृति के ऑफिस में किसी कारण से जल्दी छुट्टी हो गई थी। वह अकेले चौराहे से गुजर रही थी। उसे नामालूम सा डर हो रहा था।वह पीपल के पेड़ के पास पहुंची, तो उसकी रफ्तार तेज हो गई। उसे ऐसा लगा कि कोई उसे गिद्ध नजर से देख रहा है। उसने सोचा वह कोई ऑटो ले ले, लेकिन आसपास कोई सवारी नहीं थी। फिर उसे कुछ समय बाद प्रतीत हुआ जैसे कोई अधेड़ उम्र का वहशी आदमी उसका पीछा कर रहा है। वह पसीने सो तर-ब-तर हो गयी। दिन के उजाले में लगभग उस डरावनी छाया को पीछे छोड़ वह आगे रपट रही थी। ऐसा उसके साथ पहली बार नहीं हो रहा था। अकेले सुनसान रास्ते को पार करते हुए अक्सर वह जहनी तौर पर घबरा जाती थी। लेकिन आज उसकी हालत ज्यादा खराब थी। उसकी सांस में सांस तब आई जब वह कुछ समय बाद किसी तरह सकुशल घर पहुँच गयी। पर्स टेबुल पर रख कर उसने सोचा पता नहीं वह कौन था, जो आज उसे इतना डरा गया। उसे याद आया, दादी बचपन में कहती थी..

औरत के खून में डर है.....

काश! आज दादी होती, तो स्मृति बता सकती कि किसी के खून में डर कैसे और कहाँ से पैदा होता है!

संपर्क : द्वारा अनभय कुमार सिंह - चूनापुर रोड, वाया-मधुबनी,
पूर्णिया - 8543051

आतंकी हमला

पारस कुंज

राम जन्मभूमि परिसर में घुस कर आतंकी-हमले के विरोध में, आज बिहार बंद था। सुबह से ही वह घर में पड़ा-पड़ा उब चुका था। दोपहर बाद घर से बहार निकला। सोचा कुछ मित्रों से भेंट-मुलाकात की जाय।

रास्ते में ही भाई बलवंत जी का मकान पड़ता था, आप 'जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के मंत्री भी ठहरे। पाँव उन्हीं के दरवाजे पर जा टिके। दरवाजे के ऊपर बाई ओर लगे कॉलिंगबेल को दबाया। अंदर घंटी बजने लगी। कुछ ही पल में, किसी की आवाज आई–

"कौन ? ... कौन हैं ? ... ''

"जी मैं हूँ ! ... बलवंत जी से मिलना था ! .."

तभी दरवाजा खुला, एक नवयुवती ने सवालिया नजरों से घूरते हुए पूछा –"आप ? ... आप कौन हैं ? ... और किनसे मिलना है ? ..."

"बेटा ! मेरा नाम प्रेम किशन है। बलवंत जी से मिलना था। हमलोग एक-साथ साहित्यिक-कार्य करते हैं ... क्या वे घर पर हैं ? ..."

"ओह ! ... अच्छा-अच्छा, आप को दादा जी से मिलना है ? ... वे तो अभी घर पर नहीं हैं ! कुछ देर पहले ही निकले हैं। आने में देरी भी हो सकती है ..."

उनकी प्रतीक्षा में वहाँ ठहरना उचित नहीं समझा और मैंने उससे कहा – "ठीक है बेटा ! मैं फिर कभी आ जाऊंगा ... हाँ तबतक एक काम करें ! उनका टेलिफोन नंबर एक कागज पर लिख दें ! नहीं होगा तो मैं, उसी से बात कर लूंगा ! ..."

"ठीक है !" – कह कर वह अंदर चली गई और एक कागज में नंबर लिख कर देने लगी। तभी उसने मुझसे कहा –" अंकल ! आप भी अपना नाम और नंबर लिखवा दें! दादा जी के आने पर उन्हें दे दूंगी।"

मैंने कहा – "ठीक है, लिखिए! .. चौबीस तेईस पाँच बेरानवे ..." मैं बोल रहा था। वह लिखने का उपक्रम कर रही थी, पर लिख नहीं पा रही थी।

मैंने पुनः पूछा – "क्या लिख लिया ? ..."

वह जैसे झेंपते हुए बोली – "नहीं अंकल जी ! समझ नहीं पाई। एक बार फिर से बोलिए न ! ... और हाँ, अंग्रेजी में बोलिए न ! ..."

तभी मैंने थोड़ा स्पष्ट करने के ख्याल से पूछा –

"क्या आपको हिन्दी नहीं आती या समझने में कोई परेशानी हो रही है? ... अभी कौन-सी क्लास में पढ़ती हैं? ..."

वह जैसे लजाते हुए बोली – "अंकल जी....बीएससी पार्ट-टू में!.."

उसकी बातों से मैं सकते में आ गया और सोचने लगा कि, आखिर आतंकी-हमला किसे कहें?...उसे जो राम जन्मभूमि में हुआ?...या इसे जो घरों में घुस कर हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी और संस्कृति पर किया जा रहा है।

संपादक : शब्दयात्रा; सीता निकेत ; जय प्रभा पथ, भागलपुर
सिटी - 812002 (बिहार), **मो:** 9572963930

लघुकथा

तीन शब्द

रेणुका अस्थाना

समाचार पत्र के आठवें पृष्ठ के एक छोटे से समाचार ने उसे हिला दिया "गाँव बिकाऊ है"। उसने इन तीन शब्दों को कई - कई बार पढ़ा। सोचने लगा , आवश्यकता और सुख के साथ-साथ पशु - पक्षी और मनुष्य तो बिक ही रहे थे अब गाँव भी .....

अजीब सा लगा उसे। घबराहट सी हुई।

उसने अपने बैग को उठा कर गले में डाला और बाइक निकाल जा पहुंचा उस गाँव जहां बड़े-बड़े समाचार - पत्रों , चैनल्स की गाड़ियां साथ ही सरकारी तंत्र और व्यवसायइयों की भी गाड़ियाँ खड़ी थीं। कैमरे चमक रहे थे। दाम लग रहे थे ...

पता है किसके .....

धूल उड़ाती, दरारों पटी बंजर जमीन के ... अपनी ही गहराई नापते कुओं के ... घर मकानों के... कोई नहीं पूछ रहा था पशुओं को? न ही वहाँ के लोगों को? अजीब दृश्य ! आँख भर आई उसकी। सोचने लगा मुर्दा गाँव का यह कैसा जश्न है ? कुछ वर्ष पहले ही तो मैं यहाँ एक बड़े कवि सम्मेलन को कवर करने आया था। कितना हरा - भरा लहलहाता गाँव था। मशीनों से ढलता मोटे धार का पानी, बिन ऋतुएँ की फसलें। बिन बात कहकहे ...

आज वीराना पड़ा था। शीशे सी जमीन पर औरतें खाली बर्तन सी लुढ़की पड़ी थीं। उनकी हंसी, उनके गीत बेताल से गाँव के ठूँठे पेड़ों पर खड़खड़ा रहे थे। पुरुषों की शक्ति का पानी भी जैसे धरती सा सूख चुका है ...बच्चे ही हैं जो इधर - उधर डोलते - भागते खेल रहे हैं। हंस रहे हैं। लड़ रहे हैं और कभी - कभी इकट्ठे होकर भीड़ और कैमरा देख एक दूसरे को ठेलते हुए भाग जाते हैं।

सबको देखता - सोचता धीरे - धीरे वह उस ओर निकाल आया जहां चबूतरे पर बैठा एक वृद्ध अपनी सिकुड़ी आँखों से सामने के मकान की लाल दीवार यूं देख रहा था जैसे या तो वह उसमें घुसता चला जा रहा है या दीवार उसकी सिकुड़ी आँख में।

"आप...यहाँ ...क्यूँ ... बैठे हैं" वृद्ध के पास बैठते उसने धीरे से पूछा। वृद्ध ने अजनबी भाव से उसे कुछ पल देखा और अपना चेहरा घुमा लिया।

"बा...बा ...ये सब ...कैसे

कोई उत्तर नहीं। उनकी अधखुली आँखें अब दीवार से हटकर कहीं और स्थिर थीं। उसने थोड़ा साहस कर वृद्ध का कंधा छुआ था। भरी आँखें उसकी ओर मुड़ीं" सब खतम हो गया ....

"कुछ नहीं बचा ...

"सब एक साथ कैसे खतम बाबा ...

.....

"लोभ ...एक दिन लोभ ऐसा जीता कि धरती हार गई ...और जब धरती ही हार गई तो —क्या बचेगा

लौट आया वह। सबके बीच से अपने को निकालकर। अपने सात वर्ष के करियर में आज न उसने कोई फोटो ली न ऑफिस जाकर रिपोर्ट करने का उसके भीतर कोई उत्साह था।

संपर्क : फ्लैट नं. एल. 207, आशियाना आँगन, **पो. -** भिवाड़ी - 301019

जिला : अलवर (राजस्थान), **मो.** 9982448126

मालिक का तोता

अनवर शमीम

टाँय.....टाँय...! मालिक को देखकर ख़ूबसूरत पिंजड़े में क़ैद तोता चीख़ा।मुनीम मालिक के क़रीब जा कर धीरे से बोला-' मालिक ई ससुरा जो तोतवा है न, आपको देखते ही 'चोर है...चोर है..' की रट लगा देता है।मालिक की शातिर निगाहें पिंजड़े पर से फिसलती हुईं मुनीम की चापलूस निगाहों से जा टकरायीं।मुनीम बिना रुके बोलता रहा ' हाँ..मालिक,बिस्वास कीजिए.... राम कसम बेल्कुल सच बोल रहा हूँ..बिस्वास न.....!'

टाँय....टाँय....! तोता एक बार फिर चीख़ा।

'सुना आपने, सुन लिए न मालिक? ....स्साला पक्का हरामखोर है....!' मुनीम चहका। उसकी आँखें चमक उठीं।

मालिक की आँखों में ख़ून उतर आया। ग़ुस्से से चेहरा तमतमा गया। मालिक ने मुनीम को पिंजड़े का दरवाज़ा खोलने का हुक्म दिया। मुनीम ने तेज़ी से बढ़कर पिंजड़े का दरवाज़ा खोल दिया। तोते ने अपनी गर्दन बाहर निकाली। मालिक ने उसे बड़ी बेरहमी से खींचकर पिंजड़े से बाहर निकाला और उसकी गर्दन मरोड़ दी। तोता तड़प कर शांत हो गया।

दूसरे दिन उसी ख़ूबसूरत पिंजड़े में एक नया तोता क़ैद था, जो एकदम ख़ामोश था।

संपर्क-मिल्लत कॉलोनी, वासेपुर, धनबाद - 826001 (झारखंड) मो. 9798355202

एहसास

माला वर्मा

बिटिया ने आज सुबह वक्त से पहले फोन किया और चहकते हुए बोल उठी,' मम्मी जानती हो बच्चे के मूवमेंट का आज पहली बार एहसास हुआ। मैं कितनी खुश हूं नहीं बता सकती।मम्मी तुम्हें पता है आज सुबह से कई बार उस अजन्मे, अनदेखे बच्चे की छुअन फील कर रही हूं। ओह! कितना रोमांचक, कितना पवित्र, कितना स्वर्णिम, कितना सुखद, कितना आनंददायी है। इस तरह का फीलिंग तो तुमने भी महसूस किया होगा! तुम्हें कैसा लगा था मम्मी! तुम्हें याद है या भूल गई! मम्मी तुम अपनी बात बताओ।ऐसा तो सबके साथ होता होगा! मैं आज बहुत खुश हूं। बहुत ही एक्साइटेड।जी करता है चुपचाप आंखें बंद किए कहीं बैठी, लेटी रहूं और उस अजन्मे शिशु की छुअन, उस धड़कन को पल-पल अपनी सांस में पिरोती रहूं। मम्मी कुछ बोलो!चुप क्यों हो गई! सब ठीक है ना!'

इधर मम्मी की आंखों से खुशी के आंसू बह रहे थे। जिस बिटिया को अपनी कोख में नौ महीने रखकर उसकी हर छुअन को हर पल महसूस किया था उसे वह कैसे भूल सकती थी! वही बेटी जो वर्षों पूर्व उन्हें 'मां रत्न' बनने के सौभाग्य से नवाजा था, आज स्वयं 'मां' बनने के पथ पर अग्रसर थी और उस हर अनूठे अनुभव, एहसास, खुशी को अपनी मां से शेयर कर रही थी।

वक्त इतनी तेजी से भागता है क्या? या फिर घड़ी की सूइयां मां और बेटी को इस मुहूर्त में, एक खास मुकाम पर लाकर थम गई थीं!! बेटी की चहकती आवाज और मां का दिल अब एक संग धड़क रहा था...

संपर्क : हाजीनगर, **जिला :** 24 परगना (उत्तर)
पिनः 743135, **मो.** 9874115883

सो तो था

मार्टिन जॉन

'प्रोणाम जानाई काकी मां !'

दुर्गा काकी घर के द्वार पर ही मिल गई थी।

'अरे , बापी !....कोखोन एले ?....ऐसो , भीतोरे बोसो !' (कब आया ? आओ अन्दर बैठो)

'कल ही आया काकी मां ! ...आपलोग कैसी हैं ?...सुना है रत्नादी की शादी हो गई। कैसी है वो ?'

'खूब भालो... एकदम बढ़िया ! ...भोगवान ने बहुत बड़ा बोझ उतार दिया हमारा सिर से।'

'अरे, ऐसा नहीं कहते काकीमां बेटियों के बारे में।'

दुर्गा काकी खामोश रही।

'खैर, छोडिये ! बताइए.....घर सूना सूना लगता होगा आपलोगों को , है न काकी मां?'

'ता तो आछे !' (सो तो है)

'दिन भर गुनगुनाती रहती थी रत्ना दी। बड़ा सुरीला कंठ पाया है उसने।'

'ता तो छिलो।' (सो तो था)

'अच्छा लिखती भी थी कविताएं, कहानियां वैगरह ।'

'ता तो छिलो।'

'अरे हां, उसकी बनाई पेंटिंग अभी भी मेरे पास है।... रेखाओं और रंगों की कितनी अच्छी समझ थी ....'

'ता तो छिलो।'

'कितना बढ़िया स्पीच देती थी। डिवेट में हमेशा फर्स्ट आती थी। है न काकी मां।'

'अरे हां हां ....सोब जानि आमि।' (हां, हां , सब जानती हूं) काकी मां के स्वर में झुंझलाहट थी।

'स्पोर्स्ट्स में भी सबसे आगे रहती थी।' काकी मां ने कोई प्रतिक्रिया नहीं जताई।

'तुमि बोसो बापी। तोमार जन्ये चा करे आनछि। चा खाबे तो ? (तुम बैठो। तुम्हारे लिए चाय बनाकर लाती हूं। चाय पिओगे तो?)

दरअसल वह इन सब बातों पर विराम देना चाहती थी।

चाय की चुस्कियां लेते हुए बापी ने यूं ही पूछ लिया, 'शादी के बाद भी क्या वो सब जारी है काकी मां ?'

'अरे, काहे को जारी रखेगा?' काकी मां के स्वर में शुष्कता आ गई, 'सुन्दोर वर मिला है। खूब बड़ा बाड़ी है। दामी गाड़ी है। पूरा सोना-गोईना पाया है। दुई ठो प्यारा-प्यारा बाच्चा है ।... एबार गान-टान, लेखा-लेखी, छवि आंका 'टांका करे आर कि होबे?' (अब गाना 'वाना, लिखा' लिखी, चित्रकारी करके और क्या होगा?'

वह काफी देर तक काकी मां की आंखों में उस रत्नादी को ढूंढ रहा था। लेकिन वह वहां नहीं थी।

संपर्क : मार्टिन जॉन, अपर बेनियासोल, **पोस्टः** आद्रा, **जिलाः** पुरुलिया, पश्चिम बंगाल, **पिन :** 723121, **मो.** 9800940477

नैतिकता

श्याम कुमार राई 'सलुवावाला'

काम तो थोड़ा ही किया है पर नाम अधिक बनाया है लेखक जी ने। अभी तक मात्र एक लघुकथा संग्रह आया है। वो भी दो-अढ़ाई साल पहले। बस, स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभार छपते हैं।

आज सुबह से ही लेखक जी बेचैन हैं। सिगरेट का कश पे कश लगाए जा रहे हैं। हाथ में पेन है, पर प्लाट है कि सूझ ही नहीं रहा है। उन्होंने कमरे में खेलते हुए बच्चों को डांटा और बाहर भेज दिया। फिर पत्नी को चाय के तीसरे कप के लिए कहकर मूड बनाने में लग गए।

एक पत्रिका के विशेषांक के लिए इसी सप्ताह के भीतर एक अच्छी-सी रचना देने का दबाव है उन पर। हालांकि पत्रिका के संपादक के आग्रह को पूरे तीन महीने बीत चुके थे। पर इस बीच सम्मान-समारोह में सम्मिलित होने, साहित्यिक मंच एवं विभिन्न गोष्ठियों में शामिल होने में समय कैसे गुजर गया पता ही नहीं चला। सहसा उनके चेहरे पर एक चमक आई और मोबाइल निकालकर संपर्क किया – 'हां, संपादक जी, अभी महीने भर पहले आपने मेरी जिस लघुकथा संग्रह की समीक्षा प्रकाशित की थी उसी संग्रह में से 'नैतिकता' शीर्षक से जो लघुकथा है उसे ही अपने विशेषांक में लगा दीजिए।'

'पर सर, हमें तो आपकी अप्रकाशित रचना चाहिए। और अपने वादा भी किया था की आप बिलकुल ताजा रचना भेजेंगे। फिर पूर्व प्रकाशित रचना छापने पर पाठक आपत्ति...'

संपादक की बात बीच में ही काटकर लेखक जी बेपरवाह लहजे में बोले, 'अरे भई कौन याद रखता है इतना सब कुछ, किसी को पता भी नहीं चलेगा कि रचना पूर्व प्रकाशित है। बल्कि, देखना इस रचना की प्रशंसा में ढेरों पत्र आएंगे। आपको भी साधुवाद मिलेगा। मैं अभी से ये कहे देता हैं।' कहकर लेखक जी ने फोन बंद कर इत्मीनान की सांस ली।

संपर्क : काथरा, पुरानी बस्ती, **डाक :** सलुवा (प.बंगाल), **पिनः** 721145, **मो.** 7908754042

संभव ये भी है

कल्पना मनोरमा

'सुबह जागने के लिए और रात सोने के लिए न बनायी जाती, तो कितना अच्छा होता।' कामना पौधों को पानी देती और खिड़की से झाँक-झाँक कर बुदबुदाती जा रही थी।

'मन तो ऐसा करता है कि इसी वाटरपाइप से उसे सोते हुए नहला दूँ। सोए हुए बेटे को आवाज देते हुए वह पलंग तक जा पहुँची थी।'

'अरे रे रे रे! ये क्या कर रही हैं आप ?' चादर मुँह पर खींचते हुए बेटे ने कहा।

'अरे रे रे रे, रे क्या? अब तो जाग जा। सूरज खिडकियों से उचक-उचक कान खींच रहा है।' कहते हुए कामना ने ज़ोर से चादर खींच, पाइप का मुँह, उसकी ओर घुमा दिया।

'छोड़ दीजिये माँ! मुझे पता है, मुझे कब उठना है और कब सोना है।जाइए यहाँ से और अपने गुलाबों को ही नहलाइए।' चादर से मुँह पोंछते हुए बेटे ने झुंझलाकर कहा।

'ले, तू तो बुरा मान गया। सच्ची में तो मेरा गुलाब तू ही है। इसीलिए तो कहती हूँ जब तू समय पर अपने सारे काम करना सीख जाएगा तब न दूर-दूर तक तेरी खुशबू फैलेगी। पता नहीं मेरी इस मंशा को तू डाँट क्यों समझ लेता है।'

'डाँट को डाँट न समझूँ तो क्या ही समझूँ? बचपन से देखता आ रहा हूँ, कभी पढ़ाई के लिए तो कभी जीवन-मूल्यों के लिए आपने मुझे निशाने पर रखा हुआ है।'

'अब मेरा बेटा जब तू है तो भला भी तेरा ही तो चाहूँगी? तेरी दादी माँ के बेटे से तो कुछ करवाने से रही।यदि ऐसा न होता तो मैं कभी तुझे डाँटने के पचड़े में न पड़ती।' कामना ने खुद को संयत करते हुए कहा।

'ये किसने कहा आपसे कि बच्चों को डाँटने-मारने से उनकी सोई किस्मत जाग उठती है।'

'तूने अभी देखा ही क्या है। अब तो बच्चे बहुत मनमानी करने लगे हैं वरना मेरे बचपन में तो हर बच्चा बिना कुसूर के माँ-बाप से डाँट-मार खाया करता था और खुश भी रहता था।'

'इस बात को मैं सही नहीं मानता। वैसे सच कहूँ तो आपकी इन्हीं बातों के कारण आपके पास बैठने का भी मेरा मन नहीं करता।'

'तू कुछ भी कह लेकिन हमारे यहाँ की तो यही रीति है। यहाँ इसी प्रकार से बच्चों का लालन-पालन किया जाता है।'

'सही कहा माँ, इसीलिए तो यहाँ वृद्धाश्रमों में भीड़ बढ़ती जा रही है।'
कामना बोलना चाहती थी किन्तु उसके शब्दों ने उसे धोखा दे दिया।

संपर्क : सिंपकिस - बी. 24 ऐशोशियम अपार्टमेंट/प्लाट संख्या 17/ सैक्टर 4 द्वारिका / नई दिल्ली - 110075

बकरा

डॉ. पिंकी कुमार बागमार

दास बहुत उदास था, न उसके पास नौकरी थीं, न छोकरी। परेशान होकर उसने अपने दोस्त को फोन मिलाया, अपना दुखड़ा उससे सुनाया।, "अरे यार वरुण कुछ तो जुगाड़ लगा दे न नौकरी मिल रही, न शादी हो रही। अब तो चिंता से रातों को नींद नहीं आती।" वरुण ने कहा, एक बाबा का नंबर देता हूँ, तू चिंता न कर सब ठीक हो जाएगा। तू बाबा से सब कहना, बाबा तेरी हर चिंता को मिटाएगा।

"उस नम्बर पे दास ने जब मिलाया फ़ोन, बाबा ने कहा चिंता न कर बालक सब ठीक हो जाएगा, 20000 अभी मेरे अकाउंट में भेज, तेरा सारा दुख दूर हो जाएगा।" अब बीस हज़ार दास कहाँ से लाए, न नौकरी, न कोई जमा पूंज़ी। थोड़ा मोल भाव करने पर बाबा 15000 में आए, पर बाबा ने कहा जल्दी कर बच्चे, तेरा वक़्त बहुत खराब चल रहा है, जल्दी से पैसा भेज मैं सब सही कर दूंगा।

दास ने एक दोस्त से उधार लेकर बाबा को पैसा भेजा। तब बाबा का फोन उपाय बताने के लिए आया । बाबा ने कहा, "सुन शनि की साढ़े साती चल रही है, मंगल और गुरु भी ख़राब है तेरा।" दास ने कहा, "बाबा अब आप ही पार लगाइए, मुझे नौकरी और एक सुन्दर सी कन्या दिलवाइए । बाबा ने कहा शनिवार वाले दिन एक काला कपड़ा अपने ऊपर से वार कर किसी को दान कर आना, फिर देखना सब ठीक हो जाएगा।" दास चिंता में सड़क के किनारे चले जा रहा था, कि काला कपड़ा किसे दे, किसे बकरा बनाए, तभी उसे एक आवाज़ आई.. "कैसे हो दास?" दास ने देखा ये तो उसके शिक्षक हैं, जिनके पास दास बचपन से पढ़ा करता था। सर ने बताया हमने तुम्हारी कॉलोनी में ही घर ले लिया है, कभी आओ घर हमारे", दास ने हामी भर दी। दूसरे दिन शनिवार था, दास सर के घर एक तोहफा लेकर टपक गया। सर दास को देखकर बहुत खुश हुए, उसे बिठाया, चाय - पानी पिलाया। दास के जाने के बाद सर ने जब तोहफा खोला उसमें काली शर्ट देखकर डर के बोला, हे राम शनिवार को काला कपड़ा, अब क्या होगा मेरा? दास परेशान।

सर ने शर्ट देखा होगा तो क्या सोचेंगे मेरे बारे में, कहीं सर समझ गए सब बात तो क्या मुहं लेकर जाऊंगा उनके पास । इसी परेशानी में वो बैठा था कि उसके दोस्त का फ़ोन आ गया। मेरे पैसे वापस कर, अब मुझसे और इंतज़ार नहीं होता। दास बेचारा कहां जाए अब दोस्त के पैसे कैसे चुकाए और सर अगर रास्ते में मिल गए तो उनसे नज़रें कैसे मिलाए? दास ने बाबा को फोन लगाया,- "बोलो हे बाबा, तूने ये कैसा उपाए बताया मैं तो चिंता और परेशानी से और भी घिर गया? बाबा ने कहा, "चिंता न कर बेटे, 5000 हज़ार और भेज दे, सब दुख दूर होंगे तब तेरे।"

संपर्क : खड़गपुर, पश्चिम बंगाल, **मो.** 8250362022

लघुकथा

भूख का सवाल

उत्कर्ष अग्निहोत्री

एक विद्यालय में समाजशास्त्र की कक्षा में बच्चों को पढ़ाते हुए मास्टर साहब पौराणिक कथा का सन्दर्भ देते हुए बोले कि एक बार दुर्वासा ऋषि अपने शिष्य समुदाय के साथ द्रौपदी के यहाँ भोजन के लिए गए। उस समय उसके चौके में बना हुआ भोजन समाप्त हो चुका था। तब उसने भगवान कृष्ण का स्मरण किया और उसी समय भगवान कृष्ण ने आकर द्रौपदी का मान रखने के लिए उसके अक्षय पात्र में पड़ा एक चावल का दाना खाकर सभी की भूख शान्त कर दी थी। इस कथा को कक्षा के बच्चे बड़ी जिज्ञासा और आश्चर्य से सुन रहे थे कि अचानक कुछ दूरी पर बैठी हुई आया के पास खड़े उसके पाँच साल के बच्चे ने सवाल किया- 'माँ ! तुम्हारे चौके में रोज़ रात को भगवान कृष्ण क्यूँ नहीं आते चावल का एक दाना खाकर तुम्हारा मान रखने के लिए और हमारी भूख शान्त करने के लिए? क्या तुम उन्हें याद नहीं करतीं ? बच्चे के इस प्रश्न ने पूरे विद्यालय को स्तब्ध कर दिया था।

संपर्क : 4/15 कटरा नुनहाई, फ़र्रुख़ाबाद -209625 (उ.प्र.) मो - 8874663158,

जहर के खिलाफ

शिवनारायण

प्रशांत जहर की शीशी अपने मुंह में उढ़ेलना चाह ही रहा था कि एक झटके से शीशी दूर जा गिरी! देखा, सामने पापा खडे? थे! वह सिहर उठा, किंतु तत्क्षण ही बिफर पड़ा –'मुझे मर जाने दीजिये.... मैं जीना नहीं चाहता हूं! '

'पर, बात क्या है बेटे ? '

'आज मेरी नवीं कक्षा की परीक्षा का रिजल्ट आया है पापा! शशिभूषण अव्वल आया, जिसे मैं पढ़ाया करता था और मैं फेल हो गया! यह सब मेहरा सर का काम है! शशिभूषण उनसे ट्यूशन पढ़ता था, फिर वह उनकी जाति का भी है; जबकि मैंने कभी उन्हें अनावश्यक महत्व नहीं दिया और न ही उनसे ट्यूशन पढ़ी! मेहरा सर ने मुझे प्रैक्टिकल में केवल आठ अंक दिए, जबकि पास होने के लिए बीस अंक चाहिए थे! '

'अच्छा, ये बात है! इतनी छोटी सी बात पर तुम आत्महत्या कर रहे हो? '

आप इसे छोटी सी बात कहते हैं, यहाँ मेरी जिन्दगी खराब हो रही है...! '

'ठीक है, इस बार फेल हो जाने से तुम्हारी ज़िंदगी खराब हो रही है, तो तुम आत्महत्या कर लो! पर मैंने तुम्हें हमेशा अपने ढंग से जीने की स्वतंत्रता दी है तो आज मरने की आजादी भी दूंगा! किंतु आत्महत्या करने से पहले तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगे? '

'क्या?' प्रशांत ने उत्तेजना में कहा, तो उसके पापा ने पूछा –'तुम फिर से परीक्षा देकर पास कर जाओ! फिर मैट्रिक से लेकर एम. एस-सी. तक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करते जाओ! यूपीएससी की परीक्षा दो और आई.ए.एस. के लिए चुन लिए जाओ!शासन में जिलाधिकारी से लेकर मुख्य सचिव तक बनो! रिटायर्ड होने के बाद तुम्हारी प्रशासनिक कुशलता को देखते हुए तुम्हें किसी प्रदेश का राज्यपाल बना दिया जाए और उसके बाद भी तुम्हें इस देश के उपराष्ट्रपति तक बनने का सौभाग्य मिले; तो जीवन में इतनी सारी उपलब्धियों को पाने के बाद अंत में तुम्हें अपनी आत्मकथा लिखनी पड़े तो तुम उस आत्मकथा में इस फेल होने वाली घटना की चर्चा किस रूप में करोगे? '

पापा की बात सुन प्रशांत के चेहरे पर विद्रुप सी मुस्कान तिर गयी! उसने कहा –'जीवन में इतनी सारी उपलब्धियों को पाने के बाद तो मैं बूढ़ा हो जाऊंगा... और आत्मकथा लिखते समय शायद मैं उस घटना को याद भी नहीं रख पाऊंगा..... अब जब घटना याद ही नहीं रहेगी तो फिर उस घटना की चर्चा किस रूप में करूँगा, इसका सवाल कहाँ उठता है? '

'वाह बेटे, सफलता के उच्चतम शिखर पर पहुँच कर अपनी आत्मकथा लिखते समय जिस घटना को याद भी नहीं रख पाओगे, फिर उस छोटी सी घटना के कारण आत्महत्या क्यों कर रहे हो?'

प्रभात की आंखें यकायक उन्नत विस्तार पा गईं! सहसा वह कुछ बोल न सका, पर उसकी चेतना जैसे सोते से जाग उठी! तभी उसे पापा की निर्णायक आवाज सुनाई पड़ी –'बेटे, अपने रास्ते में कांटे बिछाने वाले को प्रणाम कर आगे बढ़ जाओ! सफलता तुम्हारी राह देख रही है! '

संपर्क : संपादक नई धारा, सूर्यपूरा हाउस, बोरिंग रोड़, **पटना** - 800001 **मो:** 9334333509

विश्वास

डॉ. लोकेश्वर प्रसाद सिन्हा

वैशाली आफिस का काम
निपटाकर केंटीन में चाय पीने आयी हुयी थी।
चाय पीते पीते एक जोड़े पर उसकी नजरें टिक गई। दोनो का वार्तालाप सुनकर वह अतीत में खो गई।
गिरीश से उसकी पहली मुलाकात केंटीन में हुई थी।
परिचय कब प्रगाढ़ होते चला गया, पता हीनही चला।
गिरीश पहले से शादीशुदा व दो बच्चों का पिता था।

ये बात जानते हुए भी वैशाली उससे प्रेम करती थी।उसकी नज़र में प्रेम दैहिक आकर्षण नहीं आत्मिक भाव है।ये बात गिरीश भी जानता था कि वैशाली उससे ज्यादा उसके परिवार का सम्मान करती है।

वैशाली को कुछ दिन से गिरीश के व्यवहार में फर्क दिखने लगा। पहले तो वह बिज़नेस का बहाना बनाता रहा। वैशाली का सरल ह्मदय उसके उन्नति की दिन रात दुआ माँगता रहा।

पर, वैशाली को कहीं कुछ खटक रहा था। उसके बहुत निवेदन करने पर गिरीश ने कहा कि मुझे पश्चाताप होता है कि मैं गलत कर रहा हूँ। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम मुझसे अलग हो जाओ।

वैशाली आज तक स्वयं को समझा नहीं पायी कि वह कहाँ गलत थी।उसने तो पवित्र प्यार किया था।पर..पुरुष मन की क्या कहे...। उसे जरा सा भी संदेह न था कि उसका विश्वास इस तरह चकनाचूर हो जाएगा। परंतु शायद! यही सच है।

संपर्क : सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग ,दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, मोः 9770197877

दौलत

चन्द्र किशोर जायसवाल

बहन निर्मला एक समपन्न घर में ब्याही गई थी। जब ब्याही गई थी निर्मला तब भाई सहदेव का घर भी गाँव के काफी सम्पन्न घरो में गिना जाता था। घटती का पहरा लगा और सम्पन्नता लुप्त हो गई। अब सहदेव के पास मुश्किल से दो-तीन बीघे खेत है और बथान पर एक भैंस। आमदनी से घर का पेट मुश्किल से चलता है, हारी-बीमारी में कर्ज का ही आसरा।

इतना बुरा हाल था कि सम्बन्धियों के घर न्योता पूरने तक के लिए पैसे नहीं होते थे। एक-एक कर सम्बन्धियों से रिस्ता टूटता चला गया।

मगर अब क्या होगा? अपनी खास भांजी की सादी थी, निर्मला की सबसे छोटी बेटी की। इसमें तो जाना ही होगा, इसे हारी-बीमारी का खर्च मानकर ही।

बड़े बेटे ने इतना भर कहा, "आप कहीए, तो भैंस बेच डालें"।

सहदेव ने सोच विचार कर देख लिया, उसके मरने के बाद तो इस रिस्ते तो टूटना ही है। ये भैंस ही तो इस घर को टिकाये हुए है अभी। यह बीक गयी तो दूसरी भैंस आयेगी भी नहीं।

उसके मन आया, वह बिमार भी तो हो सकता है। बिमारी में कोई कैसे जाये न्योता पूरने।

बेटी के शसुराल से लौट आते ही निर्मला ने मायके का रूख किया।

मायके से विदा होने के पहले उसने भाई को सुनाया, "भाभी ने मुझे सबकुछ बता दिया है, भैया।

आपको आना था। हमें कहाँ खबड़ है कि हमारे बंस के लोग कहाँ-कहाँ बिखरे पड़े पड़े हैं! उनके साथ अब हमारा क्या रिश्ता? मगर हमतो एक कोख से पैदा भाई-बहन हैं। मैं कितनी गरीब हो गई थी। जब मेरा भाई मेरे दरबाजे पर नहीं आया! छूँछा भाई भी बहन की सबसे बड़ी दौलत है, भैया, अन्तिम आशरा। यह कोई भाई समझे ना समझे, हर बहन समझती है। आप आ तो जाते, आपकी ओर से न्यौता पूर दिया गया था।

संपर्क : गुरुद्वारा रोड, महबूब खाँ टोला, पूर्णिया - 854301 **मो.** 9931018938

(बांग्ला लघु कथा)

मरीच झाँपि की लड़की

लिली हलदार

नमी के ची ची .....करने की आदत अभी तक नही गयी। नमी, अरे! हमलोगों की नमिता। ध्यान न दो तो इधर -उधर करती ही रहती है। उम्र हो गयी है लेकिन उसका ध्यान नहीं है। रेल का बड़ा बाबू। नहीं ...नहीं बड़ी बीबी।रोज रात को घुटनों के दर्द की बात करती है। इसके बावजूद अपने ऑफिस में 23 वर्षों से निरन्तंर सही समय पर पहुँचती है।उसका स्वभाव है कि मन ही मन में वह बात करती और हँसती शहर की रास्तों पर चलते-चलते।दादी माँ की बात याद आती है.....

नमिता निम्न मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्ध रखती। उसके पिताजी सरकारी विभाग में निम्न श्रेणी में कार्यरत थे। देश विभाजन के पहले यह नौकरी उन्हें मिली थी।' जीवन जिसने दिया है, भोजन वही देगा।' ऐसी भावना के कारण उसके भाई बहनों की संख्या अधिक है। प्रायः सभी एक दूसरे में 1 से 2 वर्ष का ही अंतर है।दादी माँ के पास वह बड़ी हुई । माँ के शरीर की गंध क्या होती है नमी को पता नहीं। दादी माँ की गोद में ही सर रखकर, उनकी कहानियों को सुनते हुए वह सो जाती।

सुबह होते ही दादी माँ चिल्लाती -

'अरे मइया, सुबह हो गयी, बकरियों को माठ में ले जाओ। ' नम आंखों को मसलते हुए अपने पेंट की डोरी ठीक तरीके से बाँधते बाँधते .....। बकरियों को लेकर धूल भरे रास्तों से उड़ाते - उड़ाते इमली तालाब के पास उपस्थित हो जाती।

इमली तालाब चारो तरफ से ऊंची जगह पर था। पूर्व, उत्तर, दक्षिण तीनों ओर बड़े बड़े इमली के पेड़। पश्चिम में बेल और ताल के पेड़ों से भरा था। कोई कोई इस जगह को तालपुकुर कहता। इसके मैदानी भाग में हरे हरे घास भरे थे।

बकरियों के झुंड को इमली तालाब के पास छोड़ घर की ओर दौड़ी। स्कूल जाने का समय हो रहा है। रात पंता भात, मर्चा के साथ खाकर, एक हाथ मे किताब, एक हाथ में ताल पत्ते की चटाई लेकर जल्दी जल्दी स्कूल पहुँचती । नमी कभी आराम से चलती नहीं। सब समय दौड़ दौड़.....।

स्कूल की पढ़ाई खत्म होते ही देर न कर घर पहुँचते अपनी किताबों को रख दौड़ लगाती तेतुल पुकुर .....।

उस दिन हवा भी मदमस्त थी। नमी को उन नरम घासों में बैठने की इच्छा हुई। उस पर से वह बच्ची। उस मदमस्त हवा में उसे घासों पर लेटते ही नींद आ गयी.....। उसने सपना देखा.....दादी माँ के जीवन जैसी विशाल नदी.....पर्वत पहाड़ ....बड़ा सा पाल लगाए हुए नौका,उस पर बैठकर वह घूम रही है.....नारियल और सुपाड़ी के अनन्त वन.....हठात् बकरियों के चिल्लाने से उसकी नींद खुली। उस दिन घर पहुँचने में देर भी हो गया।

दादी माँ की उत्कंठता भरी झझुआती आवाज -

'माई का छाता! कंधा-कंधा लेकर घूमती है। कोई काम ठीक ठाक से नहीं करती।'

नमी, सही में - खाली कंधों को लेकर घूमती रहती है। स्कूल की पढ़ाई समाप्त होने पर उसके पिताजी ने शहर के स्कूल में पांचवी कक्षा में भर्ती करा दिया। वह बहुत रोयी। एक ही घर में इतने सारे लोग। कोयले के धुंएँ की गंध। गाँव की तरह इधर उधर भी जाना नहीं होता नमी के पैर में एक तरह से ताला जड़ गया।

धीरे धीरे वह अपने को शहर के जीवन से जोड़ उच्च माध्यमिक और बी. ए पास कर ली। भाई बहन भी उसके साथ बड़े हो रहे थे.....पढ़ते लिखते थे। वह टयूशन करके, अपना लिखने-पढ़ने का और हाथ खर्च निकाल लेती। कभी-कभी वह कपड़ा भी खरीद लेती। उच्च माध्यमिक पास करते ही नमी की शादी का जोड़ तोड़ शुरू हो गया। नमी गुस्सा करती। वह और पढ़ाई करना चाहती थी, नौकरी करना चाहती थी।

सही में नमी की नौकरी भी हुई।वह बहुत खुश! अब वह दो समय पेट भर खाना खा पाएगी।

ऑफिस में जॉइन करने के एक सप्ताह पहले से उसके पिता, उसको समझाते,- 'ऑफिस में किसी के साथ तर्क ज्यादा मत करना। समय पर ऑफिस पहुँचोगी। सभी कामों को ठीक ढंग से करना। ऑफिसर्स के बातों पर अधिक जबाब मत देना.....नहीं तो प्रमोशन .....।'

जो उसके पिता ने कहा, नमी सम्मति से अपने हृदय में उतार लिया.....।

जॉइनिंग के दिन, पिता के साथ बी. बी. डी. बाग के ऑफिस पहुँचाने के बाद उसके पिता घर आ गए। नमी पूछते पूछते अपने निर्धारित सेक्शन में पहुँच गई। ऑफिस से संबंधी धारणा अपने पिता से पहले ही अनुभव कर चुकी थी।

सेक्शन में जाकर, बड़े बाबू से एपॉएंटमेंट लेटर लेकर नमी थोड़ी देर रुकी। एक एक करके सभी का ऑफिस में आना शुरू हुआ। कुछ एक प्रश्न -

'कितना पढ़ी हो?'

'नौकरी कैसे मिली?'

'कहा रहती हो?'

'ऑफिस नियम कानून....'

नमी माथा नीचे करके सभी प्रश्नों का उत्तर दे रही थी।

'पढ़ाई कितना .....?

'इस बार एम.ए दिया है!'

'हाँ! चोरी करके पास किया है?'

इस बार नमी माथा उठाकर सीधे प्रश्नकर्ता के तरफ देखी। फिर माथा को नीचे कर लिया।

अचानक एक ने कहा -' वो माँ! मरीचझांपी से यहां कैसे पहुँच गई?'

नमी के मन को इस बार जोर का धक्का पहुँचा। नमी हमेशा से दुबली पतली, सांवला..... उसके शरीर की बनावट ही ऐसी थी। मरीचझांपी -यह शब्द उसका पहचाना हुआ था। किंतु वह तो शहर में शिक्षित हुई, परीक्षा देकर नौकरी मिली। वह तो मरीचझांपी से नहीं आई। इसका मतलब मरीचझांपी एक जन गोष्ठी है। एक सम्प्रदाय। कुछ अयतनेर मनुष्य। अभियुक्त गृहहीन .....शिक्षित समाज द्वारा भगाए गये.....प्राण बचाने की लड़ाई।

नमी ने माथा उठाते हुए। धीरे -धीरे कहा- 'मैं मरीचझांपी न.....और मन ही मन बोली भगाया हुआ.....जिंदगी बचाने की लड़ाई में से एक मनुष्य।'

मैं कहती हूं न ,नमी ची.ची... करके घूमने का अभ्यास।नमी अब तो और अधिक घूमने जाती है।मरीचझांपी के मनुष्यों को एक जगह लाना ही होगा.....।

अनुवादकः डा. कार्तिक चौधरी

हिंदी-विभाग, महाराजा शिरीषचंद्र कॉलेज, कोलकाता-2 **मो.** 8240796679

अपनी बात स्वयं कहती 'उजास' की लघु कथाएं

डॉ. नीरज दइया

'आज सुबह की प्रार्थना सभा में आप ही ने तो बताया था कि पर्यावरण को बचाना है तो हर संभव प्रयास से पेड़ों को बचाना होगा। और सर! कागज भी तो पेड़ों से ही बनता है ना?'

लघुकथाकार राम निवास बांयला की लघुकथा में एक बालक का अपने प्राचार्य से यह संवाद अपने आप में बहुत कुछ कहता है। जब यह छोटा सा संवाद संग्रह की लघुकथा 'पर्यावरण दिवस' में हम देखते हैं तो पूरा प्रसंग हमारे भीतर कहीं अटक सा जाता है। माना बहुत नई बात नहीं है और कथनी-करनी भेद पर अनेक रचनाएं लिखीं जा चुकी हैं, आगे भी लिखी जाएंगी। कुछ विषय जैसे पर्यावरण-चेतना की आवश्यकता कल भी थी, आज भी हैं और कल भी हमें इस विषय पर बात करनी होगी। समय के प्रवाह में अपनी प्रासंगिता और उपयोगिता को बचाए रखने से भी जरूरी बात है यह देखना होता है कि किसी रचना में विषय को किस प्रकार प्रस्तुत किया है। रचना में रचनाकार का अवदान ही समग्र रूप से उसकी साहित्य में उपस्थिति को तय करने का प्रमुख घटक होता है।

प्रस्तुत लघुकथा संग्रह 'उजास' में अनेक लघुकथाएं ऐसी हैं जिनमें लेखक राम निवास बांयला की संवेदनाएं हमारे अनुभव का हिस्सा बनने में सफल रही हैं। वर्तमान समय में साहित्य और समाज की स्थितियों में बड़ा बदलाव हुआ है, पाठकों में लघुकथाओं की प्रासंगकिता बढ़ती जा रही है। इसका कारण है कि किसी बात को बहुत कम शब्दों में कहना हो तो हमारे पास एक सशक्त माध्यम लघुकथा है।

आज राम निवास बांयला का नाम इक्कीसवी शताब्दी के प्रमुख लघुकथाकारों में राजस्थान से उभर कर बड़े पटल पर छाया हुआ है। वैसे तो बांयला जी ने गद्य-पद्य की अनेक विधाओं में लिखा है और वे वर्षों से लिख-पढ़ रहे हैं। उनके दो कविता-संग्रह-'बोनसाई' और 'बिसात' प्रकाशित हैं। लघुकथा की बात करें तो लघुकथा संग्रह-'हिमायत' (2011)के बाद यह दूसरा संग्रह 'उजास' लगभग दस वर्षों के अंतराल से आया है। मेरा मानना है कि इस अंतराल में उन्होंने हिंदी लघुकथा को अनेक महत्त्वपूर्ण लघुकथाएं दी हैं, जो इस संकलन में शामिल हुई हैं।

एक रचनाकार के रूप में राम निवास बांयला ने विगत बीस-पच्चीस वर्षों में अपने आस-पास के परिवेश को जिस ढंग से परिवर्तित होते देखा-परखा और अनुभूत किया है, वह उनकी रचनाओं में मुखरता से बोलता है। यह बोलना वाचाल किस्म का नहीं है। यहां बोलने और कहने में एक संयम और प्रतिकार सहज रूप से शामिल है। बांयला जी की इन रचनाओं में प्रमुखता से हम हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव को देखते हैं। यहां यह बहुत बड़ा खतरा था कि वे शिक्षण से जुड़े होने के करण सीधे सीधे उपदेशक की भूमिका में हमारे समाने आ जाते, किंतु उन्होंने इस स्थिति से बचते हुए अपनी भूमिका में एक शिक्षक की तुलना में एक रचनाकार की भूमिका को स्वीकार किया है। रचनाकार और शिक्षक के कामों में काफी समानताएं है किंतु विभेद भी है।

आदर्श, नैतिकता, शिक्षा और संस्कारों की अनेक बातें 'उजास' संग्रह की अनेक लघुकथाओं में किसी उपदेश अथवा सीख के रूप में नहीं, वरन इस प्रकार प्रस्तुत है कि लघुकथाकार अपने पाठकों में स्वविवेक जाग्रत करना चाहता है।भाषा की गरिमा में यह समाहित है कि रचनात्मक अनुभवों से पाठक स्वयं अपनी दिशा तय करते हुए फैसले लेने में सक्षम बनें। लघुकथा शब्द में 'कथा' संलग्न है और कथा शब्द से रचनाएं व्यापक-विशद घरातल को स्पर्श करती हैं। संभवतः इसी कारण विद्वानों में लघुकथा विधा के लिए 'गागर में सागर' की बात कही है।

किसी असंभव कार्य को शब्द ही संभव बनाने में सक्षम हो सकते हैं। सवाल यह है कि लघुकथा में शब्दों का प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक किस प्रकार किया जाए जिससे बड़ी से बड़ी बात को कहना भी सहज संभव हो जाए। यह सहज संभव कैसे होता है, इसके लिए संग्रह की लघुकथा 'भेजे में घुसी लकड़ी' को देखें-

मैंने कुल्हाड़ी को उलाहना दिया : हे कुल्हाड़ी! तू कितनी दुष्ट है? जो फल, फूल, छाया व प्राण वायु प्रदाता है, तू उन्हीं पेड़ों को काटती है।

कुल्हाड़ी ने सहजता से उत्तर दिया : जो भेजे में घुस कर दिमाग खराब करेगा तो भुगतेगा भी वही।

यहां महज एक सवाल है और उसका छोटा सा जवाब है। यह संवाद प्रस्तुत करते हुए लघुकथाकार ने बहुत कम शब्दों में बिना मुखर हुए बहुत बड़ी बात कह दी है। किस बात को कहने के लिए कैसा फार्मेट रहेगा, यह रचनाकार ही तय करता है अथवा कहें कि यह एक लेखन-प्रक्रिया है। कहा जाता है कि सर्वाधिक कला वहां होती है जहां वह दिखाई नहीं देती है। आज ज्ञान विज्ञान के क्षेत्रों में अत्यधिक विकास हुआ है कि हम हमारी परंपरा और संस्कृति-संस्कारों से किसी न किसी रूप में कटते जा रहे हैं। यह एक डोर है जो मानव को मानव से बांधती है। वह कमजोर हो रही है। ऐसे में अनेक जीवनानुभव हैं। हमारी गतिविधियों और संबंधों का निर्धारण कैस होता है यह एक बहुत जटिल प्रक्रिया नहीं है फिर भी भारतीय परंपरा में कुछ ऐसा है जिसे हमें बचाना-सहेजना और संवारना है। वह है मानव मूल्य।

हमारे आस-पास के जीवन में अनेक रचनाएं फैली-बिखरी हुई हैं। कुछ को सीधे-सीधे और कुछ को प्रतीक के रूप में यहां इस संग्रह में प्रस्तुत किया गया है। लघुकथाकार राम निवास बांयला के इस लघुकथा संग्रह में अनुभव है तो चिंतन और मनन भी है। इसे ऐसा भी कह कहते हैं कि इनमें ज्ञान के कुछ सूत्र भी हैं जो हमें जीवन में सीखने-समझने और निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाले हो सकते हैं। सूक्ष्म-सूत्रों की बात को समझने के लिए लघुकथा- 'मीठापन' देखें-

: हे ईख! तुम कितनी मीठी हो?

: हां सो तो हूं।

: इस मीठेपन का ईनाम?

: आखिरी बूंद तक निचुड़ते रहना।

यह संवाद किसी कविता की भांति हमें चिंतन के व्यापक वितान में ले जाता है, जैसे किसी ब्योम में यह हमें छोड़ कर चल देता है। यहां जीवन और अनुभव के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी सच्चाइयां नजर आने लगती हैं। ऐसा बार बार कहा-सुना गया है कि जो काम करेगा वही मरेगा... या फिर उसी पेड़ पर पत्थर फेंके जाते हैं, जो फलदार होता है। लघुकथाओं की महज कुछ पंक्तियों से गुजरते हुए अनेक ऐसी कुछ उक्तियां और संदर्भ हमारे दिलो-दिमाग में एक साथ सक्रिय हो उठते हैं।

लघुकथा विधा में कविता, कहानी, नाटक जैसी अनेक विधाओं का समावेश यहां प्रयोग के रूप में भी हम देख सकते हैं। एक रचनाकार यही चाहता है कि किसी भी प्रकार से अच्छे समाज के लिए ऐसी ईखें समाज घर-परिवार में सदा उपस्थित रहें और इस जीवन को वे अंत तक मीठा करती रहें। जीवन में जहर और अमृत दोनों है, यह फैसला हमारा है कि हम अपने भीतर क्या भरना रखना चाहते हैं।

यहां संसार को मीठा और सरस बनाने में स्वयं लघुकथाकार राम निवास बांयला रचनाकार के रूप में सतत सक्रिय हैं। वे केंद्रीय विद्यालय संगठन में हिंदी शिक्षक के रूप में सेवाएं देते हुए नई पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य हेतु प्रत्यनशील हैं। उनकी संवेदनाओं-अनुभूतियों-चिंतनों में विचारों की बहुआयामी छटा के अनेक क्षितिज इस संग्रह में हम यत्र-तत्र कहें सर्वत्र देख सकते हैं। कहने को बहुत कुछ है, किंतु यहां यह कहना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक लघुकथा अपनी बात स्वयं कह रही है। मैं 'उजास' संग्रह का स्वागत करते हुए अपनी शुभकानाएं देता हूं ?

लेखक- रामनिवास बॉयला
पुस्तक- उजास (लघुकथा संग्रह)
प्रकाशक- अभिलाषा प्रकाशन (राजस्थान)
मूल्य- 350/- (पृष्ठः 116)

समीक्षक : डॉ. नीरज दइया

संपर्कः डॉ. नीरज दइया, सी-107, वल्लभ गार्डेन, पवन पूरी, **बिकानेर**-334003, **राजस्थान**
मो. 9461375668

अपना-अपना आकाश

डॉ. रूपसिंह चंदेल

एक सुदीर्घ यात्रा के पश्चात हिन्दी लघुकथा ने आठवें दशक में जो करवट ली वह इतना सकारात्मक सिद्ध हुआ कि उस दौरान युवाओं का एक पूरा काफिला उसकी यात्रा में शामिल हो गया। तारिका (रमेश बतरा के सम्पादन में प्रकाशित लघुकथा विशेषांक) के पश्चात सारिका ने इस विधा के महत्व को पहचाना और स्थान-पूर्ति के रूप में नहीं बल्कि एक विधा के रूप में उसे स्थान देना प्रारंभ किया. यह कहना कठिन है कि यह रमेश बतरा के सद्प्रयासों के कारण संभव हुआ या कमलेश्वर ने स्वयं इसके महत्व का संज्ञान लिया, लेकिन अटकन और भटकन से निकलकर एक विधा के रूप में इसे पहचान मिली। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि युवाओं का जो काफिला इस यात्रा में शामिल हुआ था उनमें अनेक कथाकार कहानियां भी लिख रहे थे और उल्लेखनीय कहानियों के साथ सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि विषमताओं और विद्रूपताओं को केन्द्र में रख लघुकथाओं के रूप में अपना सशक्त रचनात्मक अवदान भी प्रस्तुत कर रहे थे। उन युवाओं में एक नाम था माधव नागदा। नागदा ने जहां अवस्मरणीय कहानियां लिखीं वहीं समय से साक्षात करती यादगार लघुकथाएं भी। लघुकथा के विषय में इस चर्चित कथाकार का कथन है :

'गैर मामूली समय के सच को लघुकथा के सीमित कलेवर में बांध पाना भी गैरमामूली कौशल है। भ्रष्टाचार बनाम शिष्टाचार, घोटालों का सीरियल ब्लास्ट और घोटालेबाजों को बचाने की बेशर्म मुहिम, —राजनीति का अपराधीकरण'। क्षरित होते नैतिक मूल्य व दरकते सामाजिक संबंध, आदि विसंगतियों से आकाश अटा पड़ा है। इतना बवण्डर धूल-धक्कड़ एक साथ. समकालीन लघुकथा इन समस्त विडम्बनाओं, विद्रूपताओं, अन्तर्विरोध, अन्तर्द्वन्द्व और इनके बरअक्स परिवर्तन के लिए आमजन की कुलबुलाहट-कसमाहट, मध्यवर्ग के ठसपन तथा उच्चवर्ग के उजड्डपन की सार्थक अभिव्यक्ति करने में समर्थ है।'

लघुकथा की सक्षमता के विषय में माधव नागदा ने अपने सद्यः प्रकाशित लघुकथा संग्रह 'अपना अपना आकाश' में उपरोक्त बातों के अतिरिक्त भी बहुत कुछ लिखा है जो इस विधा के प्रति उनकी वैचारिक दृष्टि का द्योतक है। चौहत्तर लघुकथाओं को समेटे उनके संग्रह की हर रचना विषय की सघन और सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। लेखक के पास सटीक और प्रवहशील भाषा है और है विधानुकूल शिल्प। उनकी अनेक रचनाओं में लोक जीवन अनायास ही उद्भाषित होता है। आम जन-जीवन के विरूद्ध घटित हर चीज उन्हें व्याकुल, चिन्तित और आहत करती है। 'परिवार की लाड़ली' में ट्रक के बहाने महिलाओं की वास्तविक स्थिति को बहुत ही सार्थक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'छूट' भ्रष्टाचार को उजागर करती लघुकथा है। यह दो बाबुओं 'रामबाबू और श्यामबाबू' को केन्द्र में रखकर लिखी गयी है और 'बिग बॉस', जैसा भी होता है', और 'उपवास' इन्हीं पात्रों को आधार बनाकर लिखी गयी लघुकथाएं है, जो सरकारी तंत्र की स्थितियों पर केन्द्रित हैं। 'उपवास' रिश्वतखोरी पर तीखा व्यंग्य करती है। रामबाबू द्वारा बढ़ाई गई नाश्ते की प्लेट को श्यामबाबू यह कहकर मना कर देते हैं कि आज उनका उपवास है। वह कहते हैं कि उपवास में वह कुछ नहीं लेते। रामबाबू पूछते हैं, 'क्या रिश्वत भी नहीं?' श्यामबाबू हो हो कर हंस पड़े। फिर ढीठतापूर्वक बोले, 'रिश्वत खाने से बंधु उपवास नहीं टूटता क्योंकि वह पेट में नहीं जेब में जाती है।'

'अग्निपरीक्षा' एक स्त्री की जागरूकता को उद्घाटित करती है। पति देश-विदेश में वर्षों बिताकर लौटा है। पत्नी उसे अपने पास आने से रोकती हुई कहती है, 'शहर जाकर एड्स

की जांच करवा लो।' 'जीवोजीवस्य भोजनम' बाजारवाद को बखूबी व्याख्यायित करती है। 'दादी, कहानी सुनाओ ना' परिवर्तित समय को अभिव्यक्त करती है जहां दादी पोते को कहानी सुनाने के बजाए सीरियल देखना अधिक पसंद करती है।

'जली हुई रस्सी' सामाजिक विषमता और राजनैतिक अवसरवाद की एक जीवन्त लघुकथा है। भानुप्रताप सरपंच पद के उम्मीदवार हैं. वह कहते हैं, 'देखो भाई, अपना तो बहुत पुराना व्यवहार है। चोली-दामन का साथ। तुम्हारे बाप-दादाओं ने हमारा खूब नमक खाया है।' इस पर उन्हें जो उत्तर सुनने को मिलता है, वह इस रचना को हिन्दी की श्रेष्ठतम लघुकथाओं के मध्य आसीन करती है। 'मार भी घणी खायी है होकम' एक बूढ़ा खड़खड़ खंखारते हुए बोला. उसकी आवाज में दर्द था और इतिहास भी, 'नीमड़े (नीम) से बांधकर सड़के (बेंत) मारते थे सड़ाक, सड़ाक।'

'पुरानी फाइल' जात-पांत पर केन्द्रित है। 'प्रेरणा' उस वास्तविकता से साक्षात करवाती है जहां पैसे देकर कुछ लोग अपने नाम से पुस्तकें लिखवा लेते हैं। 'प्रेरणा' के शर्मा जी भी यही करते हैं और पुस्तक का नाम होता है 'नैतिक शिक्षा'..लघुकथा में छुपा व्यंग्य पाठक को सोचने के लिए विवश करता है। 'अपना-अपना आकाश' माधव नागदा की बहु-चर्चित लघुकथा है। 'बच्चों का भविष्य सुखमय कैसे हो' विषय पर लोग जिस कमरे में गोष्ठी करते हैं उससे खेलते बच्चों को निकाल बाहर किया जाता है. बच्चे भागकर एक खंडहर में जा पहुंचते हैं। अपने घर बनाते हैं। खोजते अभिभावकों के पूछने पर बच्चे कहते हैं, 'ये हमारे घर हैं, यहां हम खूब खेलेंगे, हमें यहां से कोई नहीं निकाल सकता'। यह लघुकथा अनेक प्रश्न छोड़ जाती है और सोचने के लिए विवश करती है। 'जहरीले' मनुष्य की अमावनीयता पर करारा प्रहार है। जीवन की छोटी-बड़ी वास्तविकाताओं की गहन अनुभूति माधव नागदा के पास है और उन वास्तविकताओं को बहुत ही सधे ढंग से जिस प्रकार वह शब्द देते हैं वह पाठक को चौंकाता नहीं बल्कि उससे रू-ब-रू कर सोचने के लिए विवश कर देता है। 'बुढ़ापा', 'डर', 'परिचय', 'मां नहीं पूछती है कि—' 'मेरी बारी', 'बातचीत' आदि लघुकथाएं इसी प्रकार की हैं। सामाजिक स्थितियां लेखक को उद्वेलित करती हैं और उसके द्वारा लिखित रचना पढ़कर पाठक उद्वेलित हुए बिना नहीं रह पाता। भ्रुण हत्या पर 'हम हैं न' और 'अगले जनम में' जीवन्त, मार्मिक और हिला देने वाली लघुकथाएं हैं। 'उत्तराधिकारी' एक जैसी सामाजिक विद्रूपता को उद्घाटित करती है जिसका आज समाज भयानक रूप से शिकार होता जा रहा है। धन के लालच में संतानें पिता की लाश को भूल जाती हैं, लेकिन जब वह चौथे मटके के धन की ओर बढ़ती हैं—वहां उन्हें पहले से ही मौजूद उनकी संताने उस पर काबिज मिलती हैं। लेखक का कौशल पाठक को आकर्षित करता है। 'ख्वाहिश' में पत्नी की पीड़ा स्त्रीजनित पीड़ा स्पष्ट है। पति जब जीवन के प्रारंभिक दिनों में पत्नी द्वारा कही जाने वाली बात, 'हर जनम में मुझे आप जैसा ही पति मिले' कहने के लिए पत्नी को बार बार कोंचता है तब अंततः वह जो कुछ कहती है वह स्त्री पीड़ा को अभिव्यक्त करती है. वह कहती है, 'क्या कहूं! —मैं अगले जनम में औरत नहीं आदमी बनना चाहती हूं।', 'खौफ', 'लड़की', 'मुझे ज़िन्दगी देने वाले', 'बैक ग्राउण्ड', 'रईस आदमी' 'प्रशिक्षण', 'दुख की भाषा', रद्दी की टोकरी' आदि संग्रह की अन्य लघुकथाएं लेखक को हिन्दी लघुकथा विधा का उल्लेखनीय रचनाकार सिद्ध करती हैं। भाषा पर माधव नागदा की पकड़ अद्भुत है। मैं कमलेश्वर को हिन्दी कहानी का जादूगर कहा करता था, लघुकथा के लिए यह शब्द यदि मैं माधव नागदा के लिए प्रयोग करूं तो अत्युक्ति न होगी। इस संग्रह में पुलिस तंत्र पर केन्द्रित अनेक लघुकथाएं हैं। आम जन का सबसे अधिक सामना जिस तंत्र से पड़ता है पुलिस उसमें से प्रमुख है और माधव नागदा की रचनाएं इस तंत्र के क्रूर, विद्रुप और जन-विरूद्ध उस चेहरे को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में सफल रही हैं जो एक कड़वी वास्तविकता है। यदि सम्पूर्णता में संग्रह की बात करूं तो हिन्दी लघुकथा विधा के क्षेत्र में नागदा का यह समीक्ष्य संग्रह अपनी तमाम विशेषताओं के कारण मील का पत्थर सिद्ध होगा।

समीक्षक : डॉ. रूपसिंह चंदेल

लेखक- माधव नागदा

पुस्तक- अपना-अपना आकाश

प्रकाशक- ऋचा (इंडिया) पब्लिशर्स, विकानेर

मूल्य- 250/- (पृष्ठ 128)

संपर्कः डॉ. रूपसिंह चंदेल, फ्लेट नम्बरः 705 टॉवर-8, बिपुल गार्डेन्स, धरूहेरा हरियाणा 123106

मो. 9059948233

अनेक संभावनाओं के द्वार खोलती: 'संभावना'

डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल

'हिंदी लघुकथा का विकास' नामक पुस्तक में अंजलि शर्मा लिखती हैं कि 'आज की लघुकथाओं और प्राचीन काल की लघुकथाओं के दृष्टिकोण में अंतर है। आधुनिक लघुकथाएं पंचतंत्र और हितोपदेश से बाह्य आकार में साम्य हो सकती हैं, किंतु वैचारिक धरातल पर दोनों में भिन्नता है। पंचतंत्र और हितोपदेश की लघुकथाओं का आविर्भाव आचार्यों द्वारा राजपुत्रों को उपदेश देने के लिए हुआ था। वर्तमान युग की लघुकथा व्यक्ति, समाज, देश-दुनिया में क्या हो रहा है, इसके क्या कारण है, इसके उत्पन्न कर्ता कौन हैं, अपने दायरे में संपूर्ण माहौल को समेटकर लघुकथा हमें यथार्थ से परिचित कराती है एवं मानव मस्तिष्क को झकझोरकर रख देती है (पृ. सं.41)।'

डॉ. अंजलि शर्मा जी का उपर्युक्त कथन हमें लघुकथाओं के स्वरूप को पहचानने में मदद करता है। लघुकथाओं ने समसामयिक परिवेश की परिस्थितियों का बखूबी उद्घाटन किया है। आकार में छोटी होने पर भी इसने न केवल समस्याओं को दर्शाया है, बल्कि उसका समाधान देने की भी चेष्टा की है।

डॉ. पंकज साहा जी ने अपने लघुकथा-संग्रह 'संभावना' में समसामयिक समस्याओं और चुनौतियों के बीच समाधान की संभावनाओं की तलाश की है। इस संग्रह में कुल 57 लघुकथाएं हैं। हर लघुकथा साहा जी के गहन जीवनानुभवों को दर्शाती है। संग्रह की पहली लघुकथा 'संभावना' में उन्होंने शैक्षणिक जगत में हो रही धांधली का पर्दाफाश किया है। विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर होने वाली धांधली आज के समय में आम बात हो गई है। अयोग्य उम्मीदवारों की नियुक्ति से जहां यह समस्या दिन- पर- दिन बढ़ती जा रही है, वहीं हमारा शैक्षिक-स्तर भी धीरे-धीरे कमजोर होता जा रहा है। कहीं इन नियुक्तियों में अर्थ काम करता है, तो कहीं पैरवी से अयोग्य उम्मीदवारों का चयन हो जाता है। अगर उम्मीदवार महिला है, तो अन्य संभावनाएं खोजी जाती हैं। 'संभावना' में भी इसी की चर्चा है। ट्यूशन आज भारत का नहीं विश्व का भी सबसे बड़ा व्यवसाय बन गया है। इसके कारण अनेक हैं। पढ़े-लिखे बेरोजगारों के लिए यह अर्थोपार्जन का एक साधन है। कुछ ट्यूटर बड़ी शिद्दत से इस पेशे को करते हैं। कितने ही बच्चों का भविष्य बनाने में इनके योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। लेकिन इनमें ही कुछ ऐसे भी होते हैं, जो व्यावसायिक मानसिकता से ग्रस्त होकर सिर्फ अपने नफे-नुकसान की बात सोचने लगते हैं। ऐसे लोगों को बच्चों के भविष्य से कुछ लेना- देना नहीं होता है। ये केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इस काम को करते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो शैक्षिक पदों पर बैठकर यह दुर्नीति करते हैं। 'उनकी बहन आज भी क्वांरी है' में इसी तथ्य की तरफ साहाजी ने हमारा ध्यान केंद्रित किया है। बेरोजगारी आज के संदर्भ में एक ऐसी चुनौती है, जिसका पूरा विश्व किसी-न-किसी रूप में सामना कर रहा है। साहा जी ने भी अनेक रचनाओं में इसके प्रभाव को दर्शाया है। 'कन्फेशन' में भी इसी समस्या को दर्शाने के साथ-साथ रचनाकार ने प्रशासन की हृदय-हीनता पर करारा व्यंग्य किया है। 'जिंदा मछली' में साहा जी ने उस सामाजिक सच्चाई की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, जिससे हम आए दिन रू-ब-रू होते रहते हैं। इस रचना में समाप्त होती मानवीय संवेदना को लेखक ने अत्यंत संजीदगी से उठाया है। भारतीय समाज रिश्ते-नातों का समाज है, लेकिन आज

इसकी नींव खोखली होती जा रही है। स्वार्थ-लोलुपता ने व्यक्ति के हृदय को संवेदनहीन बना दिया है। इसका प्रभाव यह पड़ा है कि मानव के ह्मदय से मानवता समाप्त हो चुकी है।

यह एक विडंबना है कि शोषक हो या शोषित अवसर का लाभ हर कोई उठाना चाहता है। इसके लिए वह उचित-अनुचित, नैतिकता-आदर्श आदि की परवाह नहीं करता है। प्रेमचंद ने अपनी 'नशा' कहानी में भी इस सत्य का उद्घाटन किया है। किसी की मजबूरी का फायदा उठाना आज आम बात है। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जिनके हृदय में मानवता जीवित होती है और समय आने पर वह समाज के समक्ष इसका उदाहरण भी पेश करते हैं। 'कुली' लेखक के इसी विचार को दर्शाती है। 'चिंता' चिता समान होती है। लेकिन हमारे समाज में अधिकांश लोग व्यर्थ की चिंताओं में अपना समय गंवा देते हैं। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि चिंताओं से ग्रस्त ऐसे प्राणी समस्याओं के मर्म को भी नहीं पहचानते हैं। दूसरों से भी जब यह अपनी चिंताओं का जिक्र करते हैं, तो समाधान पाने में असमर्थ हो जाते हैं। 'चिंता-1, चिंता-2' में लेखक की यही भावना सामने आई है। 'युगधर्म' में साहा जी ने समसामयिक यथार्थ को मुखरता के साथ बयां किया है। आज के दौर में मनुष्य अपने मूल्यों से दूर होता जा रहा है। इस युग में उसके लिए सिद्धांतों का कोई मतलब नहीं है। वह युग की अनैतिकता को युगधर्म मान उसे अपना रहा है। मनुष्य की इस अवसरवादी नीति को लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है- 'बेटे, अपनी आंखें फाड़कर देखो। आज सारा विश्व अमेरिका के साथ क्यों रहना चाह रहा है? एक समय का जगतगुरु भारत भी आज अमेरिका को अपना रहनुमा व उद्धारकर्ता मान रहा है, क्यों? क्योंकि उसके हाथ बहुत लंबे हैं, क्योंकि आज वह सबसे नामी बनिया है, जिसका सब कुछ बिकता है। आज नामी बनिया का युग है और युग के अनुसार चलना ही युगधर्म का पालन कहलाता है (पृ. सं.45)।

'नेताओं के भ्रष्टाचार और स्वार्थी प्रवृत्ति को साहाजी ने अपनी 'देशभक्त' रचना में बखूबी दर्शाया है। 'हां वत्स, जमाना बदल गया है। अब भगत सिंह, आजाद, पटेल, बोस, गांधी, शास्त्री आदि का जमाना नहीं रहा। अब तो' (पृ. सं. 46)।' लेखक के ये शब्द समसामयिक राजनेताओं के दोगले चरित्र की तरफ ही इशारा करते हैं। ऐसा माना जाता है कि ईश्वर की कृपा से ही हमें अन्न प्राप्त होता है इसलिए उसका अपमान नहीं करना चाहिए। कभी-कभी ऐसा दिन भी देखना पड़ जाता है, जब पास में पैसे होते हुए भी मनुष्य दाने-दाने को मोहताज नजर आता है। इसी सच्चाई को रचनाकार ने 'अन्न ब्रह्म' में बखूबी दर्शाया है।

'महत्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सींपी में रहता है।' प्रसाद जी की यह पंक्ति निश्चय ही आज के समय का यथार्थ है। व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कुछ भी कर सकता है। नैतिक-अनैतिक विचारों से दूर आज मनुष्य उस स्थिति में पहुंच गया है, जहां वह अपनी इच्छाओं का दास नजर आने लगा है। अवसरवादिता ने उसे मानव से दानव बना दिया है। 'आकांक्षा' में लेखक ने मनुष्य की इसी स्वार्थ-प्रवृत्ति को इन पंक्तियों में उजागर किया है- 'सर जी, आप तो जानते ही हैं कि शाहजहां ने ताजमहल को अपने हाथों से नहीं बनाया था। फिर भी सारी दुनिया ताजमहल को शाहजहां का मानती है। जिन कारीगरों ने ताजमहल को बनाया, ताजमहल के किसी पत्थर पर या ताजमहल-परिसर के किसी कोने में या इतिहास के किसी पन्ने पर उनका नामोल्लेख है, ऐसा मैंने न सुना है न पढ़ा है। आपने सुना हो तो कृपया बताइएगा (पृ. सं.51)। 'किसी भी तंत्र को चलाने के लिए आपसी सहयोग और सहमति की आवश्यकता होती है। जहां इसका अभाव होता है, वहां काम को सुचारू रूप से चलाने के लिए अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी तो महत्वपूर्ण काम भी खटाई में पड़ जाते हैं। देश की संसद इसका ज्वलंत उदाहरण है जहां आए दिन गैर जरूरी

बहसों से न जाने कितने आवश्यक काम धरे- के- धरे रह जाते हैं। आपसी सहमति न होने के कारण ही कभी-कभी सत्ता पक्ष की लाचारी साफ साफ झलकती है। 'विवशता' में लेखक ने इस यथार्थ को बखूबी उद्घाटित किया है।

होलिका दहन के अवसर पर होनेवाली परंपरा के नाम पर दिखावे का विरोध करते हुए साहा जी ने अपनी 'असर' रचना में लिखा है- 'परंपरा के निर्वाह के लिए प्रतीकात्मक रूप से थोड़ी-सी लकड़ी जलाई जा सकती है। इतनी सारी लकड़ियां जलाने से खामख्वाह पैसों की बर्बादी होती है, पर्यावरण प्रदूषण-बढ़ता है। धुएं के कारण कुछ लोगों को सांस की बीमारी हो सकती है और लकड़ियों से निकलने वाली चिनगारियों से कोई दुर्घटना भी घट सकती है(पृ. सं.55)।' इसी तरह नदी में पैसे फेंकनेवाली आस्था का समाधान देते हुए लेखक कहते हैं- 'आप इसे किसी जरूरतमंद को दान कर दें। इससे उसका भी भला हो जाएगा और आपको भी दान का पुण्य मिल जाएगा(पृ. सं.76)।' 'कविता की समझ' में लेखक ने ऐसे तथाकथित संपादकों पर व्यंग्य किया है, जिनमें साहित्य की समझ न के बराबर होते हुए भी वे दूसरों को साहित्य का ज्ञान देने में संकोच नहीं करते हैं। वर्तमान समय में भी ऐसे बहुत से उदाहरण हमें मिल जाते हैं।

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि पंकज साहा जी ने अपने लघुकथा-संग्रह 'संभावना' में युग-चेतना को वाणी दी है। ये लघुकथाएं उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति का एक ज्वलंत उदाहरण जान पड़ती हैं। हास्य-व्यंग्य के पुट से सुशोभित ये लघुकथाएं इस विधा को एक नयी गति और दिशा देने के साथ-साथ मानव-जीवन में समाप्त होते मूल्यों को पुनर्जीवित करने में भी असरदार साबित होंगी। कवि बिहारीलाल की निम्न पंक्तियाँ साहा जी के इस संग्रह पर फिट बैठती हैं-

'सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर।।'

समीक्षक : डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल

लेखक-डॉ. पंकज साहा
पुस्तक- 'संभावना'
प्रकाशक-इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड,
सी-122,सेक्टर-19, नोएडा-201301,
गौतमबुद्ध नगर, दिल्ली
मूल्य- 200/- (पेपरबैक्स)

संपर्कः डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज
खड़गपुर-721305, प.बं, मो.सं. 9932937094

कथाकार रविशंकर सिंह की लघुकथाओं का सामाजिक सरोकार

मकेश्वर रजक

हिन्दी साहित्य में लघुकथा नवीनतम विधा है। कुछ लोग इस विधा का आरंभ कथाकार माधव राव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' से मानते हैं। हिंदी की अन्य सभी विधाओं की तुलना में लघुकथा आकार में छोटी होने के कारण पाठकों के ज्यादा करीब है।

लघुकथा एक छोटी कहानी नहीं है। यह कहानी का संक्षिप्त रूप भी नहीं है। यह विधा अपने एकांगी स्वरूप में किसी भी एक विषय, एक घटना या एक क्षण पर आधारित होती है। इसी कहानी में जितनी ज्यादा मारक क्षमता होती है , लघुकथा प्रभाव में उससे कमतर भी नहीं है। लघुकथा अपने पाठकों में चेतना को जागृत करती है उसे सोचने के लिए विवश भी करती है। लघुकथा चुटकुलेबाजी भी नहीं है, व्यंग्य या पिन प्वाइंट लघुकथा के तत्व हो सकते हैं, लेकन पूरी तरह से व्यंग्य भी नहीं है।

आकार में लघु होने के बावजूद लघुकथा भी कथा ही है। इसमें कथा के सारे तत्व समाहित होते हैं, जैसे बरगद के बीज में एक विराट बरगद के वृक्ष का आकार सन्निहित होता है। लघुकथाएँ देखने में भले ही छोटी लगती हों, लेकिन इनके अंदर अति गंभीर सामाजिक सरोकार छिपा होता है। यही कारण है कि आज लघुकथा को एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

शिल्पांचल में कथाकार रविशंकर सिंह ने भी कई महत्वपूर्ण लघु कथाएं लिखी हैं। बोधि प्रकाशन से प्रकाशित 'कथा-लघुकथा' कथाकार रविशंकर सिंह का प्रथम कहानी-संग्रह है। इस संग्रह की सभी लघुकथाएं राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस संग्रह में कुल तैंतालिस लघु-कथाएँ संकलित हैं। इसके अलावा भी हंस, कथादेश, वागर्थ, अक्षर पर्व जैसी पत्रिकाओं में उनकी लघुकथाओं को पढ़ा जा सकता है।

'कथा लघुकथा' संग्रह की सभी लघु-कथाओं को भ्रष्ट राजनीति, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, कट्टरवादी सांप्रदायिकता और पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति के विरुद्ध सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत को बचाने की एक मुहिम माना जा सकता है।

कवि बिहारी लाल ने कहा है 'देखन में छोटन लगे, घाव करे गंभीर', यह उक्ति रवि शंकर सिंह की लघु कथाओं पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है।

इस संग्रह में 'डरे हुए लोग', 'गाली', 'और आदमी....?', 'सुखी आदमी', 'बहेलिया', 'प्रतीक्षा', 'कारोबार', 'सभ्य बस्ती', प्रतिक्रिया', 'झूठा-सच', 'भोलू सियार का राज-पाट', 'आत्मविश्वास', 'पथ-प्रदर्शक', 'गृह-प्रवेश', 'दीया और बाती', 'शिक्षित गाँव' आदि लघु-

कथाएँ समाज के विभिन्न पहलुओं को विभिन्न कोणों से देखती हैं और उसकी खामियों को अपना निशाना बनाती हैं।

'डरे हुए लोग', 'गृह-प्रवेश' तथा 'और आदमी....?' लघुकथा समाज में व्याप्त अंधविश्वास, जाति-पाँति, ब्राह्मणवादी संस्कृति एवं पाखंडियों पर प्रहार करती हुई एक स्वच्छ सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत की माँग करती है। 'गाली' और 'पथ-प्रदर्शक' लघुकथा तत्कालीन भ्रष्ट राजनेताओं की चरित्रहीनता एवं दिखावटी देशभक्ति को उजागर करती हुई स्पष्ट करती है कि पार्टी के कुछ कार्य-कर्ता जनता को सही रास्ता दिखाने के बजाय उन्हें दिग्भ्रमित करने से बाज नहीं आते हैं। एक अनजान शहर में जब कथा नायक पार्टी के एक कार्य-कर्ता से अपने गंतव्य तक पहुँचने का रास्ता पूछता है तो वह उसे गलत रास्ता बता देता है।

रवि शंकर सिंह की कथा की अपनी एक विशेषता रही है कि तमाम नकारात्मक स्थितियों में भी वे आशा की एक लौ को बचाए रखते हैं। एक बूढ़ा आदमी, जो कथावाचक की बातें सुन रहा होता है उसे सही रास्ता बताते हुए सतर्क करता है, 'तुम्हारा गंतव्य यहीं पास में है बेटा। तुम फलां गली से पैदल चलकर पंद्रह मिनट में वहाँ पहुँच सकते हो। तुम इनकी बातों में न आओ। ये लोग या तो खुद गुमराह हैं या तुम्हें गुमराह कर रहे हैं। आजादी के बाद से ये लोग जनता के साथ यही सलूक करते रहे हैं।' (पृष्ठ-116)

'कारोबार' और 'झूठा-सच' भी भ्रष्ट नेताओं, कम्पनियों और अफसरों की झूठी बयानबाजी की कथा है। लेखक के शब्दों में- 'बाबूजी, झूठ तो सभी बोल रहे हैं। जितनी बड़ी कंपनी उतना ही बड़ा झूठा विज्ञापन, जितना बड़ा नेता उतना ही झूठा भाषण?।' (पृष्ठ-105) 'भोलू सियार का राज-पाट' लघुकथा यह सिद्ध करती है कि जनता के खून को चूसकर ही शासक वर्ग ने अपना राजपाट कायम रखा है। हमें अपने जनप्रतिनिधि के चयन में बहुत सावधान रहने की जरूरत है। हमें ऐसे शासक की तलाश करनी चाहिए जो जनता का बिना खून चूसे उन्हें अच्छी शासन व्यवस्था दे सके। लेखक कहते हैं, 'तब से जंगल के जानवर ऐसे राजा की तलाश में हैं जो उन्हें बिना खून के ही सुंदर शासन दे सके।' (पृष्ठ-109)

'हादसा', 'दीया और बाती', 'बहेलिया' आदि लघु कथाएँ मनुष्यता पर ही प्रश्न-चिन्ह लगाती हैं। कथा में दिखाया गया है कि एक दुर्घटना में मारे गए एवं घायल लोगों की सहायता के लिए कोई सामने नहीं आता है, जबकि एक कौए की दुर्घटना में मौत होने पर हजारों कौए जमा हो जाते हैं।

'दीया और बाती' लघुकथा में बस दुर्घटना के समय बटमार यात्रियों के बैग छीनने में व्यस्त हैं, तो प्रेस-रिपोर्टर घायल-मृत लोगों की तस्वीर खींचने में, पर घायल लोगों की सहायता के लिए कोई सामने नहीं आता है।

अकारण नहीं है कि इस लघुकथा को पढ़कर 1993 के दौर में अफ्रीकी देश सूडान के भयंकर अकाल से पीड़ित एक इथोपियाई कुपोषित बच्ची का फोटोग्राफर केविन कार्टर द्वारा लिया गया फोटो याद आता है, जिसे न्यूयॉर्क टाइम्स ने 26 मार्च 1993 को प्रकाशित किया था। 23 मई 1994 के दिन कार्टर को कोलंबिया यूनिवर्सिटी के लॉ मेमोरियल लाइब्रेरी में पुरस्कार से नवाज़ा गया।

भूख ने उस बच्ची को बेदम कर रखा है। बताते हैं कि केविन ने 20 मिनट तक इस दृश्य को देखा और अपने कैमरे में क़ैद कर लिया और उस गिद्ध को वहां से उड़ा दिया। उसके पीछे एक गिद्ध बैठा हुआ है जो उसके प्राण निकल जाने के इंतजार में था। कालांतर में जब उस फोटोग्राफर पर जब सवाल उठने लगे कि जब बच्ची मर रही थी तो वह फोटोग्राफर क्या कर रहा था ? वह चाहता तो उसे बचा सकता था, लेकिन वह फोटो लेने में

ही व्यस्त रहा। इस सवाल ने फोटोग्राफर को इतना व्यथित कर दिया कि उसने आत्महत्या कर ली।

कहना न होगा कि इस मामले में मानव और उसकी मानवता पशु-पक्षियों से भी गई - बीती है।

खैर, रविशंकर सिंह की कथा में कुछ स्थानीय लोग बचाव कार्य में आगे आते हैं। अंत में लेखक कहते हैं, 'मुझे लगता है इस सघन अंधेरे में कुछ दीयों में अभी तक तेल और बाती है। जब तक इन दीयों में तेल और बाती है, तब तक इस अंधेरी दुनिया में थोड़ी मानवता बाकी है।' (पृष्ठ-135)

'बहेलिया' लघु कथा रंगभेद, जातिगत भेदभाव, धर्मगत भेदभाव, सांप्रदायिक भेदभाव, आपसी द्वेष-कलह, घृणा एवं मतभेद को भूलकर एवं एक रंग में ढलकर समाज विकास की बात करती है।

'सभ्य-बस्ती' और 'प्रतिक्रिया' स्त्री जीवन पर जुल्म, अत्याचार और शोषण की कथा है। 'प्रतिक्रिया' में जहाँ स्त्री अपने ही पति द्वारा प्रताड़ित होती है, वहीं 'सभ्य-बस्ती' में वह सभ्य समाज द्वारा प्रताड़ना और शारीरिक शोषण का शिकार होती है। वर्तमान सभ्य समाज का यही स्वरूप तैयार हुआ है। 'प्रतिक्रिया' में लेखक एक बच्ची के माध्यम से कहते हैं, 'मुझे लगा, जैसे पापा तुम्हें मारते हैं, उसी तरह गुड्डा भी मेरी गुड़िया को थप्पड़ मरेगा।' (पृष्ठ-103)

कहते हैं शिक्षा मनुष्य की आँखों को खोल देती है। मनुष्यों के बीच दूरियाँ कम कर देती है। शिक्षित समाज भेदहीन होता है, परंतु भूमंडलीकरण के इस दौर में इस समाज में जितने भेदभाव देखे जा रहे हैं, उतने भेदभाव पूर्ववर्ती समाज में भी नहीं था।

'शिक्षित गाँव' लघुकथा में लेखक ऐसे ही सभ्य समाज पर व्यंग्य करते हैं, 'अब गाँव की छाती पर नागिन की तरह तारकोल की सड़क लेटी है। कंधे पर हाई-वोल्टेज तार लादे दैत्याकार खंभे खड़े हैं। गाँव में अस्पताल, विद्यालय, बैंक और बाजार है। अब लोगों के दिलों की तरह ताजिये का आकार भी छोटा हो गया है। अब ताजिया हिंदुओं के दरवाजों पर नहीं आता। मुसलमान हिन्दू के अखाड़े में कुश्ती खेलने नहीं आते हैं। अब हमारा गाँव शिक्षित हो गया है?।' (पृष्ठ-137) कहना न होगा कि भूमंडलीकृत शिक्षा समाज में कुसंस्कृति को ही उत्पन्न किया है। जब व्यक्ति पर धर्म का भूत सवार हो जाता है तो उसके अंदर की मनुष्यता भी समाप्त हो जाती है। धर्म शिक्षा पर भारी पड़ जाता है और मनुष्य हैवान हो जाता है। वर्तमान समाज में हम इसे बखूबी देख रहे हैं और भोग भी रहे हैं।

'सुखी आदमी' लघुकथा सुखी मनुष्य पर व्यंग्य है। वस्तुतः सुखी मनुष्य वह नहीं है जिसके पास अपार धन-दौलत और ऐशोआराम की ज़िंदगी है, वरन सुखी मनुष्य वह है जो अपने मन से अभावों में भी संतुष्ट है।' जाको कछु नहीं चाहिए, सोई शाहंशाह। '

कथावाचक के एक प्रश्न के उत्तर में एक चायवाला लेखक को कहता है, 'बाबू, मुझे उन लोगों पर तरस आता है, जिनके जीवन में पैसों का योग है, लेकिन भोग नहीं। उनके पास बढ़िया पलंग है, पर नींद नहीं, बढ़िया भोजन है, पर भूख नहीं। अब मुझे देखिये, अफर कर खाता हूँ और बिथर कर सोता हूँ।' (पृष्ठ-91)

'आत्मविश्वास' कथा के माध्यम से कथाकार कहते हैं कि इस संसार में ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है। मनुष्य की शक्ति, उसका आत्मबल और आत्मविश्वास ही श्रेष्ठ है जिसपर कायम रहकर सफलता प्राप्त किया जा सकता है।

'व्रत' लघुकथा ब्राह्मणवादी संस्कृति का विरोध करती है। यह कहने में संकोच नहीं है कि अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़िवादी संस्कृति, धार्मिक विसंगतियाँ आदि ने ब्राह्मणवादी संस्कृति को जीवित रखा है। पूजा-पाठ, व्रत-त्योहार आदि के नाम पर पोंगा-पंडित आम समाज को मूर्ख बनाते रहते हैं एवं अप्रत्यक्ष रूप से उनका शोषण करते रहते हैं। 'व्रत' कहानी में एक गाय के मर जाने पर 'गौ-हत्या' के लिए प्रायश्चित की बात पंडित करता है। इसके लिए परिवार के एक सदस्य को

'गौ-हत्या' के पाप से बचने के लिए 'मौन-व्रत' धरण करके भीख मांगनी पड़ती है, जहां उसकी पहचान नहीं होने पर गाँव के लोग उसकी इतनी पिटाई करते हैं कि वह बेहोश हो जाता है। मौन व्रत के कारण वह न तो बोल पाता है और न ही अपना परिचय दे पाता है। लघुकथाकार ऐसी अंध- परंपरा का विरोध करते हैं। लघुकथाकार लिखते हैं, 'सूरज डूबने से पहले उसे ढूंढते हुए उसका भाई आया। उसकी सच्चाई जानकर लोग अपनी करनी पर पछताये। अचेत व्यक्ति के मुंह पर पानी के छींटे मारे गए। थोड़ी देर में उसके शरीर में हरकत हुई। उसने आँखें खोल दी। अपने बड़े भाई की दुर्दशा देखकर छोटे ने रोते हुए पूछा, 'भैया, आपने अपनी बात क्यों नहीं बताई?'

उसने इशारे से कलम-कागज माँगकर उसपर लिखा, 'मैं अगर बोलता तो मेरा व्रत टूट नहीं जाता? ' (पृष्ठ- 129)।

इस संग्रह की अन्य लघुकथाएं भी भाव और कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लेखक को लोक-भाषा, लोक-संस्कृति एवं लोक-परंपरा की अद्भुत समझ है और उसपर अटूट विश्वास है। यही कारण है कि वे अपनी रचनाओं में इसका पूरा इस्तेमाल करते हैं। अधिकांश कथाओं में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है, जिससे कथानक में विश्वसनीयता बनी हुई है। भाषा सरल, सहज, सुस्पष्ट और पात्रानुकूल है। भाषाई दृष्टिकोण से इनकी लघुकथाएं कहीं भी बोझिल नहीं हुई हैं। उनकी बोली में देशज बोली की मिठास है। ऐसे कथाकार से हिन्दी साहित्य को काफी उम्मीदे हैं।

लेखक- रविशंकर सिंह

पुस्तक- कथा-लघुकथा

प्रकाशक-बोधि प्रकाशन, जयपुर

मूल्य- 120/-

समीक्षक : मकेश्वर रजक

संपर्क – मकेश्वर रजक, S/43, रासबिहारी नायक सरणी,
रामकृष्ण पल्ली (दक्षिण), बेनाचिटी, दुर्गापुर, **बर्दवान** - 713213 (प.बं.),
मो. 9332653595, **ईमेल** – makeswar.rajak@rediffmail.com

स्पर्शिल मनोरचना तो लघुकथाओं का संवेदन है

डॉ. लता अग्रवाल

देवगढ़ मदारिया (राजसमंद,राज.) में जन्मे बी. एल. आच्छा जी का नाम समीक्षा साहित्य में शीर्षस्थ समीक्षकों में लिया जाता है। समीक्षा आपकी प्रमुख विधा है, किन्तु इसके साथ ही आपने व्यंग्य, काव्य आदि विधाओं में भी साहित्य साधना की है । उच्च शिक्षा, म.प्र. शासन से सेवानिवृत्त प्रो.आच्छा जी वर्तमान में चेन्नई में निवासरत हैं। जब भी लघुकथा में समीक्षा को लेकर चर्चा होती है तो आपका नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

लघुकथाओं की गहरी पड़ताल के साथ भाषा कौशल आपकी विशेषता है। पिछले दिनों भोपाल में आपसे मिलने का सुअवसर मिला ।बातों ही बातों में लघुकथा के विभिन्न पहलुओं पर आपसे विस्तार में चर्चा हुई। उसी चर्चा के कुछ अंश आप सभी के समक्ष।

डॉ. लता अग्रवाल- ***सर! स्वयं को लघुकथाकार कहलाना पसंद करेंगे या लघुकथा समीक्षक?***

बी. एल. आच्छा- लघुकथाएं तो कम ही लिखीं हैं, समीक्षा पर मेरा ज्यादा काम रहा है। इस वजह से लोग समीक्षक के रूप में ही मुझे जानते हैं।

डॉ. लता अग्रवाल- ***जी, तो हम एक समीक्षक से मुखातिब होते हैं। लघुकथा लेखन और समीक्षा में किस काम को अधिक गम्भीर मानते हैं?***

बी.एल. आच्छा - सृजन और समीक्षा दोनों साहित्य के योजक पक्ष हैं। आलोचना भी पुनःसृजन और विश्लेषण पूर्वक रचना का ही विस्तार है। रचना में लेखक का आंतरिक व्यक्तित्व होता है। लोक व्यवहार और सामाजिक यथार्थ होता है। ज्ञानधाराओं का स्पर्श होता है। लेखक के भीतर के रसायन होते हैं। पर लेखक से अलग आलोचक में भी इनको खंगालने का नजरिया होता है। लेखक के होमवर्क की तुलना में आलोचक का काम हल्का नहीं होता।

डॉ. लता अग्रवाल- ***अर्थात आलोचक या समीक्षक की दृष्टि लेखक की दृष्टि को खंगालती है। आप शिक्षाविद, भाषाविद, लघुकथा समीक्षक के रूप में हमारे साथ हैं, तो सबसे पहले बात भाषा की करते हैं। लघुकथा के माध्यम से भाषा विकास की क्या संभावना है?***

बी. एल. आच्छा- साहित्यकार के पास लोक की भाषा होती है। भावों की भाषा होती है। लोक की पीड़ा और संवेदना की भाषा होती है। यह सब उसके भीतर के रसायनों से तरल होती है। फिर वह न तो लोक की बोली से परहेज करता है और न ही सहज तत्सम रूपों से, न विदेशी शब्दों से। यह भी कि लघुकथाकार नुकीलेपन के साथ उसी शब्दावली में संवाद करता है, जो सामान्य पाठक को भीतर से चीरकर पसर जाए। लघुकथाएं इसलिए आसानी से रास्ता बना लेती हैं कि वे जटिल होने के बजाय भावसाध्य होती हैं। व्यंग्य- विडंबना से पाठक को खींचती हैं और उपदेश विहीन संदेश से पाठकीय मित्रता सहेजती हैं।

डॉ. लता अग्रवाल- ***लघुकथा, लोक भाषा एवं लोक संस्कृति को आप किस तरह परिभाषित करेंगे?***

बी. एल. आच्छा- असल में बड़ा कथाकार वही होता है, जो लोक से या लोक संस्कृति - व्यवहारों से गहरा रिश्ता बनाता है। हमें लोक संस्कृति और जन-व्यवहारों के छीजने या बदलते रिश्तों को मूल्यपरकता से संजोता है। इसका अर्थ यह नहीं कि लेखक मनोवैज्ञानिक गहराइयों की अनदेखी करे। समाज जिस तरह बदलता है, भाषा बदलते समाज संवेदन में उतार लाती है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***लघुकथा समीक्षा के दौरान क्या कसौटी होती है आपके समक्ष?***

बी. एल. आच्छा- मैं रचना की भाषा के सिंहद्वार से ही रचना में प्रविष्ट हो कर उसकी बुनावट की पड़ताल करता हूँ। यूँ तो विभिन्न विधाओं के शास्त्रीय तत्त्व दौड़े चले आते हैं रचना की पड़ताल के दौरान। पर मैं रचना को पूर्ण इकाई मानकर उसके भाषिक तत्त्वों को बारीकी से देखता हूँ, निपात से लेकर वाक्य तक।

शीर्षक की सार्थकता और कथा से सम्बद्धता तक, कथा के सन्देश की वहनीयता तक। फिर यथार्थ, चरित्र की आतंरिक ग्रंथियों और बाहरी तनावों तक। कथा की यति-गति और नाट्य विधान, दृश्यात्मकता और सन्देश की अर्थवक्ता, भाषा और संवेदना की एकतानता, जीवन और जीवन मूल्यों से कथा-विन्यास की पड़ताल तक। मूल्यबोध और सन्देश तक। पूरी लघुकथा को शीर्षक में व्यक्त करती व्यंजकता वगैरह-वगैरह। कभी ये लघुकथाएँ समय और विन्यास की चौखट का अतिक्रमण करती हैं, तो उस क्षमता को भी कसौटी पर कसकर समीक्षा करता हूँ।

डॉ. लता अग्रवाल- ***उफ ! वाकई बहुत गहराई है आपकी समीक्षा में। होना भी चाहिए तभी लेखन में स्तर बना रहता है। एक समीक्षक होने के नाते आप कैसी लघुकथा को पहली नजर में हरा सिग्नल देंगे ?***

बी. एल. आच्छा- यह तो लघुकथा पर निर्भर है। कई बार लघुकथा समीक्षा के पैमाने का अतिक्रमण करती है। आलोचक को नए प्रतिमान के लिए मजबूर करती है। इसलिए लाल हरे पीले सिग्नल तो आलोचक के नजरिए की स्टेज है। पर जीवन का स्पंदन कितना नुकीला और विन्यास कितना बुना हुआ इंटीग्रेटेड होता है, यह खास बात है ।

डॉ. लता अग्रवाल- ***बिल्कुल। आज लघुकथा की जमीन पर अगर 30 प्रतिशत पुराने लेखक हैं, तो 70 प्रतिशत नये। दोनों की दृष्टियों में आप क्या अंतर पाते हैं?***

बी. एल. आच्छा- नये पुराने का सवाल खूब आ रहा है। पुराने रचनाकार तकनीक और सामाजिक आपा-धापी से थोड़े दूर हैं। उनमें प्रकाशन का धीरज जरूर है। नए लघुकथाकार नये संवेदन को पकड़ते हैं, पर परिपक्व चिंता और विन्यास की तड़प के बगैर प्रकाशन के लिए अधीर हो जाते हैं। पर ऐसा नहीं कि पुरानों में नयापन नहीं और नयों में पुरानापन चुक गया है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***यदि इसे खूबी और कमियों में रेखांकित करना पड़े तो आप कितने अंक देंगे दोनों को?***

बी. एल. आच्छा- अंक देना टीवी सीरियल या परीक्षकों का काम है। मैं तो खूबियों कमजोरियों - का विश्लेषण करता हूँ। सृजन संभावनाओं का होता है, नंबरों का गेम नहीं। अलबत्ता पुरस्कारों के लिए मजबूरी बन जाती है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***आज लघुकथा क्षेत्र में कौन-सी समस्याएं आप देखते हैं? और उनसे उबरने के उपाय?***

बी. एल. आच्छा- असल में आज की हिंदी लघुकथा मध्यमवर्गीय समाज तक सिमट रही है। उसके कुछ अंदाज ग्लोबल हैं, तो कुछ किसानों- मजदूरों की व्यथा के परिवेशीय। समाजशास्त्र के विभिन्न परिदृश्यों के भीतर जीते हुए नई जमीन तलाशना जरूरी है। इस अनुभव से आज लघुकथा समाज की गलियों से, घर से, अपार्टमेंट और अपने बेडरूम तक सिमटती जा रही है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***अन्य विधाओं की अपेक्षा लघुकथा में समीक्षक कम हैं। क्या आप सहमत हैं? यदि हाँ तो कोई खास वजह?***

बी. एल. आच्छा- क्योंकि समीक्षक को वह दर्जा नहीं मिलता, जो लेखक को मिलता है। फिल्मी गीतों को देखिए। अभिनेता उस गीत को गाकर अमर हो जाता है और गीतकार सब देखकर भी पृष्ठभूमि में है। फिर उसे भी लगता है कि उसे क्या मिलेगा? फतवा यह भी कि आलोचकों की मूर्ति नहीं बनती।

डॉ. लता अग्रवाल- ***लघुकथा पत्रिका के संपादक को लघुकथा की विधा का ज्ञान कहाँ तक आवश्यक है ?***

बी. एल. आच्छा- अगर पत्रिका ही लघुकथा की है, तो संपादक को लघुकथा की ऐतिहासिक यात्रा को जानना होगा। उन पड़ावों को समझना होगा, जो बदलाव लाती हैं। समय की धड़कन और लघुकथा में उसके स्पंदन को समझना होगा। शैलियों की समझ भी पुख्ता करनी होगी। संपादक को पत्रिका के तकनीकी लेआउट को भी साधना होगा।

डॉ. लता अग्रवाल- ***अन्य विधाओं की तरह लघुकथा में शैलियों का क्या स्थान है? आपने अब तक कई समीक्षाएँ की हैं। इस दौरान आप ने किन शैलियों का अधिक प्रभाव देखा?***

बी. एल. आच्छा- शैली प्रयोग भी है, कथा विन्यास का नया सोच भी है।लेखक का आंतरिक व्यक्तित्व भी है। लेआउट तो - प्रभावी होना चाहिए। लघुकथा का स्थापत्य तो बदलना ही चाहिए। पर अधिकतर लघुकथाओं में कथाकथन की वर्णनात्मक या संवादात्मक शैली होती है। कभी मानवेतर पंचतंत्र शिल्प में। आत्मकथात्मक, पत्रात्मक या डायरी शैली उतनी सहज न हो, पर नाट्यतत्व और दृश्यात्मकता के साथ बुनावट में इंटीग्रेटेड यानी अंतर्गठित तो हो ही।

डॉ. लता अग्रवाल- ***समाज में चेतना का विकास करने हेतु किस तरह की लघुकथाएँ अपेक्षित हैं?***

बी. एल. आच्छा- लघुकथा किसी संदेश को लेकर प्रायोजित नहीं होतीं पर सामाजिक चेतना तो साहित्य का आंतरिक प्रयोजन है। उसकी इयत्ता है। जो लघुकथाएं तर्कसम्मत भाव को जगाए, बाजार की कुटिलता पर आघात करे। रिश्तों के उदात्त अंदाज को सहेजे। वे ही अच्छी लगती हैं, जो चट्टानों से टकराएँ।

डॉ. लता अग्रवाल- ***वर्तमान में लघुकथा आदर्शवाद की अपेक्षा यथार्थ के अधिक निकट है। इसकी कोई खास वजह ?***

बी. एल. आच्छा- आदर्शों की फसल तो प्रेमचंद की पूस की रात में भी नील गायों द्वारा चर ली गई थी। इसका अर्थ यह नहीं कि आदर्शो की जरूरत नहीं है। दरअसल आदर्श अब यथार्थ से टकराते हुए उस भाव तरलता में आ रहे हैं, जो प्रायोजित संदेश नहीं देते। सामाजिक दृष्टि भी वास्तविकताओं से रूबरू होकर उन रास्तों को तलाशती है, जो वास्तविक है। आदर्शों की काल्पनिकता अब बीते जमाने का यूटोपिया है।अब संदेशों का उदात्त पक्ष यथार्थ की टकराहटों के बीच से ही सृजन करता है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***जी सहमत हूँ। लघुकथा मनोविज्ञान को किस हद तक छू पाई है?***

बी. एल. आच्छा-जिसे मनोविज्ञान या मनोविश्लेषण कहते हैं, उसमें वर्णित ग्रंथियों का समावेश तो नहीं हुआ है। कथा साहित्य में यह अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी या जैनेन्द्र में था। पर भावों की स्पर्शिल मनोरचना तो लघुकथाओं का संवेदन है। लघुकथा के छोटे से कलेवर में इन ग्रंथियों को उतार लाने के लिए स्पेस कम ही होता है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***जी। मनोविज्ञान को, जो भाव प्रभावित करे वह भी लघुकथा की सार्थक उपादेयता है । क्या आपको भी लगता है कि लघुकथा को व्याकरणिक विधा में बाँधने की आवश्यकता है ?***

बी. एल.आच्छा- कतई नहीं। शास्त्र को समझ कर रचना में सिद्ध करना चाहिए, न कि उसकी सीढ़ियों से रचना की जानी चाहिए। यह व्याकरण तो बदलता रहता है। सिद्ध रचनाकार चौखट को ही चरमरा कर नया उन्मेष देते हैं। पर नवागतों को विधा के व्याकरण को जानना चाहिए। जो जाने-माने रचनाकार हैं, उनकी रचनाओं से गुजरना चाहिए।

डॉ. लता अग्रवाल- अगर कहूँ कि अनुभव और अध्ययन ही लेखन को सशक्त बनाते हैं। लघुकथा में सैद्धांतिक और व्यावहारिक विमर्श को पाठकों के लिए स्पष्ट करें?

बी. एल. आच्छा- सैद्धांतिक रूप से विमर्श दो तरह के होते हैं। एक तो लघुकथा की बुनावट का शास्त्रीय पक्ष, दूसरे जो नारी विमर्श की तरह अनेक विमर्श वैचारिक स्तर पर हैं। व्यावहारिक विमर्श रचना केंद्रित होगा और बड़े स्तर पर शास्त्रीय मान्यताओं को भी चुनौती देगा। यह चुनौती बनावट के स्तर पर भी और चेतना के बदलाव के स्तर पर भी है। आलोचक कैसे अपने नजरिए से इन रचनाओं को चीरकर उसके नये संवेदन की पड़ताल करता है, यह देखने की बात है। लघुकथाएँ जब लेखकीय उद्वेलन से विमर्श की ओर जाती हैं तो अधिक सहज होती है। विमर्शों से सृजन की ओर आती हैं, तो कुछ कुछ प्रायोजित।

डॉ. लता अग्रवाल- ***मतलब यह कि शास्त्रीय और व्यावहारिक दोनों ही पक्षों की ओर लघुकथाकार की दृष्टि होनी चाहिए। लघुकथा में माइक्रोस्कोपिक फोकस कितना आवश्यक है?***

बी.एल. आच्छा-माइक्रोस्कोपिक फोकस तब जरूरी है जब किसी अंतर्द्वंद्व को पात्र में उभारना हो। चरित्र के मनोगत पक्ष के उद्वेलन को दिखाना हो। पर यदि यह परिप्रेक्ष्य किसी सामाजिकता से जुड़ा हो तो वह 'मेक्रो' भी हो जाता है। बस इतना जरूर है कि विन्यास जटिल, अमूर्त और ज्यादा सांकेतिक न हो।

डॉ. लता अग्रवाल- ***जी। कहते हैं कि लघुकथा का सौंदर्य घाव में नहीं दर्द में समाया है? इसका अर्थ आपसे जानना चाहेंगे?***

बी. एल. आच्छा- इसे यूँ समझिए कि काँटा चुभता है, तो पाँव ऊँचा करके चलते हैं। पर जब काँटा निकल जाता है, तो भी दर्द बना रहता है और कुरेदते रहने की इच्छा बनी रहती है। पाठक यह सचेत कुरेदन महसूस करता रहे। अच्छी लघुकथाएं इस कुरेदन के कारण पाठक से चिपक जाती हैं।

डॉ. लता अग्रवाल- ***बहुत खूब। लघुकथा सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में कितनी सशक्त साबित हुई है ?***

बी. एल. आच्छा- लघुकथाओं ने सामाजिक रूढ़ियों पर आघात किए हैं । पूजन और श्राद्ध के बजाए बीमार पात्र की सेवा चिकित्सा को तरजीह दी है । असल में सारी धार्मिक या सामाजिक परंपराओं में मानवीय अर्थवत्ता और सामाजिकता के तर्क को रचनात्मक संगति दी है। यही नहीं आधुनिकताओं के कर्मकांड पर भी प्रहार किए हैं।

डॉ. लता अग्रवाल- ***अर्थात लघुकथा अपने लक्ष्य में सफल हुई है । लघुकथा में विचार और संवेदना में कितना संतुलन होना चाहिए?***

बी. एल. आच्छा-विचार और सम्वेदना का अनुपात नहीं, बल्कि रचना प्रक्रिया में विचार का संवेदना में रूपांतरण जरूरी है। प्रतिबद्ध विचारधाराएं भी रचना का सहज विन्यास बनें । व्यक्तिगत विचार रचना में लेखकीय प्रवेश न बनें। यह जरूरी है कि पात्र खुद बोलें। लेखक पात्रों को अपना तोता ना बनाएँ। संवेदना विचार को मजबूत कर उसे तरल रसायन बना देती है, जो पाठक भी अपना लेता है। यही भावांतर की रासायनिक प्रक्रिया है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***बीजपरक लघुकथाएँ अथवा उर्वर लघुकथाएं किसे कहेंगे ?***

बी. एल. आच्छा- बीजपरक लघुकथाएं टाइप्ड होती चली जाएंगी और उर्वर लघुकथाएँ अपनी जमीन, अपने तेवर अपनी सहजता के साथ अपने समय में धड़कती चली जाएँगी उनमें ही नए संवेदन और नवोन्मेषी प्रयोग की संभावनाएं हैं ।

डॉ. लता अग्रवाल- ***अर्थात लघुकथाकार का प्रयास उर्वर लघुकथाओं की ओर अधिक होना चाहिए। भूमंडलीकरण के दौर में लघुकथा को कहां पाते हैं?***

बी. एल. आच्छा- यह दौर बैलगाड़ी से भी मुक्त नहीं है और भूमंडलीकरण से अछूता भी नहीं। हिंदी लघुकथा अभी भूमंडलीकरण और प्रौद्योगिकी को उतना आत्मसात नहीं कर पा रही है। पर हमारी अंतड़ियों में अब तकनीक का स्पर्श झलकने लगा है। प्रवासी रचनाकार इसे ज्यादा व्यक्त कर रहे हैं।

डॉ. लता अग्रवाल- ***वैसे वह दौर छूटना भी नहीं चाहिए। भूमंडलीकरण की यात्रा संस्कृति के साथ हो तो ही सामंजस्य बना रहेगा । आप वरिष्ठ समालोचक हैं। आपकी दृष्टि से कई लघुकथाएं गुजरी हैं। क्या कभी ऐसा महसूस हुआ कि इन विषयों सम्बन्धी कथानक वाली रचनाओं की कमी है ?***

बी. एल. आच्छा- मैंने पहले ही कहा है कि प्रौद्योगिकी अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज और एलीट समाज के कथानकों का वैसा समावेश नहीं हुआ है। इसीलिए कथानक मध्यमवर्गीय परिवेश में अधिक लिपटे-सिमटे हैं। किसान मजदूर भी परिदृश्यों से कमतर हुए हैं। पर्यावरण और जीव-जंतुओं की पीड़ाओं से सरोकार कमतर।

डॉ. लता अग्रवाल- ***जी। गौतम सान्याल जी ने लघुकथा को प्रतिशोध का रचना कौशल, विरूद्ध का कथ्य, विरोध की कला माना है। इस संबंध में खुलासा करें।***

बी. एल. आच्छा- मुझे यह एकांगी विचार लगता है। जिन लघुकथाओं में व्यंग्यपरकता है, वहाँ प्रतिकार

है। प्रतिशोध शब्द मुझे रूचता नहीं है। पर अनेक लघुकथाओं में सामाजिक यथार्थ की सारी बिवाइयों के बावजूद सामंजस्य की संभावनाएं हैं। यों मोटे तौर पर साहित्य को प्रतिपक्ष की सर्जना कह दिया जाता है, पर हमारी धारणा विरूद्धों के सामंजस्य की भी है और लघुकथाओं में यह ज्यादा ही है । विसंगतियों से गुजरते हुए संगतियों की रूझान अवांछित नहीं है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***सही कहा। नई कलम से आप क्या अपेक्षा रखते हैं ?***

बी. एल. आच्छा- इतना ही कि वे बदलती राजनीति, समाज, पारिवारिक रिश्तों ,दबे हुए वर्गों की चिंताओं, पर्यावरण, प्रौद्योगिकी के प्रभाव, अंतरराष्ट्रीय दबावों की समझ को तार्किकता के साथ समझें। श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों से गुजरें। असल में उन्हीं में से नया कथातत्व फूटता है और प्रयोगी शिल्प भी दरकता है। नयी जमीन और लघुकथा की फसल को कुछ समय अनाकुल होकर दें। छपना सिद्धि नहीं है । उस तड़प, संवेदना या सौंदर्य को पाठक में धकेल देना सिद्धि है ।

डॉ. लता अग्रवाल- ***सहमत हूँ। रचना पाठकों के दिलों पर राज करे ,उसी में उसकी सिध्दि है । लघुकथा में विषय-वैविध्य को लेकर आपसे विस्तार में जानना चाहेंगे?***

बी. एल. आच्छा-विषयों की विविधता लेखक को बड़ा कैनवास देती है। क्योंकि लघुकथा का अक्स या क्षेत्रफल सीमित है, पर क्षणों का अनुभव विराट। उससे नये अक्स विकसित होते हैं। विषय एक सा हो पर उसका वस्तुतत्व भिन्न हो ,व्यंजना अलग हो, ट्रीटमेंट अलग हो। शैली में नयापन है, तो यह भी वैविध्य है। बस इकहरेपन से हर स्तर पर बचना चाहिए। तय है कि लेखकों को अनजाने परिवेश से भी जुड़ना पड़ता है। मनोभावों और तकनीक से उपजे नये परिदृश्यों को समझना पड़ता है । घटनाओं से साक्षात होना पड़ता है। मैं तो कई बार कहता हूँ कि नेपथ्य में रहकर जासूसी करनी पड़े तो भी। पर नए संदर्भ और नए परिदृश्यों की गहरी पड़ताल लेखकीय सृजन में यथार्थ और सृजनात्मक कल्पना का अनुभव बने।

डॉ. लता अग्रवाल- ***अर्थात विषय एक हो सकता है किन्तु लेखक का अनुभव संसार प्रस्तुतीकरण में वैविध्य उत्पन्न कर सकता है। बदलते परिवेश का लघुकथा पर प्रभाव?***

बी. एल. आच्छा-बदलते परिवेश के कारण कई बार कुछ लघुकथाएँ ऐतिहासिक महत्व की बनकर रह जाती हैं। भले ही वे अपने समय में शीर्ष पर रही हों। एक युग भावुकता और आदर्शों का था। एक युग यथार्थ और उदात्त संदेशों का होता है। तो अंतर साफ है। भावुकता पर तर्क, नैतिक उपदेशों की स्थूलता पर तरल सहकार, वर्णनात्मक शिल्प पर नाट्य-दृश्यों का समावेश, विधाओं का संक्रमण। ये सब बदलाव आते हैं। फिर मार्क्स-गांधी का युग अब ग्लोबल बदलावों के साथ अपनी प्रासंगिकताओं को तलाशता है, तो सामंजस्य की दृष्टि बाजार और वैश्विक स्तर पर सामाजिक, राजनैतिक बदलावों से टकराती है। तकनीक कुछ नया रचती है। यह भी कि बैलगाड़ी और किसानों की आत्महत्याएं भी हैं और अन्य ग्रहों पर बसने की तैयारी भी। इस फांक के बीच जीवन है, संचार हैं, मीडिया है, युध्द है, पड़ौस का भूगोल है, पारिवारिक बिखराव हैं। वगैरह-वगैरह। तो टूटन और बदलाव तो साफ हैं। रिश्तों की नैतिक भावुकता अब वृद्धाश्रमों में शरणार्थी बन गयी है।

राजनीति का चरित्र बदला है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार की कूट चालें अनसमझी हैं। ये सब परिवेश के बदलाव हैं और लघुकथाओं के छोटे से भूगोल में तनाव और मानसिक संरचना को सामने लाते हैं।

डॉ. लता अग्रवाल- ***आशय यही कि बदलते परिवेश ने लघुकथा को विस्तृत फलक की चुनौती दी है । लघुकथा में विविध विमर्श के बारे में आपकी क्या राय है? लघुकथा में विमर्श के माध्यम से कितनी सार्थक चर्चा हुई है?***

बी. एल. आच्छा- असल में विमर्श पढ़कर लघुकथा संरचना नहीं होती। आदमी या समुदाय, जेंडर या जाति, व्यक्ति और प्रतिबद्ध समूह जब टकराते हैं, तो अनुभव भी नया होता है । पर फैशन के बतौर पराए विमर्श सृजन नहीं बन पाते । सांस्कृतिक और सामाजिक भूगोल अलग होता है, तो यह विमर्श भी अलगाव दिखाते हैं।

मसलन पश्चिम का नारी विमर्श, भारतीय नारी विमर्श से अलग जमीन पर रेखांकित हुआ। यही बात अन्य जेंडरों या दलित जैसे विमर्शों की है। प्रसिद्ध व्यक्तित्व और विमर्श सामाजिक चेतना को जगाते हैं। पर वे सब सृजन के अंगभूत बनें और पात्र लेखक की कठपुतली ना बनें । न ही लेखक के अनुभव से गुज़रे बगैर फैशन के बतौर इन विमर्शों के साथ विधा में उतरें।

डॉ. लता अग्रवाल- ***बिलकुल सही । विमर्श किसी विचार को पाठकों तक पहुँचाने का स्वस्थ जरिया बने। बदलते परिवेश के साथ क्या समस्याएं लघुकथा के क्षेत्र में महसूस हो रही हैं?***

बी. एल. आच्छा-जब से लघुकथाएँ यथार्थ से जुड़ी हैं, तो समस्याएं तो हर कोने से सृजन का अंग बन रही हैं। बस लेखक के अनुभव संसार में यह समस्याएं कैसी तड़प दिखाती हैं और किस नुकीले स्पर्श के साथ ट्रीटमेंट पाती हैं, यही देखने की बात है। आदर्शों की पुरानी भावुकता रह-रहकर इसलिए भी झांकती हैं कि सामाजिक टूट-फूट में हम ऐसे चरित्र को तलाशने की कोशिश करते हैं, जो दिशा दे । हमारे यहाँ आज भी विरूद्धों के सामंजस्य की बात आलोचना में कायम है। इसलिए अक्सर समाधान या संदेश की व्यंजना होती है और यह अपेक्षा भी रहती है। क्योंकि आखिरकार साहित्य मानवीय अर्थवत्ता तो तलाशता ही है। व्यक्ति स्वातंत्र्य, विस्थापन, पारिवारिक टूटन, वृद्धाश्रम, किन्नर कथा, नारी अस्मिता, राजनीतिक-प्रशासनिक भ्रष्टता , एकाकीपन, उत्तर आधुनिकता के दंश आदि न जाने कितनी ही समस्याएं इन रचनाओं में विस्फोट कर रही हैं।

डॉ. लता अग्रवाल- ***बिलकुल। जीवन और समाज की समस्याओं को सबके सामने लाना ही साहित्य की विधाओं का उद्देश्य होता है, लघुकथा इससे परे नहीं । प्राचीन समय में बोध कथाएं जिनका उद्देश्य नैतिक मूल्य का विकास करना होता था और आधुनिक लघुकथाएं नैतिक मूल्य के कितने करीब हैं?***

बी. एल. आच्छा- दोनों में रात दिन का अंतर है। संदेशों में भी और शिल्प में भी । बोधकथाओं में उपदेश दिया जाता है। लघुकथा वास्तविकता से रूबरू होती है। बोधकथा में उपदेश कथा का लक्ष्य बन जाता है, यह भी एक तरह से लेखक का रचना में प्रवेश ही है । लघुकथा संदेश देती है, मगर लेखकीय प्रवेश उसका दोष है। फिर नैतिक संदेश एक रूढ़ नजरिया है। अब वह यथार्थ से टकराकर मानवीय विवेक का अंग बन जाता है। वह नजरिया है बदलते हुए तर्क का, वैज्ञानिक प्रगति का, बदलते समाज और व्यक्ति के सोच का यह नजरिया अधिक उदात्त यथार्थ तरल और व्यापक कैनवास वाला है।

डॉ. लता अग्रवाल- ***अर्थात लघुकथा उपदेश नहीं देती, पाठक को बाध्य नहीं करती कि वह बताये हुए रास्ते का अनुगमन करे ही । बस स्थितियाँ उसके समक्ष रख देती है। राह चुनने का कम पाठक का है। हिंदी लघुकथा समसामयिक बोध को प्रस्तुत करने में कहाँ तक सफल हुई है ?***

बी. एल. आच्छा- कुछ लेखकों ने तो भूमंडलीकरण के विभिन्न पक्षों को छुआ है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के यथार्थ को परखा है । सामाजिक पारिवारिक विघटन के साथ वृद्धों के विस्थापन को संवेदी बनाया है । जातियों के संघर्षों में कोमल संवेदना को भी तरजीह दी है। समसामयिक बोध की चमक तो है, पर उसके अंतर्जाल को गहरी बुनावट देने की जरूरत है। यह तर्क मांगती हैं। अन्वेषी राह मांगती है । कुछ ऐसी कि कांटे की तरह पैर में धँस जाए और चेतना का अंग बन जाए।

डॉ. लता अग्रवाल- ***मतलब, कोरी कल्पना या महज संवेग लघुकथा का आधार नहीं। इसकी अवधारणा तर्क पर होनी चाहिए। गंवई बोली से नेट की संस्कृति तक भाषा के क्षेत्र में कई नवोन्मेष हुए हैं। भाषा की धरोहर के लिए आप इसे किस रूप में देखते हैं ?***

बी. एल. आच्छा- मैंने पहले भी कहा है कि बैलगाड़ी और जेट के बीच जो फर्क है सामाजिक जीवन में, वैसी ही बोली और अंग्रेजी-उर्दू का स्पर्श करती हिंदी में भी है। आँचलिक स्पर्श बोली की माँग करते हैं। शहरी परिवेश अंग्रेजी में दमकता है। अब समाज के विभिन्न स्तरों के पात्रों के अनुकूल भाषायी संवाद नवोन्मेषी तो होंगे ही। फिर कई बार लगता है कि बोलियों के शब्द शहरी भाषा को आत्मीय परस दे जाते हैं

डॉ. लता अग्रवाल- ***हम कह सकते हैं परिवेश के अनुकूल भाषा ही लघुकथा का सौन्दर्य है। क्या लघुकथा से उम्मीद की जा सकती है कि कहानियों की तरह यह भी अगली पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहेंगी?***

बी. एल. आच्छा- निश्चय ही बोध- कथा ,दृष्टांत, चुटकुले, पंचतंत्र में सब लघुकथा के शिल्प में घुलते चले गये और लघुकथा ने जीवन की धड़कन को आबाद किया। कथाकुल के साहित्य का ही एक रूप है लघुकथा। सामान्य पाठक के लिए सहज पठनीय और जीवन को कंपन देने वाली। यह भी अगली पीढ़ी की थाती बनेगी, कुछ बनते -संवरते हुए। कथ्य के स्तर पर और शिल्प के स्तर पर भी।

डॉ. लता अग्रवाल- ***हम कामना करते हैं कि लघुकथा नित नवीन पीलर खड़ी करती हुई नवीन सौन्दर्य से लबरेज हो। समीक्षक की नजर से बचा नहीं जा सकता। आज लघुकथा का बाजार भले ही गर्म है। किंतु आलोचक की दृष्टि कमजोर बिंदुओं पर पहुँच ही जाती है । बहुधा क्या कमजोरी इस समय आप लेखन में देख रहे हैं ?***

बी. एल. आच्छा-आलोचक कोई ऑडिटर नहीं होता पर इतना जरूर होता है कि वह बुनावट में जो अंतःग्रन्थियां आनी चाहिए, पात्रों में जो अंतर्द्वंद्व या टकराहटें होनी चाहिए, उन्हें पकड़ना है। फिर भाषा और संवेदन में जो बेमेलपन होता है या यथार्थ का सपाटपन या अतिवादिता होती है, उसे प्रश्नांकित करना है।

विषय के बासीपन या कहने की शैली के इकहरेपन पर नजरें टेढ़ी करना है। इस समय अधिकतर आसपास के घरेलू चक्र में लघुकथा उलझी है और उसमें भी तनावों को उकसाकर संवेदना को स्पर्शिल बनाने की लंबी कवायद नहीं हो पा रही है। पर लघुकथा में भी यथार्थ के अनेक परिदृश्यों को संजोते हुए अन्विति का सौन्दर्य जरूरी है

डॉ. लता अग्रवाल- ***अर्थात लेखक को अपने कौशल को अभी और मांजने की आवश्यकता है । परंपराएं, जिनसे समाज वृद्धि और समृद्धि पाता है। लघुकथा पुराने और नई के बीच के सेतु पर हस्ताक्षर करने में कितनी सफल हुई है ?***

बी. एल. आच्छा- मैंने पहले ही कहा है कि और तर्क भावुकता के स्थान पर प्रतिरोध की, प्रतिकार की शक्ति आई है, तो नारी का समूचा व्यक्तित्व ही बदल रहा है । आस्थाओं का मानवीय पक्ष में रूपांतरण हो रहा है कर्मकांडों के स्थान पर। राजनीति में आदर्शों के स्थान पर भ्रष्टताओं पर कचोट लघुकथाओं का तेवर बना है । कभी वह उस पात्र, उसके विचार और तेवर को भी बुनता है, जो तार्किक चुनौतीपूर्ण संवेदनीय भाव तरलता, बदलाव की दृष्टि और पाठकीय सम्प्रेषणीयता के नए अंदाज को व्यक्त करे। कम ही सही, पर ये नये तेवर हिंदी लघुकथा का तेजस बनते जा रहे हैं

डॉ. लता अग्रवाल- ***बिलकुल नई दृष्टि। आज काफी गहराई से विषयों की पड़ताल लेकर आ रही है। अगर आप कुछ कहना चाहें ।***

बी. एल. आच्छा- काफी लंबी बात हो गई, काफी कुछ कह दिया। संदेश देने की आदत नहीं। जो भी लघुकथा के क्षेत्र को हरा भरा कर रहा है, छपने को सिद्धि नहीं मानता, वह संवेदन और बुनावट के स्तर पर अनाकुल होकर सर्जक बना हुआ रहे। इस लंबी बातचीत के लिए हार्दिक धन्यवाद।

बी एल आच्छा : फ्लैट नं- 701टॉवर-27, नॉर्थ टाउन अपार्टमेंट स्टीफेंशन रोड
(बिन्नी मिल्स) पेरंबूर चेन्नई (तमिलनाडु) **पिन** - 600012, **मो.** 9425083335
डॉ लता अग्रवाल : 73, यश विला भवानी धाम फेस -1, नरेला शंकरी, भोपाल (मप्र)

अभिमत

'मुक्तांचल' का काव्यालोचना पर केंद्रित अंक (जनवरी-मार्च 2023) कई मायनों में उल्लेखनीय है। संस्तुति में संपादक मीरा सिन्हा ने बिलकुल सही कहा है कि समय की नब्ज को पहचानने का काम पत्रिकाएँ करती हैं। यह अंक इसका प्रमाण है। उनकी यह बात भी गौरतलब है कि आज की कविता सिर्फ भाव संवलित न रहकर अधिक तात्विक होती जा रही है, जिसकी वजह दुनिया में सूचना-प्रौद्योगिकी और तकनीक का अनियंत्रित प्रयोग और प्रभाव है, जिससे कला और साहित्य भी अछूता नहीं है। हालांकि समय की नब्ज पर हाथ रखे साहित्यकार सदैव बने रहे हैं, इसका उदाहरण इस अंक में प्रकाशित कई कविताएँ हैं। मंजु श्रीवास्तव, मंजुरानी सिंह और शुभ्रा उपाध्याय की कविताएँ साहित्य-सृजन की प्रयोजनीयता को सिद्ध करती हैं। मंजु श्रीवास्तव की कविता में श्रमिक जीवन की विडंबना, तमाम बौद्धिकता और उदाहरता के दावों के बावजूद मानवीय सोच की संकीर्णता, स्त्रियों की आत्मशक्ति, समय चाहे जितना बदला हो पर मानवीय संवेदना के बने रहने का प्रमाण और बचपन की स्मृतियों में पिता के साथ जुड़ी गहन अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण कविताओं को जीवन से जोड़ने का काम करता है। कविता में जब सच के प्रति निष्ठा और अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदारी अनिवार्य अंग के रूप में हो और शब्दों में वाग्जाल न हो तो कविता अंतर्मन को छू जाती है। उसकी गूंज काफी समय तक सुनाई पड़ती है। इस अंक में तीनों स्त्री रचनाकारों की कविताओं में स्मृति-सांद्र की मसृण अभिव्यक्तियाँ लंबे समय तक याद रखी जाएँगी।

काव्यालोचना पर विजय बहादुर सिंह और कविता के विविध रंगों पर सेवाराम त्रिपाठी के आलेख विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं। डॉ. पंकज साहा ने एक तरह से विस्मृत वरिष्ठ कवि सूर्यभानु गुप्त को याद कर हिंदी पाठकों को उनके बहुआयामी व्यक्तित्व से परिचित कराने का स्तुत्य कार्य किया है। धर्मयुग और उस समय की विभिन्न पत्रिकाओं के आज जो बचे हुए पाठक हैं, उनके लिए सूर्यभानु गुप्त पर यह आलेख एक सुखद अनुभव का क्षण होगा। पत्रिका के अन्य आलेख भी पठनीय हैं। प्रूफ पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

मीरा जी 'मुक्तांचल' के प्रकाशन में निरंतरता बनाए रखकर एक सराहनीय कार्य कर रही हैं। साहित्य के प्रति उनकी निष्ठा, लगाव और जीवन में उसकी अनिवार्यता को महसूस कराने की फलश्रुति है 'मुक्तांचल'।

अवधेश प्रसाद सिंह

श्रद्धांजलि

कोलकाता के चर्चित संस्कृतिकर्मी-रंगकर्मी एवं विद्यार्थी मंच के वरिष्ठ सदस्य श्रीप्रकाश गुप्ता के आकस्मिक निधन से मुक्तांचल व विद्यार्थी मंच परिवार मर्माहत एवं श्रद्धावनत् है!

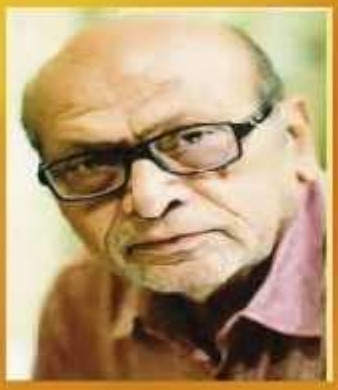

असग़र वजाहत

(जन्म: 7 जुलाई 1946)

क्रांतिवीर

क्रांतिवीर ने एक रात स्वप्न में मार्क्स को देखा, पर

यह आश्चर्य की बात थी कि कार्ल मार्क्स ने शेव कर रखा था।

क्रांतिवीर ने कहा, 'प्रभु, ये आपने क्या कर डाला ?

कार्ल मार्क्स बोले, 'ये मैंने नहीं, तुम लोगों ने किया है।'

-मुश्किल काम (लघुकथा संग्रह)

RNI NO. WBHIN/2014/70173
POSTAL REG. NO. WB/HWH-90/2018-2020

स्मृति–शेष

श्रीप्रकाश गुप्ता

(2 मार्च 1969 - 17 जून 2023)

हावड़ा विद्यार्थी मंच (8/2L No. 8053 of 20/3-2014) 6/2/1, आशुतोष मुखर्जी लेन, सलकिया, हावड़ा-711106 द्वारा प्रकाशित एवं गोपी कृष्ण पालुई, शिक्षण द्वारा 50 सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता से मुद्रित

संपादक : डॉ. मीरा सिन्हा